बुक्काराय

*

[दक्षिण के विजयनगर
राज्य की गौरव गाथा]

विजयनगर उपन्यास-माला

❊

राय हरिहर

कृष्णाजी नायक

राय-रेखा

बुक्काराय

महामात्य माधव

बुक्काराय

(विजयनगर-राज्य उपन्यास-माला का तीसरा पुष्प)

लेखक

गुणवंतराय आचार्य

*

अनुवादक

श्यामू संन्यासी

वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड

३, राउन्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई २

• प्रथम संस्करण
१९६१

• मूल्य : ५·५०

• प्रकाशक :
के. के. वोरा,
वोरा एण्ड कम्पनी,
पब्लिशर्स, प्रा. लि.
३, राउण्ड बिल्डिंग,
कालबादेवी रोड,
बम्बई २.

• मुद्रक :
मुहम्मद शाकिर,
सहयोगी प्रेस,
१४१, मुट्ठीगंज,
इलाहाबाद ३.

प्रकाशकीय

दक्षिणापथ का विजयनगर राज्य तुर्क आक्रमण के विरुद्ध भारतीय स्वाधीनता के अमर संग्राम का महान प्रतीक था। भारतीय इतिहास मे पहली बार जातिगत, वर्णगत, सम्प्रदाय और राज्यगत भेदों, विभेदो और विद्वेषों का अन्त कर समस्त जन-समुदाय को विदेशी आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए, एक उद्देश्य और एक प्रेरणा के अन्तर्गत एकताबद्ध किया गया था।

दक्षिणापथ के एक सर्वस्व-त्यागी सन्त ने इस प्रेरणा का बीजारोपण किया और उस महात्मा के राजवंशी अनुयायियों ने 'रायरेखा' की स्थापना कर उस महती प्रेरणा को कार्यान्वित कर दिखाया। बुक्काराय उस राय-रेखा का पहला रायराया नियुक्त किया गया। उस मध्ययुग का समस्त दक्षिणापथ—अपनी समस्त रंगीनियों और वैचित्र्य के साथ, अपने सम्प्रदाय-गत विद्वेषों के साथ, स्वाधीनता और देश-प्रेम की अपनी ललक के साथ इस उपन्यास में प्राणपूरित हुआ है।

मुहम्मद तुग़लक का पागलपन, शक्की मिजाज़ और उसकी झक्कीपन ऐतिहासिक यथार्थता के साथ अंकित किया गया है। तुर्कों के दरबारी दाव-पेंच अमीरों और मलिकों की पारस्परिक लाग-डाट उस समय की स्थिति पर पूरा प्रकाश डालती है।

लेकिन उपन्यास के अमर पात्र हैं—मेहर सुल्ताना और विषकन्या मंदांगी, बलदेव सोलंकी और जोगीराज सिंगी! पाठक इनसे आत्मीयता अनुभव करने लगता है आर यही लेखक की सब से बड़ी सफलता है।

सूची

पूर्वाध्याय

भारतीय इतिहास का अवलोकन करने पर एक बात स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

आदि काल से हमारे देश का इतिहास उत्थान और पतन के एक-एक हजार वर्ष के अनवरत चक्र के रूप में चलता हुआ दिखाई देता है। उत्थान और पतन की ये सहस्राब्दियाँ भी क्रमशः ढाई-ढाई सौ वर्षों के सुनिश्चित समय-खण्डों में विभाजित प्रतीत होती हैं। उत्थान की सहस्राब्दी में ढाई सौ वर्षों का एक समय-खण्ड क्षणिक अवरोध एवं पतन का तथा पतन की सहस्राब्दी में उतने ही वर्षों का एक समय-खण्ड क्षणिक प्रगति और उन्नति का भी दिखाई दे जाता है।

पतन की एक ऐसी ही सहस्राब्दी में ढाई सौ वर्ष क्षणिक प्रगति और उन्नति के आये। वह समय विजयनगर-साम्राज्य का था।

लगभग सवा दो सौ वर्षों का वह समय भारतीय संस्कृति के लिए परम पुरुषार्थ का युग था। साहित्य, संगीत, कला, स्थापत्य, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र का इस युग में पुनरुत्थान हुआ। आज वेद, उपनिषद, पुराण, शास्त्र, नाटक, साहित्य, स्थापत्य आदि जिस रूप में हमें उपलब्ध हैं उन सबका संस्कार और पुनःसंस्करण विजयनगर-साम्राज्य के युग में ही किया गया।

भारतीय संस्कृति का समूलोच्छेद करनेवाले तुरुष्कों के आक्रमणों को रोकने के लिए विजयनगर ने चार भाषा-भाषियों और चार सम्प्रदाय के लोगों को एकताबद्ध कर विदेशी आक्रान्ताओं का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया और लगभग सवा दो सौ वर्षों तक अपराजेय और अजीत बना रहा।

तुरुष्क दुर्द्धर्ष वीर होते हैं, कोई उनका सामना नहीं कर सकता, कोई राजा अथवा राज्य उन्हें पराजित नहीं कर सकता, यह धारणा सर्वमान्य हो चुकी थी। भारतीय जनता ने स्वयं अपने नेत्रों से देखा भी था कि जिस प्रकार नील (एक जाति का बन्दर) काँच के बरतनों की दूकान में पैठकर उसे तहस-नहस कर डालता है उसी प्रकार तुरुष्कों ने भारत में प्रवेश करके एक के बाद एक सभी राजवंशों को उखाड़ डाला और दक्षिण में ठेठ कृष्णा नदी तक बढ़ आये थे।

तुंगभद्रा नदी के उस पार बसे हुए राजा, दुर्गपाल, नायक, धर्माचार्य, पंडित—कोई भी अकेले-अकेले तुरुष्कों की इस बाढ़ को रोक न सके। देवगिरि, कर्नाटक, मलाबार, चोला-मंडल, चेर-मंडल, पांड्य-संघ आदि दक्षिणापथ के उस समय के समस्त राज्यों को अकेला मलिक काफूर एक-एक कर पराजित कर गया। कर्नाटक को उसने अपना गुलाम बनाया, देवगिरि का सर्वनाश किया, मलाबार को लूटा और पांड्य-संघ की राजधानी मदुरा में तो अपना सूबा ही नियुक्त करता गया।

इस दुःखदाई घटना से दक्षिणापथ के शासकों और जनता ने एक सबक सीखा और वह यह कि जब तक दक्षिण के समस्त राज्यों, सम्प्रदायों, भाषाओं और जनता को एकताबद्ध नहीं किया जायेगा, तुरुष्कों की बाढ़ को रोकना असम्भव ही होगा।

इस अभीप्सित एकता को सम्पन्न करने के लिए, इतिहास में अभूतपूर्व, तीन कार्य किये गए :

पहला, दक्षिणापथ के कन्नड़ राजा ने अपने समस्त राज्याधिकारों का परित्याग कर उन अधिकारों को भगवान कालमुख विद्याशंकर के चरणों में समर्पित कर दिया। शेष दुर्गपालों, नायकों और समस्त छोटे-बड़े राजाओं ने भी कन्नड़ राजा का अनुसरण किया। अब शासन-कार्य भगवान कालमुख

विद्याशंकर के नाम से होने लगा। यह शासन विजयधर्मराज्य के नाम से पुकारा जाने लगा। शासन-कार्य सुचारु रूप से चल सके, इसलिए एक महा-करणाधिप का चुनाव किया गया। दादाजी सोमैया नाम के नायक ने यह उत्तरदायित्व ग्रहण किया। विजयधर्मराज्य के महामंडलेश्वर के पद पर राय हरिहर को नियुक्त किया गया। तुंगभद्रा से कावेरी नदी के बीच के सारे प्रदेश के सेनानायक और दुर्गपाल इस महामंडलेश्वर के अधीन उसी की आज्ञा से कार्य करें, ऐसा भी निश्चय हुआ।

दूसरा कार्य था दक्षिणापथ में प्रचलित चारों धर्मों और चारों सम्प्रदायों का पारस्परिक विरोध और संघर्ष मिटाकर उन्हे एक मंच पर लाना। जिस प्रकार शासकीय कार्यों के लिए महाकरणाधिप और सैनिक कार्यों के लिए महामंडलेश्वर की नियुक्तियाँ हुईं, उसी प्रकार धार्मिक कार्यों और चारों धर्मों की एकता के लिए राजगुरु के पद की व्यवस्था की गई। राजगुरु का कार्य था शासन-कार्यों में परम्परा, नीति और व्यवहार-सम्बन्धी जो भी प्रश्न उपस्थित हों उन पर निष्पक्ष भाव से विचार कर उनका निर्णय करना। समस्त विजयधर्मराज्य में धर्म-शासन के लिए भी राजगुरु ही उत्तरदायी होता था।

धर्मशासन विजयधर्मराज्य की विशेषता थी। प्रजाजनों और शासन-संस्था के पारस्परिक सम्बन्धों का नियमन ही धर्म-शासन कहलाता था। यह धर्म-शासन राजा, राज्याधिकारी और प्रजाजन सभी के लिए समान रूप से बन्धनकारक था। विजयनगरराज्य का न्याय-विभाग धर्म-शासन के अन्तर्गत रखा गया था और समस्त न्यायाधिकारी राजगुरु के अधीन रहकर कार्य करते थे।

राजगुरु के पद के सम्बन्ध में यह नियम अपनाया गया कि चारों सम्प्र-दायों के प्रमुख आचार्यों में जो सबसे वयोवृद्ध हो वह राजगुरु बनाया जाये। राजगुरु का न तो चुनाव होता था और न नियुक्ति। एक राजगुरु की मृत्यु हो जाने पर चारों सम्प्रदायों के प्रमुख आचार्यों में जो सबसे अधिक उम्र का होता था वह अपने-आप राजगुरु बन जाता था।

इस परिपाटी के अनुसार विजयधर्मराज्य के पहले राजगुरु क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ महाराज थे, जो शृङ्गेरी पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य भी थे। उनके

पश्चात् जैन सम्प्रदाय के आचार्य पंडित आर्यभद्रदेव राजगुरु बने।

और तीसरा काम जो किया गया वह था रायरेखा की स्थापना। तुरुष्कों के सफल प्रतिरोध और सतत चलनेवाले युद्ध के लिए, चारों धर्मों की रक्षा के लिए, चारों भाषाओं के साहित्य को जीवित रखने के लिए, चारों सम्प्रदायों के मन्दिरों और परम्पराओं की सुरक्षा के लिए प्रत्येक घर, ग्राम, और प्रदेश से जीवन की बाजी लगानेवाले योद्धा आगे आने चाहिए। ऐसे योद्धा तभी आगे आ सकते थे जब तुरुष्क-विरोधी युद्ध के साथ जनता के सभी वर्गों का प्रत्यक्ष और जीवित सम्बन्ध हो, प्रत्येक मनुष्य यह अनुभव कर सके कि यह राज्य मेरा है, यह सम्पदा मेरी है, यह धर्म मेरा है, यह परम्परा मेरी है और यह युद्ध मेरे हित के लिए लड़ा जा रहा है।

दक्षिणापथ में कुरुबों, पांचालों, बेसवागों, होलेयों और पालेरों का एक विशाल वर्ग ऐसा भी था, जिसे समाज में कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं थे—अपने ही देश के राजाओं, अपने ही देश की संस्कृति और अपने ही देश के सम्प्रदायों के निकट जो अन्त्यज, अस्पर्श्य और अछूत थे। यहाँ उन्हें पाने को कुछ नहीं था और तुरुष्कों के आधिपत्य में खोने को भी कुछ नहीं था। उनके मन देशी राज्य और तुरुष्क राज्य में कोई भेद, कोई अन्तर नहीं था। "कोऊ नृप होऊ हमैं का हानि। चेरि छाँड़ि कब हुइहैं रानि" यह थी उनकी मनोदशा।

उत्तरापथ में तुरुष्कों की विजय के कारणों में जहाँ ऊपरले वर्गों की पारस्परिक फूट और साम्प्रदायिक वैमनस्य प्रमुख कारण थे वहीं इस निचले वर्ग की तटस्थता और विरोध भी एक जबर्दस्त कारण था।

इसलिए दक्षिणापथ में जहाँ साम्प्रदायिक प्रतिस्पर्द्धा के विष को विनष्ट करने के प्रयत्न किये गए वहीं निचले वर्ग की तटस्थता, विरोध और वैमनस्य को दूरकर उनका सहयोग प्राप्त करने के भी सद्प्रयत्न हुए।

यह सारा निचला वर्ग कृषि की अर्थ-व्यवस्था पर निर्भर करनेवाले कृषकों का था, इसलिए उनके भूमि-सम्बन्धी अधिकारों और भूमि-करों को निर्धारित और सुनियोजित किया गया। भूमि और श्रम-सम्बन्धी अधिकारों का

इतना सुनिश्चित निर्धारण इससे पहले या बाद के किसी भी राजतंत्र में किया गया हो, यह अभी तक जानने को नहीं मिला है।

इस दिशा में पहला कार्य यह किया गया कि कुरुवा अपनी जमीन का मालिक करार दे दिया गया। सामन्त अथवा नायक केवल कृषि-भाग का अधिकारी रह गया। गाँव के महाजन अथवा पंचायत में कुरुबा को भी बैठने और अपनी राय प्रकट करने तथा किये जानेवाले निर्णायों में मत देने का अधिकार मिला। सामन्त और कुरुबा में कृषि-भाग (कर) के सम्बन्ध में मतभेद होता तो महाजन का न्याय दोनो के लिए मान्य होता था। महाजन के न्याय को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व स्थानीय अमरनायक, दुर्गपाल अथवा धर्माधिकारी पर होता था। यदि वे अपने कर्त्तव्यपालन में शिथिलता दिखाते तो 'अपील' सीधे राजगुरु के समक्ष की जातो थी, किसी अन्य के समक्ष नहीं।

बेसवागा यानी पांचालों-अन्त्यजों से कोई कर नहीं लिया जाता था। वे लोग स्वेच्छा से अपने बारह महीनों की आय में से एक महीने की आय का केवल बीसवाँ भाग राज्य को प्रदान करते थे।

ग्राम और शहर के निवासियों पर भी कर-भार बहुत कम कर दिया गया था। कुल मिलाकर किसी भी व्यक्ति और व्यवसायी को अपनी आय के तीसवें भाग से अधिक कर के रूप में नहीं देना पड़ता था। किससे कर की कितनी राशि ली जाये, इस सम्बन्ध में यदि मतभेद उठ खड़ा होता तो उसका निपटारा राज्य का कोई अधिकारी नहीं, राजगुरु अथवा उनके धर्माधिकारी ही करते थे।

होलेय और पालेर तुरुष्क-विरोधी युद्ध को अपना युद्ध समझकर उसमें उत्साहपूर्वक योगदान कर सकें, इसलिए उन्हें परचेरी के अधिकार प्रदान किये गए। परचेरी के अधिकार का अर्थ है प्रतिनिधित्व का अधिकार। राज्य की सर्वोच्च संस्था महासमिति कहलाती थी। महासमिति के राजा अथवा महामंडलेश्वर अथवा युवराज अथवा उनकी मूर्ति यानी प्रतिनिधि, महाकरणाधिप, पृथ्वी शेटी, राजगुरु ये चार ऊपरले वर्ग के और निम्नवर्ग का प्रतिनिधि कुम्हार शेटी पाँचवाँ सदस्य होता था। कुम्हार शेट्टी की उपस्थिति के विना महासमिति पूर्ण नहीं समझी जाती थी और कुम्हार शेट्टी के अनुमोदन

और समर्थन के विना कोई प्रस्ताव या निर्णय भी पारित नहीं हो सकता था।

दास-प्रथा अवश्य थी। बीदर, गोंड, शम्बूर आदि वनवासी जातियों के लोगों को पकड़कर दास बनाया जाता था। परचेरी की प्रथा से पहले दासों के कोई अधिकार नहीं होते थे, उन्हें बेचा जा सकता था, पीटा और जान से मारा भी जा सकता था। स्वामी का अपने दासों पर पूर्ण अधिकार होता था। लेकिन परचेरी की प्रथा के बाद दासों को भी कुछ अधिकार प्राप्त हुए।

अब मालिकों को अपने दासों को रहने के लिए अलग मकान देने पड़ते थे, अन्न और वस्त्र का प्रबन्ध करना पड़ता था; इसके अतिरिक्त मासिक वेतन भी देना पड़ता था। पहले दास की पत्नी और सन्तान पर दास का नहीं, मालिक का अधिकार होता था; अब अपने स्त्री-बच्चों पर दास का पूर्ण अधिकार होता था। पति और पत्नी को एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता था। दासों को बेचा नहीं जा सकता था। यदि स्वामी के पास अपने दासों के लिए काम न होता तो भी वह उन्हें बेच नहीं सकता था, या काम दे या मुक्त करे।

प्रतिवर्ष नवरात्री को महानवमी के दिन सभी दास और कम्मी गाँव के किसी खेत अथवा मन्दिर में एकत्रित होते और वहाँ उनके स्वामी उनके साथ वर्ष-भर के लिए इकरारनामे और अनुबन्ध करते थे। इस तरह सभी इकरारनामे और अनुबन्ध कुम्हार शेट्टी द्वारा अनुलिखित किये जाते, और वे पाले जाते हैं या नहीं यह देखना भी कुम्हार शेट्टी का ही काम होता था।

अपनी विजयनगरराज्य उपन्यास-माला के, इससे पहले के तीन उपन्यासों में, मैंने भगवान कालमुख विद्याशंकर द्वारा निर्दिष्ट और उनके नाम पर दादैया सोमैया एवं महामंडलेश्वर राय हरिहर द्वारा संचालित विजयधर्मराज्य में हो रहे विभिन्न सामाजिक परिवर्तनों की झाँकी प्रस्तुत की है। और यह दिखाया है कि किस प्रकार विजयनगर अस्तित्व में आ रहा था। इस उपन्यास में विजयनगरराज्य की स्थापना और बुक्काराय के उस राज्य के प्रथम रायराया निर्वाचित किये जाने तक की कहानी कही गई है।

★

'बुक्काराय' उपन्यास में जिस काल का वर्णन किया गया है उस समय सामयिक परिस्थिति इस प्रकार थी :

वारंगल के काकतीय राजा महाराज प्रतापरुद्रदेव का अवसान हो गया था। कृष्णाजी नायक कर्नाटक से प्रतापरुद्रदेव का मस्तक लेकर बल्लाल तृतीय के दरबार में गया था। वहाँ परमभक्त महावैष्णव आलवार संत देवी (देवदासी) उदाली ने उस मस्तक के साथ मरणोत्तर विवाह किया और अपने मृत पति के मस्तक को गोद में रखकर सती हो गई। चिता पर चढ़ने से पहले महासती उदाली ने पांड्य-वंश के वीर कृष्णाजी नायक को अपना धर्म-पुत्र बनाकर उसे वारंगल राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया था।

उस समय वारंगल तुरुष्कों के अधिकार में था। गंगू कन्याली नामक एक ब्राह्मण ने वारंगल को तुरुष्कों के अधिकार से मुक्त कर वहाँ अपना राज्य स्थापित करने में कृष्णाजी नायक की सहायता की थी। कथा-काल में कृष्णाजी वारंगल के राजा थे।

देवगिरि में मुहम्मद तुग़लक की हुकूमत थी। वह दिल्ली का सुल्तान भी था। अलाउद्दीन खिलजी और उसके उत्तराधिकारियों के विनाश के पश्चात् खिलजी का राज्यकोष, जिसमें अपार सम्पदा थी, किसी रहस्यमय ढंग से लुप्त हो गया था। अब मुहम्मद तुग़लक के सामने, अपना शासन चलाने के लिए, दूसरों को लूटकर धन एकत्रित करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह गया था।

लेकिन धन केवल दक्षिणापथ में था और धनाभाव जहाँ दक्षिण की लूट के लिए बाधक हो रहा था वहीं उसके दरबार के मलिकों और अमीरों के बीच घोर संघर्ष और अन्तर्कलह का कारण भी बना हुआ था।

अमीर सुल्तान के माल-विभाग के अधिकारी थे और मलिक उसके सैनिक अधिकारी। मलिक प्रायः सभी विदेश से आये थे। मलिकों का काम लूट-पाट करना था। अमीर सुल्तान को उसकी मुँहमाँगी खिराज़ नहीं दे पाते थे और सुल्तान मलिकों को आवश्यक धन नहीं दे पाता था। इसलिए उसके दरबार में अमीरों और मलिकों के बीच रस्साकशी होती रहती थी। मुहम्मद तुग़लक की अधिकांश शक्ति इन झगड़ों को मिटाने और अमीरों-मलिकों के सन्तुलन को बनाये रखने में ही लग जाती थी।

सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के देवगिरि के दरबार में एक मलिक था। उसका नाम था हसन गंगू। मूल तो वह गुलाम था; गंगू कन्याली ने उसे देवगिरि के गुलाम बाजार में खरीदा था। गंगू ज्योतिष का जानकार था और उसे हसन के भाग्य में राजयोग दिखाई दिया। उसने हसन को मुक्त कर दिया। मुक्त होकर हसन देवगिरि अथवा दौलताबाद आया। मोची मलिक रहमान तग़ी के घुड़सवारों में वह भरती हो गया। कथा-काल में वह तग़ी के घुड़सवारों में नीचे दर्जे का नायक या मलिक था।

सात वर्षों के प्रचार में राय हरिहर रायरेखा का विस्तार तुंगभद्रा से कावेरी तक के प्रदेश में कर सके थे। श्रवणबेलगोला के जैन सम्प्रदाय के वीरवणिगा रायरेखा को अपनानेवालों में सबसे अन्तिम थे। कथा-काल में श्रवणबेलगोला के जैन वीरवणिगों के अग्रणी वायीजन शेटी विजयधर्मराज्य के पृथ्वीशेट्टी अथवा जगत्सेठ थे।

राय हरिहर ने रायरेखा के प्रसार के लिए सात वर्षों का समय माँगा था। विजयधर्मराज्य का शासन भगवान कालमुख विद्याशंकर के नाम पर होता था।

भगवान अपने साथ सात शिष्यों को शिक्षा-दीक्षा के लिए ले गए थे। उन सात शिष्यों में से एक भालारी बिबोया अध्ययन अधूरा छोड़कर भाग गया, शेष छह गुरुदेव से शिक्षा ग्रहण करते रहे। उनकी शिक्षा-दीक्षा, उपनयन-अभिसरण को सात वर्ष हो चुके थे।

मदुरा में मलिक काफ़ूर ने एक तुरुष्क सूबा को नियुक्त किया था। मदुरा के पांड्यराज वीर पांड्य को पराजित करने के लिए उसी का सगा छोटा भाई सुन्दर पांड्य मलिक काफ़ूर को बुला लाया था। मलिक काफ़ूर आया, उसने वीर पांड्य का वध किया, मदुरा पर अधिकार जमाया और मदुरा का सिंहासन सुन्दर को सौंपने के बदले अपना सूबा नियुक्त कर लौट गया।

मलिक काफ़ूर दिल्ली पहुँचा। अलाउद्दीन खिलजी दूसरा सिकन्दर बनने के सपने देखता-देखता बेमौत मारा गया। उसके भाई-भतीजे, बेटे-नाती सब मौत के घाट उतार दिये गए। दिल्ली का सिंहासन रक्तरंजित हो उठा। थोड़े ही दिनों में कई सुल्तान दिल्ली के तख्त पर बैठे और बलि के बकरों की भाँति मारे गए।

दिल्ली की अराजकता से फायदा उठाकर मदुरा के सूबा ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। यहाँ भी राज्य-लोभ के कारण रक्त-तर्पण हुआ और पाँच-सात वर्ष की छोटी-सी अवधि में चार सुल्तान सिंहासन पर आये। कथा-काल में अहसन वंश का चौथा सुल्तान गयासुद्दीन दमग़ानी मदुरा के सिंहासन पर आसीन था। वह जलालुद्दीन अहसनशाह का दामाद था और इतिहास में जलालुद्दीन अहसनशाह द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध है। इस जलालुद्दीन द्वितीय पर कर्नाटक के राजा बल्लालदेव ने, जो बाद में राजसंन्यासी बन गए थे, आक्रमण किया। इस आक्रमण में राजा बल्लाल-देव धोखे से मारे गए और गयासुद्दीन दमग़ानी ने उनका मस्तक काटकर, भाले में लटकाकर, मदुरा के किले की दीवार पर टाँग दिया।

एक ओर राय हरिहर रायरेखा का प्रसार कर रहे थे, दूसरी ओर पांड्य-संघ का नायक प्रोलेय नायक समुद्र-तट पर अवस्थित तुरुष्क चौकियों को नष्ट-भ्रष्ट कर रहा था।

सुन्दर पांड्य के पापों के ही कारण मदुरा का पतन हुआ और श्रीरंगम् के मन्दिर में तुरुष्क सुल्तान ने अपना अड्डा जमाया। परन्तु सुन्दर की आँखें फिर भी नहीं खुलीं। वह यही मानता रहा कि मदुरा के तुरुष्क सुल्तान की सेवा करके ही मदुरा का खोया राज्य पाया जा सकता है। अपने इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर सुन्दर ने पांड्य सामुराय प्रोलेय नायक की हत्या की।

प्रोलेय नायक के पुत्र कपाय नायक ने अपने पिता के अधूरे कार्यों को हाथ में लिया और उसने समुद्री मार्गों से तुरुष्कों का आना-जाना ही रोक दिया। गोदावरी के मुहाने से लेकर कलिंग तक के समस्त समुद्र-तट पर उसने अधिकार स्थापित कर कलिंग और मदुरा के बीच का समुद्री-सम्बन्ध विच्छिन्न कर दिया।

बल्लालदेव तृतीय की करुण मृत्यु के बाद उसके पुत्र वीर बल्लभ को विजयधर्मराज्य के अन्तर्गत कर्नाटक देश का करणाधिप नियुक्त किया गया।

कांपिली में कांपिलीराय का विनाश करके वहाँ तुरुष्क सूबा अपना अड्डा जमा चुका था।

मुल्तान मुहम्मद तुग़लक देवगिरि में आ बसा था और अपने दरबार के अमीरों और मलिकों मे मेल-मिलाप के प्रयत्नों में लगा हुआ था। तुंगभद्रा को पारकर दक्षिण की सम्पदा को लूटने की अभिलाषा वह अपने मन में छिपाये हुए था।

अपने मलिकों का वेतन चुकाने के लिए उसे रुपयों की आवश्यकता थी, इसलिए उसने दोरासमुद्र और आनेगुंडी के 'सूबों' के नाम हुंडियाँ लिखनी शुरू कर दी थीं। वस्तुतः दोरासमुद्र और आनेगुंडी में मुहम्मद तुग़लक का कोई सूबा नहीं था। दोरासमुद्र में विजयधर्मराज्य के महाकरणाधिप दादैया सोमैया रहते थे और सामन्त था वीर वल्लभ। आनेगुंडी में सोमेश्वर सोलंकी विजयधर्मराज्य का दुर्गपाल था।

लेकिन मुहम्मद तुग़लक को पूरा विश्वास था कि वह अपने मलिकों और अमीरों के आपसी मतभेदों को मिटाकर दोरासमुद्र और आनेगुंडी में अपने तुरुष्क सूबों को नियुक्त कर सकेगा, और इसलिए उसने वहाँ के फर्ज़ी सूबों के नाम रुपयों के लिए हुंडियाँ लिखना शुरू कर दिया था।

ये हुंडियाँ कुल मिलाकर बीस लाख अशर्फियों की थीं और मुहम्मद तुग़लक का विश्वास था कि दोरासमुद्र और आनेगुंडी में तुरुष्क सूबागीरी कायम होते ही हुंडियाँ सिकर जायेंगी और बीस लाख अशर्फियाँ मिल जायेंगी, जिनसे मलिकों की चढ़ी हुई तनख्वाहें चुकाई जा सकेंगी। उसे यह भी विश्वास था कि उसके मलिक तब तक प्रतीक्षा करते रहेंगे। देवगिरि के बहुत-से साहूकारों का तो इन हुंडियों को सिकारने का पेशा ही हो गया था!

इस प्रकार पुरुषार्थ और प्रयास, आशा और आकांक्षा, व्यवस्था और अव्यवस्था, विप्लव और शान्ति, रायरेखा और दक्षिणापथ पर मुहम्मद तुग़लक की फर्ज़ी हुंडियाँ, वीरवणिगों का विरोध और सहयोग, प्रतिध्वनि और चुनौती आदि पर विक्रम संवत् की चौदहवीं सदी की अन्तिम दशाब्दी के अन्तिम वर्ष की सन्ध्या उदित होती है। विक्रम संवत् १३९९ के आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी का—धनतेरस का दिन था और....

१. पम्पापति के धाम में

इसी स्थल पर, दण्डकारण्य में निवास करनेवाली किरात जाति की भक्त शवरी ने, कई वर्षों तक, भगवान रामचन्द्र की प्रतीक्षा की थी; और अपनी झोपड़ी बनाकर यहाँ रही थी। इसी स्थल पर, सीता की खोज करते हुए, भगवान रामचन्द्र आये थे और उनके उद्विग्न मन और क्लान्त शरीर की ओर ध्यान न देकर शवरी ने, जो प्रसन्नता के कारण पागल हो उठी थी, भगवान रामचन्द्र को अपने जूठे बेरों का भोग लगाया था। इसी स्थल पर, भक्तवत्सल भगवान रामचन्द्र ने, शवरी के उत्कट भक्तिभाव के कारण, सीता के विरह-जनित सन्ताप से, क्षण-भर के लिए शान्ति का अनुभव किया था। इसी स्थल पर, भगवान रामचन्द्र की सर्वप्रथम भक्तश्रेष्ठ हनुमान से भेंट हुई थी। इसी स्थल पर, भगवान रामचन्द्र के हृदय में लंका-विजय का बीजारोपण हुआ था। और इसी स्थल पर, लंका-विजय के पश्चात् लौटते हुए भगवान रामचन्द्र और सती सीता माता ने भगवान पम्पापति के मन्दिर का निर्माण करवाया था। ऐसा यह स्थल पौराणिक काल से प्रसिद्ध और परमपवित्र चला आया था।

हमारे कथा-काल के समय, इस स्थल के एक ओर यवनों द्वारा विध्वंस्त दक्षिणापथ की शुष्क धरित्री थी दूसरी ओर घोर अरण्य। भगवान् रामचन्द्र के समय की शान्ति अब नहीं थी और निश्चिन्तता भी नहीं थी। सीता माता

द्वारा पुत्रवत पोषित हाथी या उसकी कोई सन्तान भी नहीं रही थी। भगवान राम के समय में इस अरण्य के निवासी किरात, शम्बूर, बीदर और गोंड मित्र-मना थे, परन्तु कथा-काल में ये अरण्यनिवासी किसी का स्वागत करने अथवा अतिथियों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने के लिए किंचित् भी उत्सुक नहीं थे। किरात दुर्मना हो गए थे। बीदर अन्यमनस्क थे। गोंड तुरुष्कों और दाक्षिणात्यों के बीच, जिस ओर लूट-पाट का अवसर मिलता, हो जाते थे।

कथा-काल का दण्डकारण्य, जो गोदावरी और तुंगभद्रा के बीच फैला हुआ था, उतना घना तो नहीं था, जितना भगवान रामचन्द्र के समय में हुआ करता था, परन्तु भयंकर तो उससे भी अधिक हो गया था।

हरे-भरे दण्डकारण्य और ऊपर मेघहीन आकाश तथा नीचे यवनों के दुस्सह ताप से दग्ध दक्षिणापथ की शुष्क, पाण्डुर धरती के बीच तुंगभद्रा नदी बहती थी। इस नदी में, पुराणकाल में जहाँ पम्पा सरोवर था, वह स्थान तो अब नामशेष हो गया था। सरोवर महाकाल की यात्रा में कहीं विलीन हो गया था, रह गया था दो-एक योजन के विस्तारवाला निचली भूमि का वह टुकड़ा, जिसमें कभी तुंगभद्रा में बाढ़ आती तो पानी भर जाया करता था। शबरी की तपोभूमि और भगवान रामचन्द्र के पादपद्म से पुनीत पम्पा सरोवर का अब केवल इतना ही चिह्न शेष रह गया था।

भगवान धूर्जटि की जटा-जूट-जैसे ऋष्यमूक, किष्किन्धा, माल्यवान आदि पाँच पर्वतशृंग, जिन्हें बालि और सुग्रीव के पारस्परिक वैमनस्य के कारण रामायण की कथा में प्रसिद्धि प्राप्त हुई, किसी नये अवतार के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए अब भी खड़े थे।

जहाँ कभी बालि की किष्किन्धा नगरी हुआ करती थी उसके भग्नावशेषों पर निर्मित पेनगोंडा का दुर्ग सूखी धरती पर एकाकी प्रहरी की भाँति खड़ा था।

कोई मनुष्य पाँव फैलाये सोया पड़ा हो, इस आकार-प्रकार की मिट्टी की एक टेकरी भी वहाँ बनी हुई थी। जानकारों के कथनानुसार यह बालि का शव था, जो अब भी पड़ा हुआ है।

इस स्थान से नदी के किनारे-किनारे, जरा आगे बढ़ने पर, हांपी नाम का

गाँव मिलता था। यह पम्पा का कन्नड रूप है। वहाँ से थोड़ा आगे बढ़ने पर किष्किन्धा की पहाड़ी है, जिस पर भगवान पम्पापति का मन्दिर बना हुआ है।

कथा-काल में भगवान पम्पापति का यह मन्दिर उतना विशाल नहीं था। परिधि इसकी पर्याप्त थी। फैलाव भी ठीक-ठीक था। शिखर विशेष ऊँचा नहीं था। भक्तप्रवर हनुमान की देख-रेख में इसका निर्माण हुआ था। देखने पर यह देवमन्दिर ठमका हुआ-सा लगता था।

इस मन्दिर से थोड़ी दूरी पर पहाड़ों में खोदकर बनाई हुई गुफाएँ थीं। इन गुफाओं में इधर कुछ वर्षों से कालमुख विद्याशंकर भगवान तप कर रहे थे। पचास-साठ वर्ष की उनकी अटूट समाधि एक बार भंग हुई तब कालमुख भगवान इन गुफाओं से बाहर निकले और घूम-फिरकर फिर लौट आये और पुनः अपनी समाधि में बैठ गए।

यह प्रदेश पुरातनकाल में तेलुगु, यादव और चालुक्यों के बीच झगड़े की भूमि रहा। उनके बाद होयसलों, यादवों और काकतियों के बीच भी इस प्रदेश को लेकर झगड़ा होता रहा। उनके बाद यवनों और दाक्षिणात्यों के लिए भी यह पारस्परिक संघर्ष का प्रदेश रहा। इसी लिए यहाँ पर न कभी बस्ती रही, न खेती हुई और न आबादी ही। यात्री योजनों तक चलता चला जाता तब कहीं कोई भूला-भटका गड़रिया, किरात या कोई पथिक मिल जाता और उसके सम्बन्ध में भी यह निश्चय कर पाना कठिन हो जाता कि वह मित्र है या शत्रु।

यहाँ युद्ध करने की दृष्टि से आनेवाले को बड़ी तैयारियों और काफी सेना लेकर आना पड़ता। पराजित होने पर भागना मुश्किल हो जाता और विजय होने पर कोई लाभ न होता। चारों ओर यह प्रसिद्ध हो चुका था कि भगवान पम्पापति के धाम में जिस प्रकार कोई सम्पत्ति नहीं, सुविधा नहीं उसी प्रकार कोई विपत्ति भी नहीं। यहाँ तो ज़ो भी आता प्राण को हथेली पर रखकर ही आ पाता। इसलिए इस भूमि में एक निःसंग और विरागी तपस्वी को सताने का किसी के लिए न अवसर था, न अवकाश।

ऐसा लगता था, मानो रामभक्त हनुमान अनन्तकाल से भगवान राम-चन्द्र द्वारा स्थापित इस देवस्थान की मौन चौकी पर रहे हों। जहाँ धर्म, रक्त-

पात और लूट-मार एक-दूसरे के पर्याय बन गए थे वहाँ सब धर्मों मे पारंगत, काल को अपने गाल में रखकर बैठे हुए लंगोटधारी साधु तपस्वी की ओर ध्यान देने की फ़ुरसत ही किसे थी ?

हिमालय की तलहटी से एक भयंकर सर्वभक्षी दावानल हू-हू करता बढ़ा चला आ रहा था। उसके आगे आग और पीछे लूट-मार चलती थी। उसके बीच में मानो चौसठ योगिनियाँ एक साथ अपने खप्पर भर रही थीं। साक्षात् यम के अवतार इस प्रलयंकर दावानल की ज्वाला एक बार दक्षिणापथ को ठेठ कावेरी के किनारे तक छू आई थी, दूसरी बार उसने कापिली को भस्मीभूत कर डाला और तीसरी बार वह तुंगभद्रा को एक ही छलांग में लाँघने को प्रस्तुत हुई थी।

ऐसे समय में पम्पापुरी के तपोवन में तपोवन की शान्ति थी, क्योंकि वहाँ भस्म करने-जैसा, जलाने और लूटने-जैसा कुछ भी नहीं था। पकड़कर ले जाने के लिए वहाँ सुन्दर और सुडौल दास भी नहीं थे।

कालमुख अघोरनाथ को शोभा दे ऐसी यह उग्र तपोभूमि थी। इस समय इस तपोभूमि में अवस्थित भगवान पम्पापति के धाम में, निजमन्दिर में विराजमान भगवान पम्पापति विरूपाक्ष महादेव के लिंग के समक्ष, आसपास की पर्वतमालाओं से खोदकर निकाले हुए हल्के पीले रंग के पत्थरों से जड़े हुए रंगमंडप में कुछ व्यक्ति बैठे हुए थे।

बाहर के चौक में, एक कोने से बेल वृक्षों का झुरमुट शुरू होता था जो ठेठ नदी के किनारे तक चला गया था। इस समय बेल वृक्षों के तनों से लगभग पन्द्रह सफेद घोड़े बँधे हुए थे और मंडप के समीप दो पालकियाँ भी रखी हुई थीं।

रंगमंडप में बैठे हुए प्रत्येक व्यक्ति ने अपने सिर पर ऊँचे कामदार (बालोंवाली टोपियाँ) पहिन रखे थे। सभी के कामदार में तारों की भाँति जगमगाती मुद्राएँ शोभा पा रही थीं। ये मुद्राएँ उन व्यक्तियों के उच्च पदाधिकारी होने की द्योतक थीं। इन मुद्राओं के अतिरिक्त उनकी वेश-भूषा में और कोई बात उल्लेखनीय नहीं थी और न किसी प्रकार की तड़क-भड़क ही थी। दक्षिणापथ के सामान्य सामी की भाँति उनमें से प्रत्येक ने कमर से कुछ

नीचे तक झूलता हुआ वदन (एक प्रकार का अँगरखा) और कमर से पिंडली के ठीक बीच तक पहुँचता हुआ मुंडा (लुंगी या धोती) पहिन रखा था। प्रत्येक के वदन पर बादामी रंग का उपरना (ऊपरी वस्त्र या दुपट्टा) जनेऊ की भाँति पड़ा हुआ था, जिसके नीचे लटकते दोनों छोरों की गाँठ कमर के पास बँधी हुई थी। सभी की कमर में मखमली कारचोबी म्यानवाली तलवारें बँधी थीं, जिनकी मूठों पर सोने-चाँदी की पच्चीकारी की हुई थी।

शंकर के नन्दी के समीप भव्य कान्ति और निस्सीम प्रतिभावाले भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज विराजमान थे। एक सौ और बीस वर्ष की आयु थी भगवान की, परन्तु पच्चीस-तीस वर्ष से अधिक के नहीं प्रतीत होते थे। उनकी जटा के सारे बाल काले थे। नाभि तक लम्बी दाढ़ी का भी एक-एक बाल काला था। त्वचा पर यौवन की कान्ति और किशोरों-जैसी लुनाई थी। उनके पीछे पाँच युवक बैठे हुए थे। पाँचों के शरीर पर केवल एक-एक लँगोट और कन्धे पर यज्ञोपवीत था। सभी के सिर पर जटा और मुँह पर छोटी-छोटी दाढ़ी थी।

भगवान कालमुख सात वर्ष की अखण्ड समाधि के बाद बाहर आये थे।

लगभग पैंतीसेक वर्ष का एक पुरुष आगे आया और भगवान को दण्डवत प्रणाम करके बोला—भगवन्, यह सन्देश प्राप्त होते ही कि आज आप सात वर्ष की अखण्ड समाधि का परित्याग कर दर्शन देनेवाले हैं, मैंने समस्त दक्षिणापथ में उत्सव के आयोजन की घोषणा करवा दी है। इस समय, जब कि हम थोड़े-से व्यक्ति भगवान के प्रत्यक्ष दर्शनों से कृतकृत्य हो रहे हैं, समस्त दक्षिणापथ में—तुंगभद्रा से कावेरी और पूर्व से पश्चिम समुद्र तक के प्रदेश में—गाँव-गाँव, शहर-शहर, भगवान की प्रतिमा की शोभायात्रा निकल रही है। प्रत्येक बस्ती में आज धर्मस्तवन हो रहा है। दीन-दरिद्रों को भोजन मिल रहा है। युवक कसरत के दाँव दिखा रहे हैं। नारियाँ मंगलगीत गा रही हैं। भगवान ने हम पर बड़ी कृपा की। भगवान का विशाल आधिपत्य आज भगवान का आदेश सुनकर कृतार्थ होगा।

'यह सब तो ठीक है राय हरिहर!' कालमुख भगवान ने कहा, 'परन्तु मेरे पास समय कम है।'

'तो क्या भगवान पुनः समाधिस्थ होना चाहते हैं ?'

'भूल गए वत्स ! सात वर्ष पूर्व मैंने भविष्य-कथन किया था—अपनी जीवन-लीला समाप्त करने का समय बताया था। वह समय आज, सायंकाल को गोधूलि के समय उपस्थित होगा।'

'भगवन् !'

'राय हरिहर, अब सन्ताप, ग्लानि अथवा शिष्टाचार के लिए समय नहीं है। जन-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर कर्नाटक प्रदेश के होयसल राजा, अन्य दुर्गपालों और नायकों ने अपने अधिकार और आधिपत्य स्वेच्छा से मुझे प्रदान किये थे। जन-कल्याण के ही लिए मैंने उन्हें स्वीकार किया और अपनी ओर से उन कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए वे सारे अधिकार तुमको सौंप दिये थे। मंडलेश्वर, जो जीव माया, मोह और ममत्व आदि सब प्रकार के बन्धनो से मुक्त था उसने माया-मोह के बन्धनों को स्वीकार किया और जीवन्मुक्त विद्याशंकर दक्षिणापथ का अधिपति बना। आज मैं केवल यही जानना चाहता हूँ कि मैंने जिस कर्म-बन्धन को स्वीकार किया था वह मेरी जीवन-यात्रा की वैतरणी को पार करने में पुण्य का कारण हुआ है या पाप का ?'

'प्रभु, हम सब तो सांसारिक जीव हैं। और आप तो इस जन्म में भी जीवन्मुक्त हैं। हम चौरासी लाख योनियों में भटकते फिरें तब भी हमें मुक्ति की झाँकी तक देखने को नहीं मिलेगी। जीवन्मुक्त तपस्वियों और योगियों के लिए पाप क्या है और पुण्य क्या है, करणीय क्या है और अकरणीय क्या है—इसे हम पामर जीव कैसे जान सकते हैं ? सात वर्ष की अवधि में हमने जो कार्य किये उन्हें आपके समक्ष निवेदित करते हैं। उन कार्यों में कुछ अकरणीय हुआ हो तो भगवान क्षमा करें और करणीय हुआ हो तो आशीर्वाद प्रदान करें। सबसे पहले आपके महाकरणाधिप और हम सब के बुजुर्ग और गुरु दादैया सोमैया आपके समक्ष निवेदन करेंगे।'

भगवान कालमुख ने वहाँ बैठे हुए प्रज्ञाचक्षु दादैया सोमैया की ओर देखा। मुँह से उन्होंने कुछ नहीं पूछा। उनके नेत्रों की वह दृष्टि ही जैसे प्रश्न

पूछ रही थी। प्रज्ञाचक्षु सोमैया ने भी अपने अन्तःचक्षुओं के द्वारा उस दृष्टि के प्रश्न को जान लिया। उन्होंने महाकरणाधिप-पद का सूचक बगुलों के परोंवाला बड़े-बड़े रत्नों से जड़ा हुआ अपना कामदार सिर से उतारकर सामने रख दिया और भगवान की चरण-वन्दना करके निवेदन किया :

'प्रभु ! आज से सात वर्ष पहले आपने मुझे यह मुद्रा प्रदान की थी। आज मैं पुनः इसे प्रभु-चरणों में समर्पित कर रहा हूँ। इन सात वर्षों में मैंने जो कुछ भी किया वह इस प्रकार है—कर्नाटक, तुण्डिर, तेलंग, चेरा और कल्याणी के राजाओं को, पांड्य-संघ के एक सौ दस नायकों को, चौबीस दुर्गों के दुर्गपालों को, चारों समयों के आचार्यों को मैंने विजयधर्म और विजयधर्म-राज्य की मर्यादा के अन्दर रखा है। मैंने पूर्वी और पश्चिमी समुद्र में विजय-धर्मराज्य के शासन का विस्तार किया है। मैंने दक्षिण में ज़ीलन राज्य और पूर्वी समुद्र के पारवाले श्रीविजयराज्य के साथ सम्बन्ध स्थापित किये हैं। तुंगभद्रा और कावेरी नदियों के मध्य दोनो समुद्रों के अन्तर्गत जो प्रदेश है उसके निवासियों और अधिकारियों का मत एक नहीं हो जाता तब तक तुरुष्कों के साथ विग्रह को रोकने का मैंने प्रयत्न किया है। मैं प्रज्ञाचक्षु हूँ फिर भी मेरी एक आँख तुंगभद्रा नदी के पार तुरुष्क राजा तुग़लक की देव-गिरि या दौलताबाद में और दूसरी आँख कावेरी के पार दमग़ानी की तुरुष्क नगरी मदुरा में रही है। मेरे ये कार्य करणीय हों, अकरणीय हों, सबका उत्तर-दायित्व मुझी पर है।'

भगवान विद्याशंकर सुनते रहे, मुँह से वह एक अक्षर भी नहीं बोले; फिर उन्होंने दादैया सोमैया के समीप बैठे हुए भूरुद्र जंगमनाथ आचार्य पंडित तोता की ओर देखा।

दोनो हाथ जोड़कर जंगमनाथ ने कहा—प्रभु, सात वर्षों की अवधि में मैंने जो कुछ किया वह इस प्रकार है—प्रभु का अथवा प्रभुदत्त का शासन हो उस समय लिंगायत बसव सम्प्रदाय के वीरशैव तुरुष्कों के विरुद्ध किये जानेवाले संग्राम मे विजयधर्म के रक्षणार्थ अपने प्राण समर्पित करेंगे। पुराने मतभेदों को वे भूल गए हैं और नये मेल-मिलाप के लिए कृतनिश्चय हैं।

'शृंगेरी मठ के सभी साधु भी इसी प्रकार की सेवा के लिए सदैव

प्रस्तुत हैं प्रभु !' शंकराचार्य श्रीमद्भारतीतीर्थ महाराज ने कहा।

'भगवान की आज्ञा को हम भाव्यों ने भी शिरसा वन्दनीय माना है। भागवतों के साथ मन्दिरों, शासनों, भुक्तियों और उत्सवों को लेकर भाव्यों के जितने भी मतभेद थे वे आज भुलाये जा सके हैं। निगण्ठों की ओर से मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूँ और मुझे विश्वास है कि भागवतों की ओर से भी प्रपन्न रामानुजाचार्य प्रभु को ऐसा ही विश्वास दिलाएँगे।' निगण्ठनाथ नागकीर्तिदेव ने कहा।

'भगवन्! जिस दिन मेरे गुरुवर और श्रीरंगपीठ के भागवतश्रेष्ठ श्रीवेदान्तदेशिक प्रभु ने अपना "शतदूषण" नामक ग्रन्थ अपने हाथों फाड़कर फेंक दिया, उस दिन से भागवत भाव्यों के मन भागवत ही हैं और भाव्य भागवतों के मन भाव्य ही हैं और आगे भी रहेंगे। हम दोनो आचार्यों ने अपने अनुयायियों को भी आचार-विचार, संयम-नियम और मर्यादा-सम्बन्धी ऐसा ही शासन प्रदान किया है। अब प्रभु के चरणों में हमारी केवल इतनी विज्ञापना है कि प्रभु श्रीमुख से हमारे शासन को धर्मशासन के रूप में प्रवर्तित करें।'

'धर्माचार्यों और पीठधरो, धर्मपीठों की गुरुवंशावली के पट्टधरो,' कालमुख भगवान ने कहा, 'मैं ठहरा साधु-संन्यासी। मैं केवल धर्म का उपदेश दे सकता हूँ, धर्म का आदेश भी दे सकता हूँ, परन्तु धर्मशासन प्रवर्तित करने का कार्य तो शासन के सूत्रधारों का है। यह उपदेश है मेरा विजयधर्मराज्य के महाकरणाधिप सोमैया नायक को कि वह इस प्रकार का धर्मशासन प्रवर्तित करें।'

'प्रभु !' राजगुरु पंडित आर्यदेवभद्र ने अपना कथन प्रारम्भ करते हुए कहा, 'मैं राजगुरु हूँ। इसलिए मेरा कोई समय (धर्म, सम्प्रदाय) नहीं, अथवा सभी समय मेरे हैं। चारों समयों में उल्लिखित लोकधर्म, राजधर्म, शासनधर्म के यम और नियम एक-जैसे हैं। इन यम-नियमों के अनुरूप और अनुकूल राज-व्यवहार तथा लोक-व्यवहार होता है या नहीं, यह देखने का काम मेरा है; इसकी व्यवस्था करना मेरा कर्त्तव्य है। भगवन, विजयधर्म प्रदेश को चार विभागों में विभक्तकर प्रत्येक विभागों में एक-एक धर्मा-

धिकारी नियुक्त किया गया है। प्रत्येक धर्माधिकारी के अन्तर्गत पुजारी, अर्चक और अग्रहार नियुक्त किये जाकर उनके लिए विद्याशालाएँ स्थापित हुई हैं। लोक-जीवन का आचार-व्यवहार, और रहन-सहन उसके जीविकोपार्जन की पद्धति के अनुसार ही अस्तित्व में आता और उसी पर निर्भर करता है। जीविकोपार्जन की पद्धति के अनुसार ही यम-नियम भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। हमारे प्रदेश में आजीविका के दो मुख्य भेद हैं। कुछ लोग सागर से और कुछ लोग धरती से अपनी आजीविका ग्रहण करते हैं। आजीविका के इन दो भेदों को ध्यान में रखकर हमने देश की सारी जनता को दो वर्गों में विभक्त किया है। एक वर्ग इदांगी कहलाता है। इनकी आजीविका सागर पर निर्भर करती है। दूसरा वर्ग वालांगी कहलाता है। इस वर्ग की आजीविका धरती पर निर्भर करती है। दोनो वर्गों की परम्पराएँ और मर्यादाएँ निश्चित कर दी गई हैं। इनके अध्ययन के लिए स्थान-स्थान पर विद्यालय स्थापित किये गए हैं। इन विद्यालयों के स्नातकों में से ही पुजारियों, अर्चकों और अग्रहारों का चुनाव किया जाता है। सभी के लिए न्याय-अन्याय, करणीय-अकरणीय, कार्य-अकार्य आदि आचरण-सम्बन्धी नियम निश्चित कर दिये गए हैं। लोक-आचरण और लोक-व्यवहार के जो धर्मधुरीण और जानकार होते हैं उन्हीं को धर्माधिकारी नियुक्त किया जाता है। प्रजाजनों के पारस्परिक व्यवहारों एवं प्रजाजन तथा राज्य के बीच के व्यवहारों को न्याय और धर्म के अनुसार मर्यादित करने के हमारे इन प्रयत्नों में, यदि किसी प्रकार की अभिवृद्धि करनी हो तो भगवान आदेश देने की कृपा करें।'

धर्माचार्यों के बाद कालमुख भगवान की दृष्टि वहाँ बैठे हुए दुर्गपालों की ओर गई। सब की ओर से बुक्का ने निवेदन किया—भगवन्, दुर्गपालों की ओर से मुझे केवल यही निवेदन करना है कि हमने दुर्गों को सँभालकर रखा है, आवश्यक सामग्रियों से उन्हें भरा-पूरा रखा है, सेना से उन्हें सुरक्षित और सुसज्जित भी किया है; परन्तु इस सम्बन्ध में विशेष विवरण देने का अधिकार दो व्यक्तियों को है—उनमें एक हैं सोमदेव सोलंकी और दूसरे हैं हनुमन्त कपाय नायक।

'प्रभु !' हनुमन्त कपाय नायक ने कहा, 'मैं कांची का दुर्गपाल हूँ। मैंने पूर्वी समुद्र में जलसेना और लड़ाकू जहाजों का संगठन किया है, जिसमें तुरुष्क कलिंग और बंग से समुद्री मार्ग के द्वारा मदुरा के दमग़ानी सुल्तान की सहायता न करने पायें, कापिली तक पहुँचने का प्रयत्न न कर सकें और वारंगल को सताने न पायें। अपने नौसैनिकों के द्वारा मैंने कावेरी के किनारे से ठेठ कलिंग तक के समुद्र-तटवर्ती प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित किया है। बंगाल से तीन-तीन बार नौकाधिपतियों ने बड़ी-बड़ी नौसेनाएँ लेकर वारंगल, कांपिली और मदुरा पहुँचने के प्रयत्न किये, और मैंने उन्हें तीनों बार निष्फल कर दिया। नेपाल के द्वीप पर तुरुष्कों का जो अड्डा था मैंने उसे तोड़ डाला और दक्षिणापथ के पार्श्व में वर्षों से काँटे की भाँति चुभते रहनेवाले इस द्वीप को आज भगवान के चरणों में लाकर रख दिया है।'

'तुंगभद्रा के पार कांपिली में तुरुष्कों की जो चौकी थी उसे मैंने तोड़ फेंका है। वहाँ मलिक मकबूल मुहम्मद नाम का जो सूबा रहता था उसे मैंने मारकर भगा दिया है।' सोमदेव सोलंकी ने भी दूसरों की भाँति अपनी मुद्रा भगवान के चरणों में रखते हुए कहा। 'तुंगभद्रा के इस ओर तुरुष्क या तुरुष्कों के समर्थक समुद्री किरात अपने पाँव न बढ़ा सकें इसलिए मैंने यहाँ से कुछ ही दूर पर आनेगुण्डी का दुर्ग निर्मित किया है। इस दुर्ग में सेना है, सैनिक सरंजाम है और हरिगोल (नावें) भी हैं। जिस दिन विजयधर्म की सेनाओं को तुरुष्कों पर आक्रमण करना होगा उस दिन दो लाख सैनिक तुंगभद्रा के पार उतारे जा सकें, इतना सामान और साधन मैंने आनेगुण्डी में जमा कर रखा है। अब तो यही प्रार्थना है कि प्रभु हमें आक्रमण की आज्ञा प्रदान करें।'

'प्रभु, मैं वारंगल का राजा कृष्णाजी नायक हूँ। तुंगभद्रा के इस तट पर न होते हुए भी मैं विजयधर्मराज्य का सामन्त और सिपाही हूँ। तुरुष्क तुंगभद्रा के इस ओर देखने की भी हिम्मत न कर सकें इसलिए मैं महाकरणाधिप दादैया सोमैया के साथ उनका अनुगत रहकर देवगिरि के विरुद्ध गरुड़ों (अंगरक्षकों) की सेना लेकर घूमता रहता हूँ। कभी छापे मारता

हूँ, कभी लड़ लेता हूँ, और कभी भाग जाता हूँ। तुरुष्क पीछा करते हैं तो चक्कर खाकर उनको घेर लेता हूँ और नष्ट कर देता हूँ। प्रभु, दक्षिणापथ को जीवित रखने के लिए वारंगल को लड़ते रहना चाहिए और इसलिए मैं निरन्तर लड़ता रहता हूँ। एक सौ और आठ घाव तो प्रभु, मेरे इस शरीर पर स्वयं गिन सकते हैं। इन घावों को मैं प्रभु की चरणवन्दना के पुष्पों के रूप में समर्पित करता हूँ। वैसे तो यह आत्म-प्रशंसा ही है और ऐसी बात मुँह से कहना तो ठीक, मन में सोचना भी नहीं चाहिए, लेकिन प्रभु के चरणों में समर्पित करने के उद्देश्य से ही मैंने यह बात कही है। स्वर्गवासी महाराज गंगू कन्याली की कृपा से देवगिरि में मेरा थोड़ा-सा सम्पर्क स्थापित हुआ है। वहाँ मलिक अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी रहता है। मलिक रहमान तग़ी भी है। वहाँ मेरी दो धर्म बहिनें भी हैं : एक है वल्लरी—गंगू कन्याली की विधवा पत्नी और मलिक रहमान तग़ी की पुत्री; दूसरी है मेहरबानु—दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के भाजे की पत्नी और दिल्ली के भूतपूर्व सुल्तान हिसामुद्दीन की पुत्री। भगवन्, देवगिरि में मुहम्मद तुग़लक के पतन के लिए मैंने बहुत कुछ किया है और अब भी करता जा रहा हूँ।'

और उसने भी अपनी मुद्रा भगवान के चरणों में समर्पित कर दी।

कालमुख भगवान का चेहरा निर्विकार बना रहा। कोई यह जान न पाया कि जो कुछ कहा गया है वह भगवान को अनुकूल लगा या प्रतिकूल। जब सभी अपनी मुद्राएँ भगवान के चरणों में रख चुके तो होनावर के दुर्गपाल उदयभान ने अपनी मुद्रा उतारकर प्रभु के चरणों में रखते हुए कहा—प्रभु, मेरे जीवन-काल में तुरुष्क मेरे दुर्ग के समीप आ नहीं सके हैं और मेरे जीते-जी आ सकेंगे भी नहीं।

अब एक दुबला-पतला ब्राह्मण खड़ा हुआ है। उसकी शिखा कन्धे तक आती थी और उसमें तेल पड़ा हुआ था। उसके कपाल में त्रिपुण्ड बना था और त्रिपुण्ड के बीचोबीच एक लाल गोल टीका शोभा पा रहा था। गले में रुद्राक्ष की कई मालाएँ और कन्धे पर जनेऊ था। वस्त्रों के नाम पर उसकी कमर में घुटनों तक की धोती बँधी थी। उसने कहा—भगवन्, मैं

ठहरा ब्राह्मण। इसलिए मेरे पास कोई मुद्रा नहीं और न मैंने किसी से उसकी माँग ही की, और न मैंने कभी उसके लिए दावा ही किया। मैंने समस्त दक्षिणापथ में घूम-घूमकर इतस्ततः बिखरे हुए साहित्य और स्मृति के ग्रन्थों को एकत्रित किया। वेदों की पोथियों को यहाँ-वहाँ से ढूँढ़-खोजकर प्राप्त किया। कालिदास के नाटकों की हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध कीं। इन कार्यों के अतिरिक्त मैंने कालिदास के एक नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की टीका भी लिखी है। इन दिनों रघुवंश की टीका लिख रहा हूँ और सामवेद की कौथुमी शाखा का संकलन भी कर रहा हूँ। प्रभु, मेरा नाम मल्लिनाथ है और मेरा गोत्र आंगिरस है।

यह सुनकर कालमुख भगवान पहली ही बार बोले और उन्होंने पूछा—और वत्स, क्या इसके अतिरिक्त तुमने और कुछ भी नहीं किया?

'प्रभु, और तो क्या करता? प्राचीन पोथियों की शोध-खोज और उनका पुनःसंस्करण करने, अध्ययन-अध्यापन एवं अनुशीलन-अनुसन्धान के लिए जो शान्ति चाहिए वह उपलब्ध नहीं होती। इसलिए मैंने और मेरे शिष्यों ने सोच-विचारकर तुरुष्कों के पास से वातापी का दुर्ग छीन लिया।

'छीन लिया? यह किस तरह?' विनयादित्य पूछ ही बैठा।

'हमने कुछ विशेष तो किया नहीं। एक दिन मैं अपने काम से शिष्यों-सहित वातापी पहुँच गया और वहाँ के तुरुष्क सूबा से कहा कि यह पुराण-कालीन दुर्ग हमारा है। तुमने इसका बदामी नामकरण किया है यह हमें स्वीकार नहीं। भगवान अगस्त्य ने अपने चरणकमलों से इसे पवित्र किया है। हम यहाँ पर एक विद्यालय स्थापित करना चाहते हैं, इसलिए तुम इस दुर्ग को छोड़कर चले जाओ। हम सीधे-सादे निःशस्त्र ब्राह्मणों को इस तरह आया देखकर वातापी का वह तुरुष्क सूबा सहसा घबरा उठा। उसने सोचा कि ये ब्राह्मण अकेले अपने बल पर इस तरह कदापि नहीं आ सकते। इनके पीछे विजयधर्मराज्य के दुर्गपालों, दण्डनायकों, करणाधिपों, सोमैया नायक और महामंडलेश्वर राय हरिहर की शक्ति होनी चाहिए। उसने वहाँ से भागकर देवगिरि अर्थात् दौलताबाद में जाकर शरण लेना ही उचित समझा। वह इस शर्त पर जाने को तैयार हो गया कि हम उससे लड़ेंगे नहीं, शान्तिपूर्वक

चला जाने देंगे। और वह सचमुच ही चला गया। तब से हम वातापी में हैं। उसके बाद हमने होनावर के दुर्गपाल को सारा हाल बताया, तो उन्होंने हमारी रक्षा के लिए सेना और सामग्री दी और मुझे दुर्गपाल बनाकर दुर्ग की रक्षा करने का भार सौंप दिया। तभी से मेरे शिष्य, कभी विनोद में और कभी मौज में आकर मुझे सेनापति मल्लिनाथ कहकर पुकारते हैं।'

फिर कालमुख भगवान ने वनवासी दुर्ग के दुर्गपाल गोपभट्टी की ओर देखा और उसने अपनी मुद्रा उतारकर निवेदन किया—भगवन्! दुर्ग, सेना और साधन सभी कुछ तैयार हैं। मैं इसी बात की प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि आप मुझे मदुरा-विजय की आज्ञा प्रदान करें।

'और भगवन्,' विनयादित्य चालुक्य ने कहा, 'मैं चन्द्रगिरि के सात दुर्गों का दुर्गपाल हूँ। मेरे सातों दुर्ग ठीक मध्य मे हैं। तुंगभद्रा से कावेरी और पूर्व तथा पश्चिम समुद्र के मध्यवर्ती दक्षिणापथ मे जिसे जितनी और जैसी सहायता चाहिए वह सब मेरे दुर्गों से प्रदान की जा सकती है। मैंने अपने सातों दुर्गो में इतने सैनिक और सामग्री जमा कर रखी है कि यदि समस्त दक्षिणापथ पर तुरुष्क आक्रमण करके उसे पादाक्रान्त कर दें तब भी मेरे दुर्ग सात वर्षों तक उन आक्रमणकारियों को रोके रख सकते हैं। सातों दुर्गों के बीच मैंने विशाल धर्मसागर नाम का सरोवर खुदवाया है जिसमें पानी का अखूट भण्डार भरा हुआ है। विपुल अन्नराशि जमा है। शस्त्रास्त्रों, सैनिकों और योद्धाओं की तो कोई कमी ही नहीं।'

उसके बाद वायीजन श्रेष्ठी ने अपनी मुद्रा नीचे रखकर कहा—भगवन्, एक सौ बीस वर्ष के पश्चात् अभी-अभी भगवान गोमटेश्वर का अभिषेक हो रहा था; वह अधूरा रह जाता, लेकिन उसे आपके मण्डलेश्वर ने पूरा करवाया। तब से बेलगोला के वीरवणिगा मण्डलेश्वर के साथ हैं—अपने समस्त साधनों और सामर्थ्य के साथ। प्रभु, आपके नाम पर मैंने समस्त दक्षिणापथ के प्रत्येक दुर्ग में, प्रत्येक नायक के यहाँ, प्रत्येक पुरुषार्थ और प्रयत्न में एक प्रहर तक स्वर्ण की वर्षा की है। और प्रभु, भविष्य में जब कभी आवश्यकता होगी वायीजन श्रेष्ठी और वीरवणिगा आपके महाकरणाधिप और मण्डलेश्वर की सहायतार्थ प्रस्तुत रहेंगे।'

'भगवन् ! अब अन्त में मेरा निवेदन सुनें ।' राय हरिहर ने अपनी मुद्रा उतारकर नीचे रखते हुए कहा, 'आपने जो कुछ सुना उसमें मेरा सहयोग था और है । वायीजन श्रेष्ठी की स्वर्ण-सहायता से तुरुष्कों के साथ हर कदम पर युद्ध किया जा सके, इस प्रकार सभी दुर्गों को सैनिक, शस्त्रों, अन्न और जल से साधन-सम्पन्न कर दिया गया है । जब तक हमारी ओर से पूरी तैयारियाँ नहीं हो जातीं तब तक तुरुष्कों के साथ बड़े पैमाने पर युद्ध न करने और सीमाओं को पूरी सावधानी से सुरक्षित रखने की आज्ञा प्रचारित करने की सारी जिम्मेवारी मेरी है । मैंने केवल वारंगल के कृष्णाजी को, आनेगुण्डी के सोमदेव को और कांची के कपाय नायक को ही तुरुष्कों के साथ मुठभेड़ें करते रहने की छूट दे रखी है । बाकी सबको मैंने तुरुष्कों के साथ लड़ने से रोककर रखा है । अभी हमारी सारी शक्ति तैयारियों में ही लगी हुई है । भगवन्, हम जानते हैं कि एक दिन तुरुष्क अपने सब साधनों और पूरी शक्ति के साथ हम पर टूट पड़ेंगे । उस दिन दक्षिणापथ के प्रत्येक निवासी को, चाहे वह नायक हो या कुरुबा, होलेय, पालेर या बेसवागा हो, यह समझ में आ जाये कि उसके व्यक्तिगत हित पर आघात पहुँच रहा है, इसलिए मैंने रायरेखा अंकित की है । आगामी युद्ध किसी एक राजा अथवा किसी एक नायक के विरुद्ध, किसी एक समय अथवा सम्प्रदाय के विरुद्ध नहीं, समस्त प्रजाजन के विरुद्ध है, यह बात जनसामान्य समझ ले, इतना सबकी समझ में आ जाये कि वह युद्ध सभी के देश और आजीविका पर आघात करने के लिए है तो विजयधर्मराज्य के गाँव-गाँव, घर-घर और जंगल-मैदान से लड़ने के लिए योद्धा निकल आयेंगे । रायरेखा की स्थापना का प्रयोजन भी यही है । आप समाधि से जाग्रत होकर दर्शन देनेवाले हैं, यह सन्देश मिलते ही सबको यहाँ आकर अपने-अपने कार्यों का विवरण देने का निमंत्रण देने का उत्तरदायित्व भी मेरा ही है । आपके समाधि से जाग्रत होने के दिन समस्त राज्य में आनन्दोत्सव मनाने का आदेश देने का उत्तरदायित्व भी मेरा है ।' यह कहते हुए राय हरिहर ने अपनी मुद्रा गुरुचरणों में रख दी और बोले, 'प्रभु, हमने तो इस मार्ग का अवलम्बन किया है । इससे विशेष कुछ करना हो तो भगवान स्वयं आदेश प्रदान करें ।'

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा। तभी घोड़े की टापों का स्वर सुनाई दिया। कोई अश्व क्षिप्र वेग से दौड़ता हुआ इसी ओर चला आ रहा था। जरा-सी देर के बाद पसीने और फेन से लथपथ एक अश्व वहाँ आ खड़ा हुआ। उसका आरोही नीचे कूदा और बुलन्द स्वर में पुकार उठा—राज-संन्यासी वीर बल्लाल की जय हो! भगवान कालमुख की जय हो!

सब लोगों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो गया और उसके इस अविनय के लिए वहाँ उपस्थित सभी की भृकुटियाँ भी किंचित् बंकिम हो गईं।

आरोही सीढ़ियाँ चढ़कर रंगमंडप में आया और भगवान कालमुख के चरणों में प्रणिपात करता हुआ बोला—भगवन्, आशीर्वाद प्रदान करें।

'अरे कौन? अलाया भालारी बिबोया?' वायीजन बोल उठा।

२. विषकन्या

भालारी बिबोया को प्रत्यक्ष तो बहुत ही कम लोगों ने देखा था, लेकिन वायीजन श्रेष्ठी के अलाया (दामाद के लिए आदरवाचक सम्बोधन) के रूप में समस्त दक्षिणापथ में वह प्रख्यात था।

वायीजन श्रेष्ठी स्वयं भी बड़ा ही असाधारण पुरुष था। वह वीरवणिगा का पृथ्वीशेटी (जगतसेठ) था। उसी के प्रयत्नों से वीरवणिगों ने होलेय (खेती के दास) और पालेर (व्यापारी के दास) की अनादिकाल से चली आती प्रथाओं का परित्यागकर रायरेखा को अपनाया था। उसके बाद से ही वायीजन श्रेष्ठी विजयधर्मराज्य के जगतसेठ कहलाने लगे थे। और जगतसेठ बनकर उन्होंने असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया था। समस्त विजयधर्मराज में उन्होंने कंचन की वृष्टि की थी। वायीजन श्रेष्ठी के इस महान कार्य से सभी परिचित थे। उन्हें प्रत्यक्ष जाननेवाले तो बहुत ही थोड़े थे, परन्तु इस समय जो अश्वारोही दौड़ता हुआ आया था, वह जिस महिला का पति था उस गोमती को तो प्रायः सभी ने अपनी आँखों प्रत्यक्ष देखा था।

कौन था जिसने लम्बे डील, गोरे शरीर और सुडौल अवयवोंवाली उस

युवती को न देखा हो ? वह ऊँचे कामदार पर पृथ्वीशेटी की मुद्रा धारण किये पुरुष-वेश में सफेद घोड़े की सवारी करती थी। कमर में उसके तलवार लटकी रहती। बगल में कटार होती। श्वेत वदन पर उपवीत डाला हुआ होता और हाथ में मगर की दुम के चमड़े की पतली कशा (चाबुक) लिये रहती थी। वह सुन्दरी युवती प्रत्येक नायक, प्रत्येक दुर्गपाल, प्रत्येक सामन्त, प्रत्येक आभट, प्रत्येक अर्चक और प्रत्येक अग्रहारी तथा प्रत्येक अभाराम (एक सहस्र सैनिकों की टुकड़ी का नायक) के लिए जीता-जागता संकट और सजीव सहायता भी थी।

कावेरी से तुंगभद्रा तक के मध्यवर्ती प्रदेश में वह हर कहीं और हर समय इस तरह पहुँच जाती, मानो पाताल फोड़कर निकल आई हो। वायीजन श्रेष्ठी की कंचन-वर्षा की वह जैसे जीती-जागती नहर थी। वह युद्धोपयोगी सामग्री लाने और ले जाने का काम करती, अन्न-वस्त्र से सहायता करती। और बेसवागों का पालन-पोषण करती। शस्त्रास्त्र वह पहुँचाती, किलों और दुर्गों की मरम्मत करवाती, जलाशय खुदवाती, गाँवों में किले बँधवाती। जहाँ किले होते उनके चारों ओर किलों की दोहरी पाँत तैयार करवा देती। वह ईरान से घोड़े, लंका से हाथी, मलाया और जावा-सुमात्रा से इमारती लकड़ी मँगवाती। समुद्र के किनारों पर और बन्दरगाहों में वह जलवाहनों और जल-पोतों का निर्माण भी करवाती थी।

वह नारी नहीं साक्षात् योगमाया थी। दादैया सोमैया उसे दक्षिणापथ की आँख कहते थे। उसी के प्रयत्नों से आज दक्षिणापथ में एक लाख अश्वों, बीस हजार हाथियों और सात लाख आभटों की सेना संगठित और सन्नद्ध थी। उसने पाँच बड़े और एक सौ बीस नये दुर्ग बनवाये थे। उसी के प्रयत्नों और पुरुषार्थ के कारण चन्द्रगिरि का दुर्ग इतना शक्तिशाली और दुर्भेद्य हो गया था कि समस्त भारतवर्ष के तुरुष्क यदि पूरे दलबल से आक्रमण करते तो भी उसकी एक ईंट नहीं खिसका पाते।

सात-सात पुरुषों की मिट्टी को मथकर विधाता ने जिसे सिरजा हो, उस नारी से अपरिचित कौन रह सकता था ? कोई उसे दक्षिणापथ की भाग्यलक्ष्मी कहता

था, तो कोई योगमाया। वह विजयधर्मराज्य की प्रजा में पुरुषार्थ का संचार करती हुई समस्त दक्षिणापथ में वाणिज्य-व्यवसाय की धारा को अजस्र रूप से प्रवाहित किये हुए थी। देश की सारी जनता को उसने एक-सूत्र में पिरो रखा था। वह ऐसी नारी थी जिसकी पत्नी के रूप में कभी कल्पना की ही नहीं जा सकती। और ऐसी नारी का पति होना महान सौभाग्य है या दुर्भाग्य, यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

और इसी-लिए ऐसी महिला के पति को और ऐसे महान पृथ्वी श्रेष्ठी के अलाया को वहाँ सभा में प्रवेश करते देख सभी को परम आश्चर्य हुआ।

'अलाया, अलाया!' वायीजन श्रेष्ठी ने बिबोया की ओर लपकते हुए कहा, 'तुम और यहाँ?'

बिबोया ने कहा—भगवान कालमुख मेरे अविनय को क्षमा करें। महा-मण्डलेश्वर, महाकरणाधिप और वायीजन श्रेष्ठी भी मेरे अविनय को क्षमा करें। यहाँ उपस्थित सभी सभाजन मुझे मेरे दुर्व्यवहार के लिए क्षमा करें। क्योंकि मैं भी आप सब महानुभावों की भाँति भगवान कालमुख के श्रीचरणों में अपने कार्यों का विवरण निवेदित करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद बिबोया ने पुनः कहा—मैं विजयधर्म की हस्ति-सेना का दंडनायक, वायीजन श्रेष्ठी का अलाया, भगवती गोमती का पति और अपने अध्ययन को अधूरा ही छोड़कर भगवान के चरणों से भाग जाने-वाला, फिर भी, भगवान का शिष्य तो हूँ ही। अपने कार्यों का विवरण मुझे भी भगवान के समक्ष निवेदित तो करना ही चाहिए।

'तो क्या तुमने अपनी मूर्खतापूर्ण योजना को....' चन्द्रगिरि के वज्रगढ़ का दुर्गपाल कह उठा।

'मुझे अपनी बात कह लेने दीजिए दुर्गपालजी! मैं भगवान कालमुख, महाकरणाधिप और महामंडलेश्वर के उपालम्भ का पात्र और उनका अपराधी हूँ। और भगवान से अपने कार्यों का विवरण निवेदित करने की अनुमति चाहता हूँ।'

'क्या कहना है तुम्हें? यहाँ उपस्थित सभी सदस्यों ने मेरे नाम से चल

रहे विजयधर्मराज्य की महत्ता को बढ़ाया ही है। क्या तुमने भी ऐसा ही, या कुछ और किया है?'

'भगवन्, मेरी बात सुनकर न्याय करें और तब उचित समझें तो अपने आशीर्वाद प्रदान करें। मैं बेसवागा भालारी हूँ। लकड़ी के हत्थों में लोहे के फ़ले जड़ने का मेरा पेशा है। शूद्रों में ही मेरी गिनती होती है। परन्तु ईश्वर की कृपा, भगवान कालमुख के आशीर्वाद और महाकरणाधिप दादैया सोमैया की सद्भावना से मेरा भाग्य जागा और भगवती गोमती के साथ विवाह का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। बेसवागा होकर भी मैंने ऐसे पिता की इकलौती पुत्री के साथ विवाह किया जो भारत का सर्वश्रेष्ठ धनाधीश है। यदि आसमान से अप्सराएँ भी उतर आयें और धरती फाड़कर आलवारा उदालियाँ भी प्रकट हो जायें तो भी मैं गोमती के सिवाय किसी दूसरी प्रेमिका अथवा पत्नी की आकांक्षा नहीं करूँगा। परन्तु फिर भी हम पति-पत्नी के पारस्परिक स्नेहपूर्ण सम्बन्धों में एक अन्तराय उपस्थित हो ही गया। गोमती ने अपने जिम्मे एक महान कार्य उठा रखा है। वह समस्त दक्षिणापथ को एक विशाल दुर्ग में परिणत करने के महत् कार्य में संलग्न है। मैं उसके इस कार्य के बीच आ नहीं सकता और आया भी नहीं; परन्तु यह बात मुझे अहर्निश सालने लगी कि जब सभी लोग विजयधर्मराज्य के लिए कुछ-न-कुछ कर रहें तो मैं ही अकेला सुस्त बैठा हुआ हूँ। वायीजन श्रेष्ठी मुझे अपने व्यवसाय-कार्य में लगाना चाहते थे; लेकिन लेन-देन, खरीद-बिक्री और हानि-लाभ में मेरी बुद्धि चलती नहीं थी। गोमती के कार्यों में उसका हाथ बँटा सकूँ—सैनिकों, शस्त्रास्त्रों और अन्न आदि का हिसाब रख सकूँ, इतनी बुद्धि भी मुझमें नहीं। तब मैंने यह सोचा कि क्या मुझे "श्वशुराच्चाधमाधमाः" (श्वशुर के नाम से पहचाने जानेवाला अधमाधम) की अपकीर्ति लेकर ही जीना होगा? क्या गोमती के अश्वों को सजाना और उसके आदेशों को ही सुनते रहना होगा? जब सारा प्रदेश अपना मनचीता कार्य कर रहा हो तब क्या मुझे निष्क्रिय ही बैठे रहना होगा? इतने में एक दिन गोमती यह समाचार लाई कि भगवान कालमुख समाधि का परित्यागकर बाहर निकलनेवाले हैं और उसके बाद अपनी जीवन-लीला का संवरण कर लेंगे। तब तो मैं बहुत ही व्यग्र हो उठा। मुझे गोमती

से बड़ी ईर्ष्या हुई। उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया था और उसमें निरन्तर लगी हुई थी। रात में जब वह मुझसे मिलती तो उसके वस्त्र धूल से मैले हुए रहते, अंग-प्रत्यंग यात्रा की धूल से भरा और पसीनेवाला होता। जब मैं उसे स्नान करवाता तो मुझे उसके स्वेद, धूल और क्लान्ति से ईर्ष्या होती। उस समय मेरे कानों में सालुवा माँगी का यह ताना गूँज उठता कि "अरे बिब्रोया, तू जन्मजात जुआरी है और जुआरी भी जीता हुआ। हारा जुआरी तो दूने जोश से खेलता है, लेकिन जीता जुआरी हाथ टेककर बैठ जाता है।" इसके साथ ही मुझे गोमती के शब्द याद आ जाते थे। वह कहा करती, "स्वामी, मैं अपने पिता और पति दोनो का ही काम कर रही हूँ। मेरे पिता अपनी शेष आयु अरहन्त की उपासना में और मेरा पति अपनी शेष आयु मेरी उपासना में व्यतीत करे, इसलिए मैं दोनो का ही काम कर रही हूँ।" भगवन्, यह सुनकर मेरे मन पर क्या बीतती थी इसे केवल आप ही जान सकते हैं, क्योंकि आप सर्वज्ञानी हैं! भगवन्, मुग्धा के भावों का तो सभी शास्त्रों ने वर्णन किया है, परन्तु मुग्धा के पति के मन के भावों का आज तक कोई वर्णन नहीं कर सका तो मैं ही बेचारा किस तरह कर सकता हूँ ! और जब मैंने यह सुना कि आप समाधि का परित्याग करनेवाले हैं तब तो मैं बहुत ही बेचैन हो उठा, क्योंकि उस दिन, दूसरों की भाँति, मेरे पास अपने कार्यों का विवरण देने के लिए कुछ भी नहीं था।

'तभी एक दिन सुन्दर पांड्य आकर मुझसे मिला। और जिस प्रकार अँधेरे जंगल में खोया हुआ भाला या तीर आसमान में बिजली के चमकते ही मिल जाता है उसी प्रकार मुझे भी अपना कर्तव्य दिखाई दे गया। सुन्दर पांड्य को दक्षिणापथ में कौन नहीं जानता ? मदुरा की राजगद्दी को प्राप्त करने के लिए उसने तुरुष्क सेना को निमंत्रण देकर बुलाया और अपने सगे भाई की हत्या करवाई, फिर भी मदुरा की जागीर सुन्दर को न मिल सकी—तुरुष्क सेनापति ही उसका अधिकारी बन बैठा। उस दिन से सुन्दर मदुरा के सिंहासन को प्राप्त करने के लिए भाँति-भाँति के प्रयत्न और पुरुषार्थ कर रहा है और जब तक जियेगा करता रहेगा। वह मेरे पास यह याचना करता हुआ आया कि वीरवणिगा उसे धन की सहायता करें, जिससे वह ज़ीलन से सैनिक लाकर,

उन सैनिकों की मदद से, मदुरा पर अधिकार कर सके। मुझसे याचना करने का कारण यह था कि मैं वार्याजन श्रेष्ठी का अलाया और उनका पदाधिकारी हूँ। सुन्दर की इस याचना में चेतावनी और चुनौती दोनो ही थे। उसने कहा कि यदि मदुरा का सिंहासन उसे मिल गया तो वह दक्षिणा-पथ का मित्र बनकर रहेगा और कावेरी के दक्षिण की ओर के तुरुष्कों का नामनिशान मिटा देगा। जब विजयधर्मराज्य दिल्ली के सुल्तान के साथ युद्धरत होगा तो सुन्दर का राज्य विजयधर्मराज्य की सहायता करेगा। और उसने यह भी कहा कि जो कोई सुन्दर की सहायता के लिए प्रस्तुत नहीं होगा उसकी वहो गति होगी जो करनाटक के वीर बल्लाल की हुई। सुन्दर ने वीर बल्लाल से मदुरा के लिए सहायता की याचना की थी, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि वीर बल्लाल का मस्तक मदुरा के किले के परकोटे पर भाले में टाँगा गया।

'सभाजनो, मदुरा के उस युद्ध में मैं स्वयं सम्मिलित हुआ था। मदुरा के उस युद्ध में जो विश्वासघात हुआ उसे मैंने स्वयं अपनी आँखों देखा है। उस युद्ध में राजसंन्यासी के हाथों मदुरा के सुल्तान अहसानशाह नासिरुद्दीन दमग़ानी की पराजय हुई। हारने के बाद अहसनशाह ने राजसंन्यासी से प्रार्थना की कि उसे अपने मारे हुए सिपाहियों को दफन करने और घायल सिपाहियों की चिकित्सा करने का अवसर दिया जाये। उदारचेता राजसंन्यासी ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर युद्ध स्थगित कर दिया। उनकी उदारता और भोलेपन का अहसानशाह ने अनुचित लाभ उठाया। सुल्तान के चाचा गयासुद्दीन दमग़ानी ने राजसंन्यासी को गिरफ्तार कर लिया। इस दुष्कृत्य में सुन्दर पांड्य मदुरा के सुल्तान का सहायक और सलाहकार था। सुन्दर पांड्य ने ही राजसंन्यासी का सिर कटवाया और गयासुद्दीन ने स्वयं अपने हाथों उस छिन्न-मस्तक को किले के परकोटे पर टाँगा।

'यही थी सुन्दर पांड्य की चुनौती। उसका संकेत यह था कि जो उसकी सहायता करने से इनकार करेगा उसके ऐसे ही बुरे हाल होंगे। यहाँ उपस्थित सभी सभाजन सुन्दर पांड्य को जानते हैं। वह मनुष्य नहीं काला साँप है।

देने पर आता है तो अपने माथे की मणि भी उतारकर दे देता है, नहीं तो एक ही फूँक में भस्मीभूत कर देता है।

'हाँ तो सभाजनो, सारे दक्षिणापथ के समस्त नर-नारी अपने कार्य में लगे हुए थे। स्वयं मेरी पत्नी गले तक काम में डूबी हुई थी। मेरे श्वसुर वायीजन श्रेष्ठी ने दीक्षा लेकर अरहन्त की उपासना करने का निश्चय कर लिया था, परन्तु देश की पुकार पर अपने इस निश्चय को परे रखकर वह भी काम में जुट गए। बेलगोला में प्रतिदिन पाँच-पचास के हिसाब से बेहारुलू (समुद्री मार्ग से आनेवाले व्यापारिक सार्थवाह) आते और प्रतिदिन पाँच-पचास बनाजा (स्थल मार्ग पर संचरण करनेवाले व्यापारी सार्थवाह) जाते थे। देशजनों की कर्मण्यता और क्रियाशीलता का यह हाल था कि चोलेत्री (वह स्थान जहाँ व्यापारियों के लिए भोजन और विश्राम का प्रबन्ध किया जाता था) का मेरा साथी विप्रविनोदी—विप्रविनोदी इसलिए कि उसने ब्राह्मण होते हुए भी अपनी वासना-तृप्ति के लिए हीनकोटि की, अछूत और निरक्षर स्त्री से विवाह कर लिया था—सोम साभी भी काम में लगा हुआ था। कोई खाली नहीं था। खाली था तो एक अकेला मैं।

'सभाजन, आप तो जानते ही हैं, भगवान कालमुख विद्याशंकर ने कृपा करके सात शिष्यों के साथ अपनी सप्त विद्याएँ मुझे भी सिखाने का निश्चय किया था। लेकिन मैं मंदमति भाग खड़ा हुआ। फिर मैं राजसंन्यासी की मदुरा-विजय की यात्रा में भी सम्मिलित हुआ, लेकिन वह अभियान असफल रहा और अकेला मैं ही बच सका। वहाँ से भागकर मैंने अपनी जान बचाई। मेरा जीवन कर्तव्यक्षेत्र से भागने और पीछे हटने की परम्परा ही बन गया था।

'उसके बाद महाकरणाधिप ने कृपा करके मुझे हस्ति-सेना का दंडनायक नियुक्त कर दिया। लेकिन गजसेना तैयार करना श्रम और समयसाध्य कार्य है। और मैं शीघ्र ही कुछ ऐसा कर गुजरना चाहता था जिसकी बदौलत कालमुख भगवान की चरण-सेवा का पुनः अधिकारी बन सकूँ। बेलगोला के वायीजन श्रेष्ठी के सप्ततलहर्म्य में सुकोमल गद्दियों पर पड़ा हुआ मूल्यवान वस्त्रों में सज्जित, दिन में तीन बार मधुर पौष्टिक भोजन करता और सवेरे से शाम तक पान चबाता हुआ मैं यही सोचा करता था कि मैं ऐसा क्या

करूँ जिसके कारण कालमुख भगवान की चरण-सेवा का पुनः अधिकारी बन सकूँ।

'मेरी ऐसी ही मनोदशा थी जब सुन्दर पांड्य मदुरा से चलकर मुझसे मिलने के लिए आया और उसने जो कुछ कहा उससे मुझे अपना कर्तव्य स्पष्ट दिखाई दे गया। जब सुन्दर पांड्य आया उस समय भी राजसंन्यासी का मस्तक मदुरा के किले के परकोटे पर लटका हुआ था। (अरब देश के यात्री इब्नबतूता ने, जो होरमज से चलकर बेलगोला आया था, राजसंन्यासी के छिन्न मस्तक को किले पर लटकता हुआ अपनी आँखों से देखा और अपने यात्रा-वर्णन में इस बात का उल्लेख भी किया था।) राजसंन्यासी का यही मस्तक मेरा कर्तव्यक्षेत्र बन गया।

'मैं सुन्दर पांड्य के साथ मदुरा गया और वहाँ उसी का मेहमान बना।

'सुन्दर का अतिथि बनने के बाद ही मुझे पता चला कि वह नासिरुद्दीन के साथ कैसी गहन कपट-क्रीड़ा में संलग्न था। यों बाहर से देखने पर सुल्तान के साथ उसके सम्बन्ध बड़े ही मधुर और मैत्रीपूर्ण थे। उसकी बातें सुनकर यही लगता था कि सारे संसार में सुल्तान नासिरुद्दीन का सबसे अधिक हितैषी अगर कोई है तो सुन्दर पांड्य ही है। और यह तो आप सभी जानते हैं कि वह कितना मिठबोला है। यदि स्वयं वहाँ जाकर मैंने वास्तविकता को न देखा होता तो उसके कपट-जाल में अवश्य फँस जाता। मदुरा में सुन्दर की एक प्रियतमा थी। किसी नापित नारी के गर्भ से उत्पन्न वह एक विप्रविनोदी की नापित कन्या थी। अपरूप सुन्दरी थी वह। नख से शिख तक सौन्दर्य की मानो वह विद्युत्-लहरी ही थी। ऐसा लगता था मानो विधाता ने पुष्पों की कोमलता और पराग-कोषों से उस सुन्दरी का निर्माण किया हो। वह चिरयौवना सुन्दर की परिणीता समझो तो परिणीता, बेला समझो तो बेला और कणिका समझो तो कणिका थी।

'सुन्दर ने अपनी इस प्रियतमा को सुल्तान अहसनशाह नासिरुद्दीन की सेवा में भेजा हुआ था। जब मैं सुन्दर का अतिथि हुआ तो एक दिन आधीरात के समय वह सुन्दरी मेरे पास आई और मुझे पाँव का अँगूठा पकड़कर नींद में से जगाया। जागकर क्या देखता हूँ कि मदुरा की

भाग्यलक्ष्मी-जैसी एक अपरूपसी मेरे सामने खड़ी हुई है। मैं उठ बैठा और बोला—"बहिन, बहिन! तुम कौन हो? और यहाँ इस समय क्या करने आई हो?"

'उस सर्वाङ्ग सुन्दरी कमनीय रमणी के कंठ से वधिक के छुरे की धार-जैसा तीखा प्रश्न सुनाई दिया—"क्या करने आये हो तुम यहाँ?"

मैंने संकुचित होते हुए कहा—"बस यों ही घूमने और देखने के लिए।"

'इस वार उसके स्वर में इतनी तिक्तता, ज्वलनशीलता और काट थी कि आकाश की बिजली भी उसके आगे लज्जित हो जाती। उसने कहा—"मदुरा में ऐसा क्या है जिसे देखने के लिए वीरवणिगा के पृथ्वीशेटी वायीजन का अलाया मदुरा आया है? कहीं मदुरा के किले के परकोटे पर लटकते हुए राजसंन्यासी के मस्तक को देखने के लिए तो नहीं आये हो?"

मैंने कहा—"हाँ, उसी को देखने आया हूँ। अब बोलो, तुम्हें क्या कहना है?"

उसने कहा—"देख लिया न? एक बार देखो या हजार बार देखो, वह तो वैसा का वैसा ही रहेगा। उस मस्तक को देख आकर पांड्यराज के सभागृह में बैठे-बैठे तुम जो बातें कर रहे थे वे सब मैंने सुनी हैं। पांड्यराज ने कहा था कि सुल्तान नासिरुद्दीन दमग़नी ने सारे दक्षिणापथ की नाक उतार ली है और तुमने उत्तर दिया था कि दक्षिणापथ में एक भी वीर ऐसा नहीं निकला जो सुल्तान की इस चुनौती को स्वीकार करता। वह चुनौती अब भी ललकार रही है। एक नासमझ वीर या वीर होते हुए भी नासमझ या भोले और उदारचेता वीर की अकाल परन्तु भीषण मृत्यु को तुम देख आये। देखकर तुम्हारी आँखें ठंडी तो हुईं? अब दुबारा उसमें देखने-जैसा क्या है?"

'मैंने कहा—"देवि! उस मस्तक में देखने-जैसा बहुत कुछ है। अभी मुझे उस मस्तक को एक बार और देखना होगा।"

उसने कहा—"बड़ा मजा आता है तुम्हें देखने में! पांड्यराज तो उस मस्तक को देखकर प्रसन्न होते ही हैं; क्या तुम भी प्रसन्न होते हो?"

'मैंने कहा—"प्रसन्नता तो होनी ही चाहिए। लम्बी यात्रा करके शत्रु अथवा मित्र का भाले में लटकता हुआ मस्तक देखने के लिए आना अवश्य ही प्रसन्नता का कारण होता है। लेकिन देवि, इतनी-सी बात करने के लिए तो आप आधीरात के समय मेरे कक्ष में आई नहीं हैं। आप विवाहिता हैं, मैं भी विवाहित हूँ और हमारे-जैसे विवाहितों के लिए आधीरात के समय इस तरह एकान्त में मिलना उचित नहीं कहा जा सकता।"

वह कुछ देर तक मेरी ओर देखती रही और फिर बोली—"राजसंन्यासी के उस छिन्न मस्तक को देखने के लिए पांड्यराज के यहाँ दक्षिणापथ से कई भागवत और भाव्य, शैव और वीरशैव आते हैं और मुझे सभी से मिलना होता है। लेकिन तुम्हारे अतिरिक्त मैंने किसी को भी उस मस्तक को दुबारा देखने के लिए उत्सुक नहीं पाया। यह मेरी समझ में नहीं आता कि तुम उसे दुबारा क्यों देखना चाहते हो?"

'मैंने कहा—"देवि, उस मस्तक को देखकर मुझे बड़ी ईर्ष्या होती है और इसलिए मैं उसे बार-बार देखना चाहता हूँ।"

'उसने पूछा—"ईर्ष्या का कारण क्या है? ईर्ष्या क्यों होती है?"

'मैंने कहा—"कारण यह है देवि, कि वीरों के मस्तक मरणोपरान्त अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते हैं। कुछ वीरों के मस्तकों पर उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके मित्रों द्वारा समाधियाँ और स्मारक निर्मित किये जाते हैं; लेकिन एक यह वीर है, जिसकी समाधि और स्मारक मित्रों ने नहीं उसके शत्रुओं ने निर्मित की है। मैं स्वयं भी अपने लिए ऐसी ही मृत्यु की कामना करता रहा हूँ और मुझे इसी लिए ईर्ष्या होती है कि वह मेरे हाथ से ऐसा अवसर छीनकर ले गया।"

'यह सुनकर उस रमणी ने केवल "ओह" कहा।

'मैंने आगे कहा—"अब देवी समझ गई होंगी कि मैं उस मस्तक को बारबार क्यों देखना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि सुल्तान नासिरुद्दीन उस मस्तक को देखने के लिए बारबार वहाँ आता है। मैं इस आशा से भी उस मस्तक को बारबार देखने के लिए जाना चाहता हूँ कि कभी तो सुल्तान से वहाँ मेरी भेंट हो सके।"

'मेरी यह बात सुनकर वह नयनशोभना, तनमोहना और मदिरा की भरी बोतल-जैसी देहलतावाली चिरयौवना नारी मेरी ओर निर्निमेष देखती रही, देखती ही रही और फिर मेरे समीप आकर कहने लगी—"बैसाख मास के कृष्णपक्ष में, कृतिका नक्षत्र में, द्वितीया और शनिवार के दिन मेरा जन्म हुआ है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार यह योग विषकन्या-योग है। विधि का विधान है कि इस योग में जन्म लेनेवाली विषकन्या का सारा जीवन पाखण्डों और प्रपंचों में ही व्यतीत हो। वह विषकन्या जिसका साथ करती है देर-अबेर उसका विनाश निश्चित है। वैभव की लालसा से जो मेरा संग करते हैं वे विनाश को गले लगाते हैं। लेकिन विनाश की इच्छा से मेरा संग करनेवालों के लिए वह संग जीवन का सुखद और सौभाग्यशाली अवसर बन जाता है। माँगो जो भी तुम्हें माँगना हो, और वह मैं तुम्हें मुक्तहस्त से दान करूँगी।"

'उसकी यह बात सुनकर मैं तो अवाक् ही रह गया।

'उसने आगे कहा—"स्वर्णलता-जैसी यह देह, शुक्र के तारे-जैसी ये दो आँखें, अमरवल्लरी-जैसी यह मनोहर काया—कलियुग के कालयवन दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद तुग़लक से लेकर मदुरा के सुल्तान तक सभी के मन अतिरम्य और मनोहर यह काया—देवों को भी दुर्लभ, नन्दनवन के पारिजात पुष्प-जैसी अपनी यह काया तुम चाहो तो मैं तुम्हारे चरणों मे समर्पित कर दूँ।"

'मेरे तो ओठ ही सिल गए। मारे आश्चर्य के मैं कुछ बोल ही न सका।

'और वह कहे जा रही थी—"मैं विषकन्या हूँ। अनहोनी को होनी और होनी को अनहोनी करने के लिए इस दुनिया में कभी-कभार मेरा जन्म होता है। सुख के लिए मेरा संग करनेवाला विनाश को और विनाश के लिए मेरा संग करनेवाला अनिर्वचनीय सुख को प्राप्त होता है। बोलो, मेरी यह देह, अप्सराओं की केशर-कुंकुम लता-जैसी यह देह क्या तुम्हें अच्छी नहीं लगती?"

'मैंने कहा—"अच्छी लगती है देवि, बहुत ही अच्छी और प्यारी लगती है। अपनी बहिन की सुन्दर देह किस अभागे भाई को अच्छी नहीं लगती?"

'एक लम्बी साँस लेकर वह नारी चुप खड़ी रह गई, मानो संगमरमर की

पुतली ही हो। फिर उसके म्लान मुख पर हृदय में भोंकी हुई कटार-जैसी मुस्कराहट छा गई। और जब वह हँसी तो वह ध्वनि ऐसी लग रही थी मानो कोई सुकोमल पक्षी घायल होकर पंख फड़फड़ा रहा हो। रुदन से भी अधिक करुणा उस हँसी में भरी हुई थी। उसने केवल इतना कहा—"आखिर तो मैं विषकन्या ही हूँ न! लेकिन जाने दो इस बात को।"

'मैंने कहा—"मैं आपके आशय को समझ नहीं पाया बहिन।"

'उसने कहा—"समझ बहुत बुरी वस्तु होती है मेरे भाई, लेकिन जाने दो, मैं निराशा की अभ्यस्त हो गई हूँ। कई-कई पुरुषों ने मुझे निराश किया है। देह से चिरयौवना होते हुए भी मेरी आत्मा बूढ़ी हो गई है। जन्मयोग के कारण मैं विषकन्या, दूसरों के जीवन में विष के समान हूँ, परन्तु आज तो स्वयं मेरा ही जीवन विषमय हो गया है। लेकिन जाने दो, तुम भी क्या कर सकते हो।"

'मैंने कहा—"बहिन, मैं आपकी बात अब भी समझ नहीं पाया।"

'उसने कहा—"यहाँ कई लोग आते हैं। मेरे पांड्यराज दक्षिणापथ के कई भागवतों, भाव्यों, शैवों और वीरशैवों को अपना अतिथि बनाकर लाते हैं और सभी को दक्षिणापथ की कटी हुई नाक-जैसा राजसंन्यासी का मस्तक दिखाते हैं। लेकिन आज तक किसी ने उस मस्तक को दुबारा देखने की इच्छा प्रदर्शित नहीं की। अकेले तुम्हीं ऐसे निकले हो और यह देखकर मेरे बूढ़े मन में आशा का एक अंकुर उग आया है। मेरी चिरयौवना स्फटिक मूर्ति में भी रोमांच हो उठा है। मैं चाह उठी थी कि विनाश के पथिक को सुखद सौभाग्य का एक क्षण पाथेय के रूप में प्रदान करूँ। परन्तु...."

'मैंने कहा—"अब मैं समझ गया, लेकिन बहिन, नर और नारी के पारस्परिक सम्बन्ध में केवल दंडकणिका का ही समावेश नहीं होता। माता और पुत्र, बहिन और भाई के सम्बन्ध भी उतने ही, बल्कि उससे भी अधिक आह्लादकारी होते हैं।"

उसने कहा—"तो सुनो: मदुरा का सुल्तान नासिरुद्दीन दमग़ानी कल सायंकाल के समय, राजसंन्यासी का मस्तक देखने के लिए जायेगा। मैं भी

उसके साथ रहूँगी। मेरे भाई, मैं तो तुम्हें जीवन की सुखदायी पल न दे सकी, परन्तु तुम मुझे जीवन का एक सुखदायी क्षण अवश्य प्रदान करना।"

'और सिमटते हुए किसी मधुर स्वप्न की भाँति वह नारी वहाँ से चली गई। सभागृह में केवल पुष्पों की सुगन्ध रह गई और धीरे-धीरे वह भी विलीन हो गई।

'दूसरे दिन सायंकाल के समय मैंने अपने दाहिने हाथ में बिछुआ पहिना, बायें हाथ में बाघनख धारण किया, शरीर पर जंजीरोंवाला बख्तर पहिना। सिर पर लम्बा फेंटा बाँधा। हाथ में लकड़ी-जैसी लम्बी किरच ली। पाँवों में उपानह पहने। जिरह-बख्तर पर लम्बा वदन पहिनकर इत्र मला। गले में फूलों की माला डाली। बायें हाथ में बेले का गजरा लपेटा और तुराखान के किसी उच्च कुलोत्पन्न तुरुष्क अमीर की वेष-भूषा और रंग-ढंग में मैं घर से बाहर निकला। मदुरा में रहनेवाले कई लोग इसी प्रकार तुरुष्कों का स्वांग बनाया करते थे, इसलिए मुझे देखकर किसी को आश्चर्य नहीं हुआ।

'मैं घर से निकलकर मदुरागढ़ के कांची दरवाजे की ओर चल पड़ा। वहीं भाले में पिरोया हुआ राजसंन्यासी का मस्तक तीन भालों की एक चौकी में टँगा हुआ था। अस्तंगत सूर्य की किरणें उस मस्तक को स्वर्णाभा प्रदान कर रही थीं। तुरुष्क सुल्तान ने उसमें मसाला भरवा दिया था, इसलिए वह मस्तक सजीव मालूम पड़ता था और ऐसा लगता था मानो राजसंन्यासी अभी बोल उठेंगे।

'कांची दरवाले की ड्योढ़ी पर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मस्तक तक पहुँचने के लिए इन सीढ़ियों से जाना पड़ता है। नीचे तुरुष्क सिपाहियों का पहरा था। तुरुष्क दोरंगियों के दारोगा से मैंने विनम्रतापूर्वक पूछा—"क्या इस सिर को नजदीक जाकर देखा जा सकता है?"

'वह तुरुष्क खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला—"ओ कुफ्र की औलाद, क्या तुझे शुबहा है कि वह सिर मुर्दे सुल्तान बल्लाल का नहीं?"

'मैंने अत्यन्त निर्दोषितापूर्वक कहा—"यह तो नजदीक जाकर देखने पर ही पता चल सकता है।"

'दारोगा ने कहा—"तो जा नजदीक जाकर देख ले। आँखें फाड़-फाड़कर

और जी भरकर देख ले। सुल्तान सलामत जनाब हाकिमे मदुरा को सलाम करने से इनकार करनेवाले काफिर की क्या गत बनती है इसे तू अपनी सगी आँखों देख ले ?"

'दारोगा ने मुझे बड़ी मगरूरी के साथ सीढ़ियाँ दिखलाते हुए कहा। मैं ऊपर चढ़ गया और राजसंन्यासी के मस्तक को ध्यानपूर्वक देखने लगा।

'थोड़ी ही देर हुई होगी कि परकोटे पर चहलकदमी करता हुआ मदुरा का सुल्तान नासिरुद्दीन भी वहाँ आ पहुँचा। आदमी नहीं खासा देव था वह—बिल्कुल पहाड़ की तरह। और उसके साथ तुरुष्क वेशभूषा में वही कोमलांगी थी, जिसे मैंने रात में बहिन कहकर सम्बोधित किया था। दोनो को एक साथ देखकर ऐसा लग रहा था मानो कठोरता और कोमलता हाथ में हाथ दिये चली आ रही हों।-मुझे देखकर सुल्तान ठठाकर हँस पड़ा। वह हँसी ऐसी थी कि मानो बाँस के जंगल में हवा बह चली हो, मानो लोहे के पटे को बिल्ली अपने पंजों से खरोंच रही हो। उसने अपने साथवाली कोमलांगी से कहा—"देखो मेरी जान, हाकिमे मदुरा माबदौलत सुल्तान ने हिन्दू काफिरों के देखने के लिए कैसा मजेदार तमाशा खड़ा कर दिया है। मेरे सिपाही बताते हैं कि रोज-ब-रोज दो-दो चार-चार काफिर आकर इस तमाशे को देख जाते हैं। मदुरा का सुल्तान इन्साफपसन्द है। अपनी रैयत की खुशी के खातिर वह तुरुष्कों के लिए तुरुष्कों-जैसा और काफिरों के लिए काफिरों-जैसा तमाशा तैयार कर देता है।"

'सुल्तान मेरे समीप आया। मेरे कन्धे पर अपना ताकतवर पंजा रखकर उसने व्यंग्यपूर्वक कहा—"ओ कुफ्र की औलाद, इस सिर ने क्या तुझे अभी तक यह नहीं बतलाया कि तुरुष्क सुल्तान के हाथ लम्बे और कलेजा फौलाद का है ?'

'तब मैंने विनम्रतापूर्वक कहा—"सुल्तान सलामत, गुलाम की बेअदबी माफ हो, लेकिन यह सिर तो मुझे कुछ दूसरी ही बात कह रहा है। यह सिर मुझसे कह रहा है कि मेरे साथ की गई दगाबाज़ी और मेरी बुरी मौत का बदला लेनेवाले का मैं इन्तजार कर रहा हूँ।"

'यह कहकर मैंने सुल्तान को अपने दोनो हाथों में जकड़ लिया। दाहिने

हाथ के बिछुए के काँटे मैंने उसके गले में भोंक दिये और बायें हाथ के बघनखे से उसकी बगल को चीर डाला। और "भगवान कालमुख विद्याशंकर की जय, विजयधर्म की जय" के प्रचण्ड नाद के साथ मैं परकोटे पर से नीचे कूदा और कूदते समय राजसंन्यासी का मस्तक मैंने अपने दाँतों में पकड़ लिया।

'मदुरा के उस पन्द्रह हाथ ऊँचे परकोटे से मैं कूदा तो मेरे नीचे सुल्तान था और उसके ऊपर मैं। परकोटे के चारों ओर खाई थी और उसमें पानी भरा हुआ था। मैंने ऊपर देखा तो कोमलांगी नीचे झुककर अपने हाथ की उँगली से एक ओर संकेत कर रही थी। फिर वह धीरे-से चीखी और इस तरह गिर पड़ी मानो बेहोश हो गई हो। मैंने नीचे देखा तो सुल्तान के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

'मैं तैरकर खाई के सामनेवाले किनारे की ओर पहुँचा। अन्दर से तुरुष्क सिपाहियों की हलचल और शोरगुल की आवाज सुनाई दे रही थी। मृतक सुल्तान को अपने कन्धे पर डालकर मैं दौड़ पड़ा। उसी समय परकोटे का दरवाजा खुला और नंगी तलवारें चमकाते हुए तुरुष्क दोरंगियों का दल "मारो! पकड़ो! भागने न पाये।" कहता हुआ मेरे पीछे हो लिया। मैं आगे-आगे और वे सब मेरे पीछे। कोमलांगी ने जिस ओर इशारा किया था मैं उसी ओर दौड़ा चला जा रहा था। खाई का मोड़ आया। वहाँ से थोड़ी दूर आगे एक वृक्ष के नीचे एक मजबूत और पानीदार घोड़ा खड़ा था। मैं लपककर घोड़े पर सवार हो गया। उस समय मेरे मुँह में राजसंन्यासी का मस्तक था और हाथ में सुल्तान नासिरुद्दीन दमग़ानी का शव इस तरह पड़ा हुआ था जिस तरह बाज़ के दोनो पंजों में कोई पक्षी फँसा हुआ हो। तुरुष्क अभी दूर थे। मुझे घोड़े पर सवार होते देख परकोटे पर खड़े हुए लोग पीछा करनेवाले सिपाहियों को घोड़ों पर चढ़कर पीछा करने की सलाह देने लगे और कोई-कोई वहाँ से मेरे ऊपर तीर भी बरसाने लगे।

'मैंने दोनो हाथों के जोर के झटके से सुल्तान नासिरुद्दीन का सिर धड़ से अलग किया और फिर एक मस्तक इस ओर की रकाब में और दूसरा मस्तक उस ओर की रकाब में डालकर मैंने घोड़े को एड़ मारी। तभी दरवाजे में से

तुरुष्क घुड़सवार भी निकल आये। मैंने सुल्तान के धड़ को नीचे फेंक दिया और भाग चला। मेरा घोड़ा बड़ा ही तेज था। बाद में मुझे पता चला कि वह घोड़ा स्वयं सुन्दर पांड्य का था।

'फिर तो योजनों तक आगे-आगे मैं और पीछे-पीछे तुरुष्क घुड़सवार भागते रहे। जब भी कोई बस्ती या गाँव आता पीछा करनेवालों की संख्या बढ़ जाती थी। कभी उनके और मेरे बीच का फासला केवल एक तीर के टप्पे का रह जाता था। कभी मैं कटार फेंके जाने तक की सीमा में आ जाता था। परन्तु मेरा घोड़ा होरमुज के किसी श्रेष्ठ अश्व-व्यापारी का घोड़ा था और इसी लिए हम लोगों के बीच का अन्तर क्रमशः बढ़ता ही गया।

'इसी तरह दौड़ता हुआ मैं कावेरी नदी के किनारे तक आ गया। पीछा करनेवाले तुरुष्कों में से अधिकांश थकावट और भूख के कारण पीछे छूट गए थे; फिर भी दस-बारह घुड़सवार अब भी चले आ रहे थे, लेकिन वे बहुत पीछे थे।

'मैं घोड़े के साथ कावेरी की धारा में कूद पड़ा। धन्य है वह अश्व! उसने अपनी पूरी शक्ति लगाकर मुझे कावेरी के दूसरे तट पर पहुँचा दिया, परन्तु स्वयं वहीं धराशायी हो गया। अब मैं कावेरी के इस किनारे पर खड़ा था और तुरुष्क सिपाही दूसरे किनारे पर थे और हम एक-दूसरे को घूर-घूरकर देख रहे थे।'

'इस तट पर आकर मैंने राजसंन्यासी के मस्तक का अग्नि-संस्कार और सुल्तान के मस्तक का भूमि-संस्कार किया।

'भगवन्! यह है मेरे कार्यों का लेखा-जोखा। अब मेरी आपसे एक याचना है?'

'वत्स, तेरी क्या याचना है?'

'भगवन्! आप त्रिकालज्ञ हैं। आप सब-कुछ जानते हैं। आपके चरणों में यही प्रार्थना है कि किस मूर्ख ज्योतिषी ने मेरी उस धर्म-भगिनी के भाग्य पर विषकन्या के कलंक का टीका लगाया है? मैं उस ज्योतिषी का नाम और पता जानना चाहता हूँ।'

भगवान ने मुस्कराकर कहा—क्या करोगे वत्स, जानकर?

'मैं उसके वे शब्द उसके मुँह में ठूँस दूँगा। यदि ज्योतिष ग्रन्थों में ऐसा कोई योग हुआ तो मैं उन ग्रन्थों को भी जला डालूँगा।'

'ज्योतिष के ग्रन्थों ने और ज्योतिषियों ने तेरा क्या बिगाड़ा है? और भी कुछ कहा था विषकन्या ने तुझसे?'

'भगवन्, उसने कहा था कि जन्मग्रहों के योग के कारण वह विषकन्या है; वैभव की अभिलाषा से उसका संग करनेवाले विनाश को प्राप्त होते है; और विनाश की अभिलाषा से उसका संग करनेवाले सुख और समृद्धि के विरल क्षण की उपलब्धि कर धन्य होते हैं। कहीं ऐसा हुआ भी है भगवन्? विधाता किसी नारी के भाग्य में ऐसी लिपि लिखेगा ही क्यों?'

'ईश्वर की लीला अद्भुत है भालारी। उसे तुम-हम जान ही कैसे सकते हैं? तुम ही सोच कर देखो। मलिक काफ़ूर ने उस विषकन्या का संग किया और उसका बुरी तरह विनाश हुआ। मुहम्मद तुग़लक ने उसका संग किया और उसके विनाश का प्रारम्भ हो गया। मदुरा के सुल्तान ने उसका संग किया और वह मारा गया। प्राणों की बाजी लगाकर तुम गये और तुम्हें वह धर्म-भगिनी के रूप में मिली और तुम्हारा जीवन धन्य हो गया। बैठ जाओ वत्स! ईश्वर की लीला अपरम्पार है। उसकी सृष्टि में चींटी से लेकर महाराजा तक, जिसे भी अपने कर्तव्य का भान है, सभी समान रूप से समादृत हैं।'

'भगवन्....'

'वत्स, मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ। भविष्य में जो भयंकर संग्राम होगा उसमें तुम भी अपना उचित स्थान ग्रहण करना। अब बैठ जाओ तुम। मेरे पास समय बहुत थोड़ा है और मुझे अभी अपनी बात कहनी है।'

बिबोया जब नीचे बैठ गया तो भगवान कालमुख ने कहा—मैंने तुम्हें जो प्रदेश सौंपा था और जिसकी धर्मरक्षा करने और भावी संघर्ष की तैयारी करने के लिए तुम्हें जो आदेश प्रदान किये थे उन सबका तुमने पालन किया है और अपने-अपने कर्तव्य-क्षेत्रों का विस्तार भी किया है। तुमने अपनी मर्यादाएँ भी मुझे बताईं। अब तुम सब अपनी-अपनी मुद्राओं को फिर से उठा लो। और इन सात वर्षों में मैंने जो कुछ किया है उसको सुनो।'

यह कहकर भगवान ने अपने शिष्यों की ओर उँगली उठाकर प्रत्येक का नाम गिनाते हुए कहा—माधव, सायण, कम्पन, मराप्पा, इरुगप्पा और नागदेव—ये छह शिष्य हैं। सातवाँ भालारी बिवोया था; उसे तो तुमने देख ही लिया और उसकी बातें भी सुनीं। अब इन छहों शिष्यों की परीक्षा होगी। जब तक मनुष्य का अन्तस्तल शिक्षा-दीक्षा को ग्रहण नहीं कर लेता, वह बेकार ही होती है। आत्मसात किये बिना सारी शिक्षा-दीक्षा बाह्योपचार बनकर रह जाती है; तब शिक्षा का उपयोग अनिष्ट अभिप्रायों और विकृत अभिलाषाओं को ढाँकने-मूँदने के आवरण के रूप में होता है। इसलिए इन शिष्यों की परीक्षा लेकर देखा जायेगा कि इनके जाग्रत मन ने नहीं, सुपुप्त मन ने क्या सीखा और कितना जाना है। अन्तर्मन की परीक्षा दो प्रकार से ली जा सकती है—या तो नींद में किस प्रकार के स्वप्न दिखते हैं, इसका पता लगाकर; या नशे के द्वारा। जब तेज नशे के प्रभाव से जाग्रत मन बेसुध हो जाता है, विचार, वाणी और व्यवहार पर अधिकार नहीं रह जाता तो अन्तर्मन बाह्य आवरणों के नीचे छिपे हुए सच्चे मानस को प्रकट कर देता है। इसलिए प्रत्येक शिष्य को बारी-बारी से धतूरे के रस का प्याला पिलाया जायेगा। उस उग्रातिउग्र नशे के प्रभाव के कारण वास्तविक मानस और वास्तविक भावनाओं का पता चलेगा। आओ वत्स, नागदेव, तुम आगे आओ और धतूरे के रस का पान करो और हम सब को यह देखने दो कि तुम्हारे अन्दर किस प्रकार के नागदेव का ईश्वर ने निर्माण किया है।

३. विजयनगर

सायंकाल के उस समय में, भगवान पम्पापति के धाम में, कालमुख भगवान विद्याशंकर के विजयधर्मराज्य के महाकरणाधिप, महामंडलेश्वर, दंड-नायक, सामन्त, सामूराय और दुर्गपाल आदि इस प्रकार निस्तब्ध बैठे थे मानो किसी विशाल जैनमन्दिर में देवमूर्तियाँ काउसग्ग ध्यान में लीन हों।

यही वह समय था जिसकी आज से सात वर्ष पूर्व भगवान कालमुख ने

स्वयं अपने मुख से भविष्यवाणी की थी। सात दिन पहले इसी घड़ी के बारे में भगवान कालमुख का सन्देश प्रसारित हुआ था और आज सबेरे भी भगवान ने इसी घड़ी के बारे में पुनरुच्चारण किया था।

ज्योतिष के आधार पर ग्रह-नक्षत्रों की गणना करके अपने निश्चय बल से भगवान कालमुख ने अपनी जीवन-लीला संवरण क लिए इसी घड़ी को निर्धारित किया था। ठीक सायंकाल के समय सू क्षितिज पर जब आधा आकाश में होगा और आधा नीचे, सायंका स्वर्णाभा मेघ की कालिमा का स्पर्श करेगी, कालमुख भगवान अपने का उत्सर्ग करेंगे।

इसी उद्देश्य से भगवान रंगमंडप में आकर बैठे थे। रंगमंडप के कोने पर भगवान विरूपाक्ष का मन्दिर था। उसी मन्दिर के सामने विद्य भगवान अपनी जीवन-लीला संवरण करनेवाले थे और वहीं उनकी बनाई जाने को थी। भगवान इस समय पद्मासन लगाये उसी स्थान प थे और उनके समक्ष उनके शासन के महानुभाव भी बैठे हुए थे।

भगवान के ठीक सामने, राय हरिहर, जो उनके महामंडलेश्व भगवान के मुख की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए बैठे थे।

'भगवन्, आपके बिना हम सब अनाथ हो जायेंगे। क्या भगवा निश्चय अब भी अटल है?' महाकरणाधिप दादैया ने आर्द्र स्वर में क

'महाकरणाधिप,' भगवान ने आँखें मूँदे हुए इस तरह कहा, मान लोक से नहीं, परलोक से बोल रहे हों, 'मेरे निश्चय की बात कर रहे मेरा निश्चय तो इतना ही है कि उस अनिवार्य घड़ी का आनन्दपूर्वक स करूँ। क्योंकि उस घड़ी को साक्षात् यमराज भी नहीं टाल सकते, ईश्वर अवतारों में से एक अवतार भी उसको टाल नहीं सका, वाल्मीकि, व विश्वामित्र और अग्नि, वायु आदि का सप्त-ऋषियों का मंडल भी उसे नहीं सका। तो कालमुख विद्याशंकर उस घड़ी को कैसे टाल सकता महाकरणाधिप, इस संसार-यात्रा में मेरी आयु का पाथेय पूर्ण हो, कर्त पाथेय तो पूरा हुआ....भगवान सूर्यनारायण इस समय कहाँ विराजमा राय हरिहर?'

'भगवन्, भगवान सवितानारायण अब लाल हो गए हैं और पश्चिमी क्षितिज का स्पर्श करने जा ही रहे हैं। हमारे सूर्य देवता अस्त होने ही वाले हैं।'

'किसी के भी लिए खिन्न होने या खेद करने का कोई भी कारण नहीं।' भगवान कालमुख ने कहा, 'ग्लानि, खेद, शोक और विलाप तो वे करते हैं जिनके लिए भविष्य की कोई आशा नहीं होती, केवल भूतकाल का बोझ होता है। तुम सबके सम्मुख तो भविष्य की आशा और प्रकाश है। एक परम पुरुषार्थ तुम सबके सम्मुख खड़ा है। और फिर वार्धक्य मार्ग देकर हटेगा नहीं तो यौवन आयेगा कहाँ से?'

'आप तो नित्य युवक हैं भगवन्!' दुर्गपाल सोमेश्वर ने कहा, 'मुझे याद आता है वह दिन जब मैं कांपिली के तुरुष्क सूबा का वध करके आया था और मेरे पीछे तुरुष्कों की पूरी सेना दौड़ी चली आई थी। दौड़ते-दौड़ते मेरा अश्व थककर गिर पड़ा था और मैं भी थकावट के मारे एक पग भी चलने में असमर्थ हो गया था, तब आप स्वयं मुझे अपने कन्धे पर बिठाकर ले गए थे और मुझे मौत के मुँह में से बचा लिया था। यदि ऐसे आप वृद्ध हैं तो वह वार्धक्य तो युवकों का भी आधार हो। आपके निश्चय से तो हम यही सोचने को विवश हैं कि आप जान-बूझकर हमें छोड़ जाना चाहते हैं।'

'सोमेश्वर, दुर्गपालो, सामन्तो और नायको! इस सृष्टि की उत्पत्ति युवावस्था में हुई थी। जब इस सृष्टि का प्रत्येक मनुष्य वृद्ध हो जायेगा तो यह लय भी हो जायगी। ईश्वर का यह आदेश है कि युवावस्था में ही सब प्रकार की नूतन सृष्टि उत्पन्न हो। मैंने तुम्हें छह शिष्य प्रदान किये हैं। उन्मत्त-पंचाशिका द्वारा हमने उनकी परीक्षा भी ले ली है। उन छहों शिष्यों को तुम मेरा अंश रूप समझना। यही समझना कि कालमुख विद्याशंकर का शरीर जर्जरित हो जाने पर उसने कायाकल्प किया और अब छह शिष्यों के युवक शरीर में जीवित है। ये छहों शिष्य विजयधर्म-शासन के स्तम्भ होंगे और उन स्तम्भों पर एक ऐसी प्रतिभा उदित होगी जो समस्त दक्षिणापथ को वीरता और विद्या से उजागर कर देगी। अन्त समय आने से पहले मेरा यही कर्तव्य था,

जिसे मैंने पूरा किया। अब मेरी विदा होने की घड़ी आ रही है। राय हरिहर!'

यह कहकर भगवान कालमुख विद्याशंकर ने क्षण-भर के लिए राय हरिहर की ओर देखा और राय हरिहर के गम्भीर चेहरे की ओर देखते ही रह गए। भगवान मुख से तो कुछ नहीं बोले, परन्तु उनके चेहरे पर एक गहन शोक इस भाँति व्याप्त हो गया, जैसे सायंकालीन रक्ताभा पश्चिमाकाश में छाये बादलों पर फैल जाती है। फिर उन्होंने ऊपर आकाश की ओर एक दृष्टि डाली और शोक-सन्तप्त स्वर में कह उठे—हे ईश्वर, क्या अन्त में मेरी मनोभिलाषा अपूर्ण ही रहेगी?

किसी की कुछ समझ में नहीं आया, परन्तु भगवान के उस शोक-सन्तप्त स्वर ने व्यथित तो सभी को कर ही दिया। फिर भगवान ने अपनी ऊर्ध्व दृष्टि राय हरिहर के चेहरे पर स्थिर करते हुए कहा—तुम्हें इतनी ग्लानि क्यों हो रही है राय हरिहर?

'ग्लानि तो मुझे कुछ भी नहीं है भगवन्!' राय हरिहर ने कहा, 'परन्तु मन एक अकथनीय अस्वस्थता से अवश्य भर उठा है। मैं व्यग्र हो उठा हूँ, परन्तु ग्लानि-जैसा तो मन में कुछ भी नहीं है।'

'यह व्यग्रता क्यों और कैसी?'

'भगवन्, मैं एक राजबन्दी का पुत्र और गड़रिये का बेटा हूँ। आपने कृपा करके मुझे इतना ऊँचा पद और स्थान प्रदान किया। अपनी ऊँचाई से नीचे धरती की ओर देखता हूँ तो ऊँचाई के अणु-अणु में आपकी कृपा के ही दर्शन होते हैं। मेरे लिए तो सब-कुछ आपकी आज्ञा और आपकी इच्छा है। मैं तो केवल निमित्त हूँ। आपकी प्रेरणा और आज्ञा न हो तो मेरे हाथ और पाँव क्या निर्जीव नहीं हो जायेंगे? भगवन्, हमारे माथे से आपकी छत्रछाया उठ जायेगी तब भी क्या हम सब में यही निर्लोभिता, और वैसी ही त्याग-भावना रहेगी? आज तक हमारे हृदय और मन, चित्त और देह, हाथ और पाँव आपके प्रति हमारी श्रद्धा के विमान में उड़ते रहे हैं। आपके बाद कहीं वे धरती की मिट्टी में विलीन तो नहीं हो जायेंगे? भगवन्, आज आप अपनी जीवन-लीला का संवरण कर रहे हैं। पिछले सात वर्षों से आप

हमें इस अवसर के लिए सजग और सचेत करते आये हैं। आज आप कृतार्थ हो जायेंगे। मन से निश्चित किये हुए कर्तव्य की सफल समाप्ति के शुभ क्षण में जो जीवन-लीला का संवरण करता है उसी की मृत्यु धन्य होती है। ऐसी मृत्यु न भगवान रामचन्द्र को मिली, न योगिराज कृष्ण को। जीवन-कार्यों की समाप्ति के बाद भी उन्हें कई वर्षों तक जीवित रहना और अनिच्छित दृश्यों को देखना तथा अनभीप्सित वाक्यों को सुनना पड़ा। कर्तव्य की पूर्णाहुति के समय ही यदि उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती तो वे कितने भाग्यशाली होते! ऐसा परम सौभाग्य आज आपको मिल रहा है।'

'तो फिर इतनी मौन व्यथा और सन्ताप किस लिए ?'

'भगवन्, इसलिए कि मुझे यह चिन्ता सता रही है कि आपके लीला-विस्तार के बाद हमारे मस्तक पहले की भाँति आकाश की ओर उठे रहेंगे या हमारे पाँव धरती की मिट्टी में धँस जायेंगे ?'

'और इसी लिए तुमने....'भगवान कालमुख ने अपने वाक्य को पूरा नहीं किया और वह राय हरिहर की ओर टक लगाये देखते रहे।

'हाँ भगवन्, विजयधर्म के शासन के प्रति मेरा जो कर्तव्य था उसे मैंने पूरा किया है।'

'मंडलेश्वर,' कालमुख भगवान ने गम्भीरतापूर्वक कहा, 'वह तो अभी आरम्भ ही हुआ है। जिस दिन दक्षिणापथ के रक्त से इस तुंगभद्रा का प्रवाह सान्ध्य-रंगों की लाली-जैसा लाल हो जायेगा और एक भी सफेद बूँद खोजे नहीं मिलेगी तब....'

'भगवन्! तुंगभद्रा के पानी को अपने या दुश्मन के लहू से लाल करने-वाले तो उदयभान, मल्लिनाथ और सोमेश्वर आदि कई वीर हैं। समुद्र को लाल करनेवाले कपाय नायक और लक्खन सामुराय आदि हैं। दक्षिणापथ पर कंचन की वृष्टि करनेवाले वायीजन श्रेष्ठी-जैसे विद्यमान हैं। अभिमन्यु की भाँति कौरवों के सात व्यूहों को तोड़नेवाले चन्द्रगिरि के सात दुर्गों के दुर्गपाल हैं। युद्ध तो भगवन्, कभी मेरा कार्यक्षेत्र रहा नहीं। मेरा कार्य तो था सहस्रों वर्षों की साम्प्रदायिक ईर्ष्या और विरोध को मिटाकर समस्त जनसमुदाय का मन एक करना, सामाजिक अन्याय के परिणामस्वरूप विभक्त हुए लोगों के

हृदयों को एक करना; मेरा कर्तव्य था सब लोगों को, चाहे वे वीरशैव हों या भाव्य, भागवत हों या शैव, तेलुगु हों या तमिल, करनाटकी हों या केरलीय, इस तरह सन्नद्ध कर देना कि वह इस भूमि की सुख-सम्पन्नता को ही अपनी सुख-सम्पन्नता और अपनी आशा-आकांक्षा को इस भूमि की आशा-आकांक्षा समझें। हजारों वर्षों से चले आते पाखण्डों, प्रपंचों, भेद, विभेदों, सम्प्रदायों राज्यों और अधिकारों ने इस प्रदेश के लोगों को एक-दूसरे का विरोधी और शत्रु बना दिया था। इस फूट और पारस्परिक ईर्ष्या की ओट लेकर तुरुष्क किसी का दास और किसी का शत्रु बनकर बढ़ा चला आ रहा था। मेरा कर्तव्य था कि मैं इन समस्त भेद-विभेदों को विनष्ट करके विजयधर्म का विजय-शासन और विजय-सन्देश प्रवर्तित करूँ। भगवन्, सामन्तों, दुर्गपालों, नायकों और श्रेष्ठियों की सहायता से और धर्माचार्यों के आशीर्वाद और आपकी कृपा से यह कार्य सम्पूर्ण हुआ और आज कावेरी नदी से तुंगभद्रा नदी तक रायरेखा स्थापित हो चुकी है। आज रायरेखा में सभी अपने कर्तव्य में संलग्न हैं। सभी सन्तुष्ट हैं, सभी को न्याय और सुरक्षा उपलब्ध है। जिसे अधिकार है उसका धर्म भी है। जिसका धर्म है उसे न्याय भी है। रायरेखा में प्रत्येक मनुष्य को उसके परिश्रम का गौरव प्राप्त है। रायरेखा में न कोई उच्च है न कोई नीच। रायरेखा के राजगुरु के धर्मशासन के समक्ष सभी समान हैं। भगवन्, आपका, आपके नाम का धर्मराज्य होना चाहिए और उस धर्मराज्य की स्थापना ही मेरा कर्तव्य था।'

'राय हरिहर, आज तक यह धर्मशासन मेरे नाम से चलता था। आगे से वह भगवान पम्पापति विरूपाक्ष के नाम से चलेगा। परन्तु राय हरिहर....'

'भगवन्, आपकी आज्ञा क्या है इसे मैं समझ गया हूँ और दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि भगवान मुझ पर कृपा करें। आज तक मैंने आपसे, या किसी से कुछ भी नहीं माँगा, लेकिन आज पहली और अन्तिम बार माँगता हूँ।'

'इसका कारण क्या है?'

'कारण तो यही है भगवन्, कि मैं यादव क्षत्रिय होते हुए भी गड़रिया ही रहा हूँ। आज भी जितने लोग राय हरिहर को पहचानते हैं उससे अधिक

हरि गड़रिया को पहचानते हैं। जिस दिन मैंने आपकी आज्ञा से आपके शासन को स्थायित्व प्रदान करने का कर्तव्य स्वीकार किया था उसी दिन मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर लूँगा किसी के विरुद्ध, चाहे वह शत्रु हो या मित्र, हथियार नहीं उठाऊँगा। इस प्रकार क्षत्रिय होते हुए भी मैंने क्षात्रधर्म का परित्याग कर ब्राह्मणधर्म को अंगीकार किया। यही कारण है कि जब राजसंन्यासी बल्लालदेव के साथ विश्वासघात कर उनका वध किया गया तब भी मैं धैर्य धारण किये बैठा रहा। उस दिन से आपकी प्रतिज्ञा को ही सदा अपने नेत्रों के समक्ष रखा है। उस दिन से मैं सतत यही विचार करता रहा हूँ कि भगवान कालमुख विद्याशंकर का कार्य आगे बढ़ता है या नहीं। भगवन्, मैंने अपमान सहे हैं, तिरस्कार सहन किये हैं और लोगों का प्रेम और आदर भी प्राप्त किया है। मैं अपनी आत्म-प्रशंसा नहीं कर रहा। इन सात वर्षों में दुर्गपालों ने दुर्ग बाँधे और युद्ध भी किये हैं। सामन्तों और नायकों ने अनेक पराक्रम किये हैं, परन्तु मैंने किसी में हिस्सा नहीं लिया। कारण केवल यही था कि आपके विजयधर्म के योद्धाओं के सम्मुख तो कोई विश्वासघात नहीं कर सकता, परन्तु उनकी पीठ पीछे पग-पग पर द्रोह और विश्वासघात की संभावनाएँ थी। गाँव-गाँव और गली-गली, टोले-मुहल्ले और बस्ती-बस्ती में छोटी-छोटी बातें और छोटे-छोटे ईर्ष्या-द्वेष लोगों के हृदय में काँटों की भाँति खटक रहे थे और ये सारे दुःख विजयधर्मराज्य के साथ एकता अनुभव करने के मार्ग में अन्तराय बने खड़े थे। मैंने आपके योद्धाओं के पिछाये को सँभाले रखा। आपकी सेना की विजय-अभिलाषा सदा-सर्वदा जीती-जागती और प्रबल बनी रहे ऐसी स्थिति का निर्माण करना मेरा काम था और वह मैंने किया। आज विजयधर्मराज्य की विजय हर व्यक्ति की विजय और उसका पराभव हर व्यक्ति का पराभव बन गया है। भगवन्, आप सूर्य हैं तो मैं आपके कमल की भाँति हूँ। आपकी अनुपस्थिति में मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता और जीवित रहा भी तो मैं मैं नहीं रह जाऊँगा।'

'राय हरिहर,' भगवान कालमुख ने कहा, 'इस संसार से विदा होने की मेरी घड़ी आ चुकी है और उसे कोई भी एक क्षण के लिए रोककर रख नहीं सकता। विदा होते समय मुझे बड़ी प्रसन्नता और उमंग भी थी कि मैं

अपने पीछे तुम्हें छोड़े जा रहा हूँ। रायरेखा की जैसी कल्पना तुमने की वैसी पहले किसी ने नहीं की और तुमने तो उसे साकार भी कर दिखाया। अब तो....'

'भगवन्! कन्या को पाल-पोसकर ससुराल भेजा जाता है और वह योग्य हुई तो ससुराल में पितृगृह का नाम उज्ज्वल करती है। मैंने भी राय-रेखा को पाल-पोसकर राजगुरु को सौंप दिया है। अब उसका लालन-पालन राजगुरु की चिन्ता का विषय है। मेरा कर्तव्य पूरा हुआ। कर्तव्य की पूर्णाहुति के बाद जीवित रहने से अधिक दैन्य और करुणता दूसरी नहीं होती। आपकी दृष्टि के समक्ष मेरा कार्य पूरा हो सका, यह मुझ पर आपकी असीम कृपा मानता हूँ।'

सब लोग इस वार्तालाप को सुन रहे थे। और भगवान कालमुख के नेत्रों में घिर रहे विषाद को भी देख रहे थे, परन्तु किसी के भी कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

और राय हरिहर कहे जा रहे थे—भगवन्, मुझ पर आपकी दया रही। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे निवेदन को कृपापूर्वक सुनें। आप सर्वज्ञ हैं। सारी सृष्टि के गुण-अवगुणों और मर्यादाओं को जितनी अच्छी तरह आप देख और जान सकते हैं और कोई नहीं जानता। पिछले सात वर्षों से मैं निरन्तर यही सोचता-विचारता और प्रयत्न करता रहा हूँ कि लोगों का आपसी भेदभाव किस प्रकार दूर हो, कैसे उनमें सद्भावना, पारस्परिक समझ और सहानुभूति की वृद्धि तथा धार्मिक सहिष्णुता का विकास हो। मैं क्षत्रिय हूँ परन्तु युद्ध मेरे स्वभाव में रह ही नहीं गया। भगवान श्रीकृष्ण का वंशज होते हुए भी उनकी भाँति एक हाथ में गीता और दूसरे हाथ में सुदर्शन चक्र धारण करने की मुझमें आज सामर्थ्य नहीं रही। भगवन्, आप जानते हैं, मैं जानता हूँ, और यह सारी सभा जानती है कि आगे घनघोर युद्धों और भयंकर मारकाट का युग चला आ रहा है। उन युद्धों का सामना करने की शक्ति मुझमें नहीं। मैं युद्ध में किसी भी सेना का संचालन नहीं कर सकता। लोगों को युद्ध के मैदान में कटकर मरते हुए देख नहीं सकता। शत्रुओं के विनाश पर स्थापित विजय का आनन्द और उत्सव मनाना मेरे बस का

नहीं रहा। अब तो विजयधर्मराज्य को ऐसा मंडलेश्वर चाहिए जो रणवीर हो, जो तुंगभद्रा और कावेरी नदियों के पानी को अपने और शत्रु के लहू से लाल कर सके। भगवन्, मैं ऐसा मंडलेश्वर नहीं हो सकता। ऐसे काम के लिए वज्र का हृदय चाहिए। अपनी अक्षमता को जानते हुए भी यदि मैं महामंडलेश्वर-पद से लिपटा रहूँ तो मुझसे अधिक स्वार्थी और अधम कौन होगा? पिछले सात वर्षों से मैं विजयधर्मराज्य के प्रत्येक प्रजाजन को यही सिखाता आया हूँ कि वह हजारों वर्षों से चले आये अपने अधिकारों का परित्याग करें; और आज यदि मैं स्वयं ही अपने पद का परित्याग न करूँ तो मुझसे अधिक विश्वासघाती और प्रवंचक और कौन होगा? मैं अपने पद से मुक्त हो जाऊँ, उस पर दूसरा आरूढ़ हो जाये और मैं फिर भी जीवित रहूँ तो मेरा अस्तित्व दलबन्दी का कारण होगा। एक वर्ग मेरा समर्थक होगा और मुझे पुनः पदारूढ़ करने के लिए ललचाता रहेगा। मनुष्य का मन बड़ा ही विचित्र होता है भगवन्। कहा नहीं जा सकता कब, उसमें दुष्वृत्तियाँ जाग उठें। फिर कर्तव्य पूर्ण हो जाने के बाद जीवित रहने से बड़ा दुर्भाग्य मनुष्य का और कोई नहीं होता। इसलिए मैं आपके चरणों में अपने जीवन को समर्पित करने का निश्चय करके ही यहाँ आया हूँ। यहाँ आने से पहले मैं कालकूट विष का पान करके आया हूँ। भगवन्, आपने अपनी प्रयाण-वेला गोधूलि के समय निर्धारित की है, परन्तु मैं तो सूर्य-बिम्ब के लाल होते ही अनन्त यात्रा के लिए चल पड़ने को तैयार होकर आया हूँ।'

'राय हरिहर, यह तुमने क्या किया? मुझे इस बात का आभास तक न होने दिया!' दादैया सोमैया ने अत्यधिक खिन्न होकर उच्च स्वर में कहा।

'दादा,' राय हरिहर ने कहा, 'मैंने आपसे क्या, किसी से भी इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा। केवल अपनी पत्नी से कहा है और वह भी मेरे साथ सहगमन के लिए तैयार होकर आई है। किसी और से कहने में कोई लाभ भी नहीं था।'

'मुझसे कहने में भी नहीं?' सोमेश्वर सोलंकी ने खड़े होकर कहा, 'आप तो मेरे साथ भगवान कालमुख के समाधि-स्थान पर एक नगर निर्मित करने की बातें कर रहे थे। मैं क्या जानता था कि उस समय आपके मन में ये

विचार थे! महामंडलेश्वर, आपको यही करना था तो आपने हम सब का नेतृत्व क्यों किया? क्यों हमारा मार्ग-प्रदर्शन करते रहे?'

तभी कपाय नायक ने खड़े होकर कहा—चालुक्यराज, यह प्रश्न आप मुझी को महामंडलेश्वर से पूछ लेने दीजिए। जब मेरे पिता प्रोलेय नायक का अवसान हुआ तो मंडलेश्वर मेरी माता के पास आये थे। जानते हैं उस समय उन्होंने मेरी माता से क्या कहा था? उन्होंने कहा था, 'वरदाम्बा, मैं तुम्हें आश्वासन देने के लिए नहीं आया हूँ। महावीर प्रोलेय नायक की मृत्यु के बाद उनकी सती-साध्वी पत्नी को केवल भगवान ही आश्वासन दे सकते हैं। मैं तो आया हूँ तुमसे तुम्हारे सोलह वर्ष के पुत्र की भीख माँगने के लिए। यह विजयधर्म-साम्राज्य का सामुराय है। यह समुद्र को मलेच्छों और तुरुष्कों से मुक्त करेगा। महासती, मेरा सामुराय मुझे दे दो।' विजयधर्म-साम्राज्य का महामंडलेश्वर स्वयं आकर भीख माँगे और मेरी माता अस्वीकार कर दे? मैं महामंडलेश्वर के पीछे चल पड़ा। उन्होंने मुझे दो जहाज देकर कहा, 'कपाय नायक, तुम आज से विजयधर्म-साम्राज्य के सामुराय हुए। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम समुद्र के तुम अधिपति हो। तुम्हें देने के लिए मेरे पास अधिक जहाज तो हैं नहीं, फिर भी मैं यह चाहता हूँ कि आज से मदुरा और देवगिरि के बीच का सागर-सम्बन्ध समाप्त हो जाना चाहिए।'

'और तुमने वह काम कर दिखाया। तुमसे जितनी अपेक्षा की गई थी उससे अधिक ही तुमने किया। तुम्हारी सहायता के बिना वारंगल टिका नहीं रह सकता था। कापिली का पतन नहीं हो सकता था। होनावर जीवित नहीं रहता और ज़ोलन के उत्पात समाप्त नहीं किये जा सकते थे। भगवान अगस्त्य भी सहायता के लिए आ जाते तो वह भी इससे अधिक शायद ही कुछ कर पाते!' दादैया सोमैया ने कहा।

'यह आपकी कृपा, ईश्वर की दया और भगवान कालमुख का आशीर्वाद है। विजयधर्म का प्रत्येक अनुयायी केवल यही चाहता है, परन्तु इस समय प्रश्न यह है कि इस प्रकार कार्य आरम्भ हो जाने के बाद क्या महामंडलेश्वर इस प्रकार का आचरण कर सकते हैं?'

'यह मेरे प्रस्थान की वेला है।' भगवान कालमुख ने मेघाडम्बर-जैसे

गहन, परन्तु साथ ही ग्लानि-भरे स्वर में कहा, 'पता नहीं अभी मेरे ऐसे कौन-से कर्म शेष रह गए हैं कि एक सौ वर्ष की तपश्चर्या और आजीवन जीवन्मुक्त रहने के बाद भी अन्तकाल में विदा की यह वेला इतनी दुःखपूर्ण हो उठी है! हे ईश्वर, तेरी लीला अपार है! क्या तूने मेरे लिए आवागमन का अभी एक और क्रम निर्धारित कर रखा है? एक सांसारिक जीव कर्तव्य की पूर्णाहुति के सन्तोष के साथ इस जीवन से विदा ले सकता है, परन्तु मैं, कालमुख विद्याशंकर, जिसने आज प्रातःकाल ही निरञ्जन, निराकार परमेश्वर के रूपहीन स्वरूप का साक्षात्कार किया है, उसके लिए विदा की यह वेला इतनी कष्टकर हो उठी है! हे ईश्वर! हे दयामय! क्यों तूने मेरे ऊपर कर्म का इतना बोझ रखा? क्यों मुझे कर्म के बन्धन में बाँधा? और बाँधा ही था तो मेरी इस प्रयाण-वेला को, तेरे महासमुद्र में विलीन हो जाने के आनन्द को, तेरे साक्षात्कार की प्रसन्नता को मुझसे क्यों छीन लिया? हे परमात्मा! मैं क्या करूँ? जैसी तेरी इच्छा!'

वहाँ उपस्थित लोग भगवान के इन वेदना-भरे शब्दों को सुन न सके। सुनकर सहन न कर सके। कोई आँख उठाकर कालमुख भगवान के ग्लानि से ग्रहणग्रस्त सूर्य-जैसे चेहरे की ओर देख न सका। और भगवान कालमुख निर्निमेष दृष्टि से किष्किन्धा और ऋष्यमूक पर्वत की चोटियों के बीच में होकर क्षितिज की ओर क्षिप्र वेग से उतरते हुए भगवान भुवनभास्कर की ओर देख रहे थे। जिस प्रकार मनुष्य अपने वस्त्र उतारकर फेंक देता है उसी प्रकार भास्करनारायण ने अपनी समस्त उग्रता को उतार फेंका था।

धीरे-धीरे पश्चिमाकाश सन्ध्या की सिन्दूरी आभा से रक्ताभ होने लगा। कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् कालमुख भगवान ने अत्यन्त निराश और कातर होकर कहा—हे ईश्वर! तेरी इच्छा के अधीन हूँ! वही हो जो तू चाहता है!

और उसी समय बाहर से उच्च स्वर में, मानो भगवान कालमुख की वाणी ही प्रतिध्वनित हो रही हो इस भाँति, सुनाई दिया—हे ईश्वर! तेरी इच्छा के अधीन हूँ! वही हो जो तू चाहता है।

सब लोग चौंक पड़े और मुड़-मुड़कर देखने लगे कि यह नया स्वर

किसका है और किधर से आ रहा है ? क्षण-भर तो सबको यही लगा कि यह भगवान के स्वर की प्रतिध्वनि ही होनी चाहिए। कालमुख भगवान भी चौंक पड़े और एक क्षण के लिए उनकी दृष्टि भास्करनारायण की ओर से स्खलित हो गई। तभी पच्चीस-सत्ताइस वर्ष के बीच का एक युवक पम्पापति के रंगमंडप की सीढ़ियाँ चढ़ता दिखाई दिया।

वह युवक हाड़-मांस का बना साधारण व्यक्ति नहीं प्रतीत होता था। ऐसा लगता था मानो उसके अंग-उपांग लकड़ी को तराशकर बनाये गए हों। इस समय उसके रोम-रोम से पसीने की धाराएँ बह रही थीं। ऐसा लग रहा था मानो सद्यःस्नात कोई काष्ठमूर्ति चेतन रूप धरकर चली आ रही हो। अस्तंगत सूर्य के पाण्डुर प्रकाश में उस युवक का चेहरा बिलकुल काला और पसीने से लथपथ लग रहा था। उसके सिर के बाल खड़े हो गए थे। आँखें फटी हुई और पुतलियाँ बिलकुल गोल और सफेद लग रही थीं! कोहनी से कलाई तक उसके हाथ मानो लहू से रँगे हुए हों इस प्रकार लाल हो रहे थे और अँगुलियों से पसीने की बूँदें टपक रही थीं। उसे देखकर ऐसा लग रहा था मानो कोई भूत श्मशान से मार्ग भटककर इधर निकल आया है या किसी अधजली चिता पर से कोई कंकाल उठकर भाग निकला है। उसके हाथ में मिट्टी का एक पात्र था जिसे वह बार-बार मुँह से लगाता जाता था।

लड़खड़ाता हुआ वह रंगमंडप में आया। एक क्षण ठिठका और आधीरात में बोलनेवाले उल्लू के-से स्वर में उसने कहा—वही हो जो तू चाहता है!

सारी सभा निस्तब्ध उसे देखती रह गई।

'बुक्का!' हरिहर ने उसे देखकर चकित होते हुए कहा, 'बुक्का भाई....'

एक ब्राह्मण युवक उसके पीछे दौड़ा आया और उसका हाथ पकड़कर बोला—इधर नहीं....उधर....

'यहीं....इधर, और कहीं नहीं....' बुक्का ने उस ब्राह्मण युवक का हाथ झटक दिया। उसका सारा शरीर काँप उठा। वह बोलता चला गया, 'यहीं....हे ईश्वर! वही हो|जो तू चाहता है....देखो....देखो....वह पुनः आ

पहुँचा....मेरे समीप आ रहा है....आओ धर्मराज, आओ....लोहू की नदियाँ बहेंगी....तुंगभद्रा और कावेरी के जल रक्तवर्ण हो उठेंगे....तो भी हे ईश्वर, वही हो जो तू चाहता है....सुनते हो न वृषभराज ?'

कालमुख भगवान ने ब्राह्मण युवक की ओर देखते हुए पूछा—यह सब क्या है माधव ?

'भगवन् !' माधव ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा, 'उन्मत्त-पंचाशिका से आज प्रातःकाल जब आपने हमारी परीक्षा ली तो कहा था :

"शुभं वा यदि वा पापं यन्नृणां हृदि संस्थितम् ।
सुगूढमपि तज्ज्ञेयं स्वप्नवाक्यात् तथा मदात् ॥"

[मनुष्य के मन में, अन्तरतम अन्तर में, हृदय के गहन तल में छिपा हुआ शुभ है या अशुभ, पाप है या पुण्य, यह सब जाना जा सकता है या तो स्वप्न में बोले जाने पर अथवा नशा करने पर ।)

'भगवान का यही सूक्त कुमार बुक्काराय को तब से सता रहा है । उसके मन में बार-बार प्रश्न उठने लगा कि मेरी परीक्षा क्यों नहीं ? मेरे हृदय के अन्तरतम में क्या है, यह क्यों न जान लिया जाये ? इसलिए उसने मुझसे कहा—"माधव पंडित, मैं भी धतूरे का रस पीता हूँ । उन्मत्त होने पर मैं जो कुछ भी बोलूँ आप लिख लेना और बाद में मुझे बता देना ।" यही इनके उन्माद का कारण है ।'

'धतूरे का रस ?' सोमेश्वर सोलंकी ने चकित होकर पूछा, 'यहाँ का सारा प्रबन्ध तो मैंने किया है और गुरुदेव की आज्ञानुसार कहीं धतूरे का एक पत्ता भी नहीं रहने दिया, फिर इन्हें रस कहाँ से मिल गया ?'

'दुर्गपालजी, आपका अरमणो (महल) तो समीप ही है और वहाँ धतूरे का रस भी तो है !'

'सो तो है । परन्तु वह तो केवल उसी को और केवल उतना ही दिया जा सकता है जितने की और जिसको भगवान आज्ञा करें ।'

विद्या के भार से गम्भीर माधव पंडित का चेहरा मुस्कराहट से भर गया । लेकिन उसने गम्भीर स्वर में ही कहा—दुर्गपालजी, युवक जब जो कुछ चाहता है प्राप्त कर ही लेता है ।

'लेकिन मेरे अरमणों में तो मेरी रानी और मेरी कन्या....'

'आपकी कन्या को ही बुक्काराय ने खोज निकाला और उसके बाद तो इनका मार्ग सरल हो गया।'

'आओ वृषभराज, आओ।' बुक्काराय ने इस तरह झुकते हुए कहा मानो साष्टांग दण्डवत कर रहा हो, परन्तु वह अपना सन्तुलन बनाये न रख सका और जमीन पर गिर पड़ा। फिर उसने गिरे हुए ही दोनो हाथ लम्बे करके फटे हुए स्वर में कहना आरम्भ किया, 'आओ वृषभराज, तुम्हारे चार पाँवों में तीन तो घायल हो चुके हैं, केवल एक ही पाँव स्वस्थ बचा है। अब तुम किसके सहारे चलो-फिरोगे? क्या मुझी से पूछ रहे हो? मैं बालक क्या जवाब दे सकता हूँ! इसका उत्तर आपको पूछना चाहिए भगवान कैलाशपति से। देखिए वह सामने तो खड़े हैं। ऐं, क्या कह रहे हैं? उन्होंने उत्तर दे दिया? क्या उत्तर दिया? आपने क्या पूछा? यही पूछा न कि आज धर्म वृषभ के रूप में धरती पर विचरण कर रहा है और धरतीवासियों ने अनेक पापों और अनेक भीरुताओं के कारण उसके तीन पाँव घायल कर दिये हैं तो वह अब किसके सहारे चले-फिरे? यही पूछा था न आपने? और जगत के पिता ने आपको क्या उत्तर दिया? यही कहा न कि धर्म, जा, बुक्काराय के पास जा! तू उसका आधार बनना और वह तेरा आधार बनेगा। सुना धर्मराज! जगत-पिता ने आपसे यह कहा है। मैं बुक्काराय हूँ। आप मेरा आधार बनिए और मैं आपका आधार बनूँगा। मैं....मैं....'

थोड़ी देर बुक्का इसी भाँति पड़ा रहा और फिर जोर से पुकार उठा। उसकी वह पुकार सारे सभागृह में शंख-ध्वनि की भाँति गूँज गई। उसने पुकारा—माधव, कहाँ हैं आप माधव पंडित? आपको भगवान कालमुख ने विद्यारण्य के विरुद से विभूषित किया है। माधव विद्यारण्य, मैं धर्म का आधार बनूँगा, आप मेरा आधार बनेंगे न? माधव, विद्यारण्य, भगवान कालमुख विद्याशंकर की सब विद्याओं के सर्वश्रेष्ठ उत्तराधिकारी माधव, आप कहाँ हैं?

और इतना कहकर बुक्काराय बेसुध हो गया।

भगवान कालमुख अभी तक इस सारे दृश्य को शान्तिपूर्वक देखते रहे

थे। अब धीरे-धीरे उनके दोनो हाथ ऊँचे उठे और आशीर्वाद देने की मुद्रा में बुक्काराय के ऊपर फैल गए।

'असह्यवीर्य रुद्रप्रताप सकलवर्णाश्रमधर्ममंगलपरिपालीसातु भगवान-विरूपाक्ष देवेशसान्निध्यात महामंडलेश्वर ,विजयनगरराजराजेश्वर महाराजाधिराज राय बुक्काराय! भगवान विरूपाक्ष के इस साम्राज्य के परमभट्टारक महामंडलेश्वर विजयनगर के राजराजेश्वर! भगवान विरूपाक्ष तुम्हारी मनोकामनाएँ पूर्ण करें! महाराजाधिराज बुक्काराय की जय हो!'

सारी सभा चित्रलिखित-सी देखती रह गई। भगवान कालमुख का यह व्यवहार और यह घोषणा किसी की भी समझ में नहीं आई।

तब भगवान कालमुख विद्याशंकर बोले—भाविको, समाजनो, विजयधर्म के धुराधारियो, विजयनगर-साम्राज्य के सुभटो, यह हैं उन्मत्त पंचाशिका द्वारा उपलब्ध तुम्हारे महाराजाधिराज राय बुक्काराय। आज से तुम सबकी धर्मभक्ति, राजभक्ति, संस्कारभक्ति और राष्ट्रभक्ति—इन चतुर्विध भक्तियों के ये उत्तराधिकारी हुए। तुम सबने मेरे प्रति अपनी श्रद्धा और ममत्व से प्रेरित होकर आज से सात वर्ष पूर्व, जिस विजयधर्म-साम्राज्य को मुझे अर्पित किया था, मैं उसे भगवान विरूपाक्ष के चरणकमलों मे पुनः समर्पित करता हूँ और भगवान विरूपाक्ष ने स्वयं जिसे अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित किया है ऐसे महाराजाधिराज बुक्काराय को सौंपता हूँ। अपनी इस असीम कृपा के द्वारा परमेश्वर ने मुझे मेरे जीवन की अन्तिम घड़ी में, सब प्रकार के विषाद, असमंजस और चिन्ता से मुक्त किया है। भगवान विरूपाक्ष बुक्काराय की मनोकामनाएँ पूरी करें! और बुक्काराय तुम्हारी मनोकामनाएँ पूरी करें! भगवान विरूपाक्ष पम्पापति की जय हो! विरूपाक्ष भगवान के उत्तराधिकारी महाराजाधिराज बुक्काराय की जय हो!

यह कहकर भगवान कालमुख ने सूर्यनारायण की ओर देखा तो उनका लाल बिम्ब क्षितिज को छूने ही वाला था। फिर भगवान कालमुख ने राय हरिहर की ओर देखा तो वह निश्चेष्ट, पद्मासन लगाये सूर्यनारायण की ओर देख रहे थे। क्षण-भर भगवान कालमुख उनकी ओर देखते रहे। उनके साथ और सभी सभाजनों ने भी राय हरिहर की ओर देखा। वह इस तरह निश्चेष्ट

बैठे थे मानो किसी कुशल पांचाल शिल्पी ने प्रस्तर मूर्ति उत्कीर्ण कर जैनालय में स्थापित कर दी हो। सब उनकी ओर देखते रहे और किसी की भी समझ में न आया कि क्या कहना और क्या करना चाहिए।

कालमुख भगवान पुनः क्षितिज की कोर को छू रहे सवितादेव के लाल बिम्ब को देखने लगे। उस ओर निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए ही उन्होंने अपनी पीठ के पीछे मूक और मूढ़ बनकर बैठे हुए सभाजनों को उद्देश्य कर कहा—भाविको, तुममें से कोई मेरे सामन्त थे, कोई नायक थे, कोई वणिगा थे, कोई भाविक थे, कोई दंडनायक थे, कोई सामुराय थे, कोई दुर्गपाल और कोई रायसा थे। तुम्हारे महाकरणाधिप भी यहाँ उपस्थित हैं। ऐसे तुम सब कालमुख विद्याशंकर की, जीवन्मुक्त तपस्वी की अन्तिम वाणी सुनो :

'जब तक तुम सब विजयधर्म की रक्षा करोगे, विजयधर्म भी तुम्हारी रक्षा करेगा। जो मनुष्य धर्म का पालन करते हुए पुरुषार्थ करता है, धर्म के द्वारा जय प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, धर्म के लिए मृत्यु का आलिंगन करने को सदैव प्रस्तुत रहता है उसे त्रैलोक्य में भी कोई मार नहीं सकता, पराजित नहीं कर सकता। जब तक धर्म है, विजय सदैव निश्चित है—जन्म में भी और मृत्यु में भी। मनुष्य-मनुष्य के बीच के भेद को जो तोड़े वही धर्म है। जो मनुष्य के पारस्परिक भेदों को बढ़ाता है वह सम्प्रदाय कहलाता है। धर्म का परित्याग कर सम्प्रदाय का आश्रय कभी मत लेना, क्योंकि वह मार्ग विनाश का है। जीवन में कभी एक क्षण के लिए भी इस बात का विस्मरण मत करना कि यदि तुम धर्म की रक्षा करोगे तो धर्म भी तुम्हारी रक्षा करेगा और सम्प्रदाय की रक्षा करोगे तो सम्प्रदाय तुम्हारा विनाश कर देगा।

'विजयधर्म के अन्तर्गत चारों सम्प्रदायों का मैं सर्वोपरि आचार्य और साधु तुमसे यह कहता हूँ : जो प्रजा जीना चाहती है उसे इस संसार में कोई मार नहीं सकता; और जो मरना चाहती है उस प्रजा को इस संसार में कोई जीवित नहीं रख सकता। इसे तुम चाहे मेरा सन्देश समझो चाहे आदेश, चाहे अन्तिम उपदेश समझो या विदा-वेला की शिक्षा।

'मेरा परमशिष्य—मेरे नाम से चलाये जानेवाले विजयधर्मराज्य के गौरव के लिए जिसने अपने जाति-धर्म, वर्ण-धर्म और पित्र-धर्म को तिलांजलि दे दी

और केवल राष्ट्र के गौरव को ही अपना कर्तव्य माना—ऐसा वह मेरा शिष्य महामंडलेश्वर राय हरिहर जीवन्मुक्त होकर आज विदा ले रहा है। अपने जीवन में वह सौम्यहर था। अपने निर्णयों में वह कठोरहर था। वह अब जा रहा है। मैं उसे हर साँस के साथ एक-एक पग आगे बढ़ते हुए देख रहा हूँ....और अब तो मेरी विदा-वेला भी आ पहुँची है। तुम सब जाओ और मुझे मेरे शिष्यों के साथ भगवान विरूपाक्ष के सान्निध्य में प्रातःकाल तक अकेला रहने दो।'

आकाश से कोई सन्ध्याकालीन बदली पम्पापति के धाम में उतर आई हो ऐसी भगवान कालमुख की पीठ को नमस्कार कर एक के बाद एक सभी सभाजन भीगी पलकें और गम्भीर चेहरा लिये वहाँ से चुपचाप विदा हो गए और थोड़ी ही देर में सारा रंगमंडप जनशून्य हो गया।

फिर सोमेश्वर सोलंकी द्वारा भेजी हुई एक पालकी आई और बुक्काराय को उसमें सुलाकर कहार पालकी को ले चले।

और पम्पापति विरूपाक्ष का देवमन्दिर दूर से प्रेक्षकों को सन्ध्या की अवर्णनीय आभा से आलोकित और शोभायमान दिखाई दे रहा था। उन्होंने कालमुख भगवान को क्षितिज की कोर पर आधा ऊपर और आधा नीचे गए हुए सूर्य-बिम्ब की ओर टक लगाये पद्मासन में बैठे देखा।

और थोड़ी ही देर में सवितादेव क्षितिज के पीछे डुबकी लगा गए!

बलदेव सोलंकी
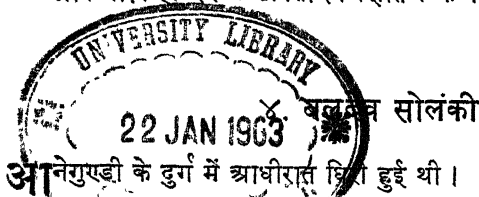
आनेगुण्डी के दुर्ग में आधीरात घिरी हुई थी।

राय हरिहर द्वारा आदेशित विजयधर्मराज्य के विजयोत्सव के निमित्त और भगवान कालमुख विद्याशंकर के देहोत्सर्ग के निमित्त जो सामन्त, नायक, रायस, दुर्गपाल, महाकरणाधिप और धर्माचार्य सायंकाल के समय, पम्पापति विरूपाक्ष भगवान के मन्दिर में एकत्रित हुए थे, उन सब के विश्राम के लिए सोमेश्वर सोलंकी ने अपने दुर्ग में पूरी-पूरी व्यवस्था की थी।

परन्तु दुर्ग के विशाल प्रांगण में खाटें बिछाकर ये जो सब लोग बैठे हुए थे उनमें से किसी के भी हृदय को शान्ति, निश्चिन्तता और विश्राम न था। किसी को भगवान कालमुख की विदा शूल के समान कष्ट पहुँचा रही थी, तो किसी को राय हरिहर का अनपेक्षित देहोत्सर्ग दुःख दे रहा था। दोनो ही विजयधर्म के दो महान स्तम्भ थे—एक प्रत्यक्ष था और दूसरा परोक्ष। जब कभी पारस्परिक मतभेद या विग्रह उपस्थित होते तो दोनो में से एक का नाम सभी के सिर पर छत्रछाया की भाँति होता; और दूसरा ऐसी परिस्थिति की जरा-सी गन्ध पाते ही अपने घोड़े को दौड़ाता हुआ आ पहुँचता और उसकी उपस्थिति-मात्र से लोग अपने भेदों और अन्तरायों को भूल जाते, कोई मध्यमार्ग निकल आता और रायरेखा की परम्परा निर्बाध गति से चलती रहती। इस समय सभी बैठे मन-ही-मन यही सोच रहे थे कि अब इन दोनो महापुरुषों के अभाव में क्या होगा? सभी को यही लग रहा था जैसे विजयधर्मराज्य की नौका के डाँड़ और पतवार दोनो ही डूब गए हों।

छोटे-बड़े प्रश्न तो कई थे और सभी की अपनी-अपनी छोटी-बड़ी समस्याएँ भी थीं। सब इन पर चर्चा भी कर लेना चाहते थे। परन्तु इस समय पुरानी बातों को छेड़ने की इच्छा किसी को भी नहीं हो रही थी। यह समय तो मानो नई वेदनाओं को याद करने और सहने का था। नींद किसी को नहीं आ रही थी और जागते रहने का भी कोई कारण किसी की समझ में नहीं आता था। सब को यही लग रहा था कि साम्राज्य के मनकों को पिरोये रखनेवाला सूत्र अदृश्य हो गया है। मनके वही थे—सामन्त, दुर्गपाल, वायीजन श्रेष्ठी और उसकी बनाजा और बेहारुलू, रायस और दुर्ग सब-कुछ वही थे। पर सभी को यह आशंका हो रही थी कि इन मनकों से अब साम्राज्य की विजयमाला बनाई जा सकेगी या नहीं!

यह सच है कि भगवान कालमुख अपने पीछे छह शिष्य छोड़ गए थे। उन छहों शिष्यों की उन्मत्त-पंचाशिका से उग्रतम परीक्षा भी कर ली गई थी और प्रत्येक शिष्य के मन में विजयधर्म के अतिरिक्त और कोई आकांक्षा नहीं थी। फिर बुक्काराय ने भी बिना कहे ही अपनी परीक्षा दे डाली थी और स्वयं भगवान कालमुख ने अपने हाथों उसे विजयनगर का महाराजाधिराज

और विरूपाक्ष पम्पापति का उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। लेकिन आखिर तो भगवान कालमुख की यह परीक्षा मानसिक ही थी, व्यावहारिक तो थी नहीं। बुक्काराय मानसिक परीक्षा में भले ही विरूपाक्ष का उत्तराधिकारी प्रमाणित हुआ हो, उसके व्यावहारिक कार्यों के बारे में किसी को कुछ भी ज्ञात नहीं था। पिछले सात वर्षों में कावेरी और तुंगभद्रा के मध्यवर्ती प्रदेश में अनेक नाम सुने गए थे परन्तु उन नामों में बुक्का का नाम किसी ने भी नहीं सुना था। उसे जाननेवाले केवल इतना जानते थे कि वह महामंडलेश्वर का भाई और दोरासमुद्र का दुर्गपाल है। दोरासमुद्र के दुर्ग के बारे में भी लोगों को केवल इतनी ही जानकारी थी कि विजयधर्मराज्य के महाकरणाधिप दादैया सोमैया वहाँ अपनी राजधानी बनाकर रहते हैं। इससे अधिक उस स्थान के बारे में लोगों को कुछ भी मालूम नहीं था। प्रज्ञाचक्षु महाकरणाधिप जब दोरासमुद्रा में रहते थे तो अपने पास अपनी पत्नी मालादेवी के अतिरिक्त बारी-बारी से किसी-न-किसी सामन्त, दुर्गपाल और रायस को भी अपना अमात्य या मन्त्री बनाकर रखते थे, और इनके द्वारा शासन-व्यवस्था का काम करते थे। दादैया के मन्त्रियों के रूप में लाखन सामुराय, विनयादित्य चालुक्य, उदयादित्य, गोपभट्टी, कपाय नायक, रघुनाथ नायक, राजसंन्यासी के राजपुत्र वल्लभदेव होयसल, गोविन्द दीक्षित, मल्लिनाथ, पंडित मायण, श्रीकंठ दंडनायक आदि नये-पुराने, जाने-अनजाने कई वीर रह चुके थे, परन्तु इनमें भी दुर्गपाल बुक्का का नाम कभी किसी ने नहीं सुना था। लोग सिर्फ उसके बारे में इतना ही जानते थे कि वह महावीर संगमराय का पुत्र और महामंडलेश्वर राय हरिहर का भाई है।

महामंडलेश्वर राय हरिहर की तो बात ही निराली थी। शत-सहस्र वर्षों में क्षत्रिय वीरों के कुल में कभी-कदास ही ऐसा ब्राह्मण वीर उत्पन्न होता है। युग-युगान्तर के बाद कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, अथवा कोई विश्वामित्र अवतार लेता है, जो पुरातन मान्यताओं के भग्नावशेष पर नई सृष्टि उत्पन्न करने का साहस कर दिखाता है; और उस नूतन सृष्टि के जीवन-मन्त्र का वह द्रष्टा भी होता है। ऐसा ही था राय हरिहर।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता का गायन किया, विश्वामित्र ने गायत्री का।

दोनो ही महापुरुषों के समकालीनों ने उसे सुना। बाद के युग के लोग उन्हें भूल गए। युगान्तरों के बाद लोगों ने उन्हें फिर याद किया और गीता और गायत्री चिरन्तन हो गई। गीता और गायत्री का समन्वय करके विजयधर्मराज्य के लिए राय हरिहर ने एक नई व्यवहार गीता का निर्माण किया।

राय हरिहर हाथी की तरह था, जो जीवित रहने पर लाख का और मरने पर सवा लाख का होता है। छोटे-छोटे मतभेदों और विग्रहों के बाड़ों और घेरों को तोड़कर उनके भग्नावशेषों पर उसने तुंगभद्रा के किनारे एक नये अजयगढ़ का निर्माण किया। वह विजयधर्मराज्य का दूसरा मनु ही था। कोई गाँव ऐसा नहीं बचा जहाँ वह गया न हो और जहाँ उसके जाने से पारस्परिक एकता अधिक दृढ़ न हुई हो। राजसंन्यासी बल्लालदेव भी थे, भगवान क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ महाराज परमहंस भी थे। परन्तु सच्चा परिव्राजक तो राय हरिहर ही था और उसकी परिव्रज्या परलोक और परब्रह्म के लिए नहीं इस लोक और इस दुनियावालों के लिए ही थी। सबरस की भाँति वह समस्त राष्ट्र के जीवन में ओत-प्रोत हो गया था। कोई भी महान निर्णय करना हो तो वह उसके बिना किया नहीं जा सकता था। कोई भी समस्या हो तो वहाँ उसकी उपस्थिति अनिवार्य थी। विजयधर्मराज्य का वह ऐसा आवश्यक और अनिवार्य घटक था कि लोगों को उसका नाम लेने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वह सभी के मन में बसा हुआ था। यदि भूले-भटके किसी प्रसंग में किसी को उसका नाम लेने की आवश्यकता पड़ भी जाती तो लोग मन-ही-मन एक प्रकार के आघात का अनुभव करते थे। विजयधर्मराज्य के लिए उसने जो कार्यक्षेत्र पसन्द किया था, आरम्भ में तो वह कइयों को अर्थहीन ही लगा। सबको आशंका हुई थी कि इस तरह दबे-मुँदे पारस्परिक संघर्ष उठ खड़े होंगे, लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया उसके कार्य का महत्व लोगों की समझ में आता गया। जिस प्रकार धरती के पट को चीरकर वनस्पति उगती है उसी भाँति उसका कार्य पल्लवित और पुष्पित होता गया।

लाखन सामुराय के पास जहाज तो एक ही था परन्तु उसकी एक ही पुकार पर रातों-रात एक सौ जहाज आकर इकट्ठे हो जाते थे। और यह था

राय हरिहर के कार्य का प्रताप। कपाय नायक के पास केवल दो ही जहाज थे और उसे कलिंग के सारे समुद्र-तट की रक्षा करनी होती थी। देखते-ही-देखते इतने जहाज आ जुटे कि उसे उनमें से कइयों को लौटाना पड़ा। और यह था राय हरिहर के कार्य का प्रताप। जहाँ सेना न होती वहाँ लाखों की सेना तैयार हो जाती। होलेय, पालेर, बेसवागा, कुरुबा, किरात, शम्बूर, गोंड, बिद्दर, विप्रविनोदी, ब्राह्मण, वीरवणिगा, जिनका आज से पहले समुद्र अथवा धरती पर, राजकारण अथवा राजकार्यों अथवा सामरिक कार्यों में कोई स्थान नहीं था, जिनकी कहीं कोई गिनती नहीं थी, कोई पूछ नहीं थी, ऐसे सभी उपेक्षित और तिरस्कृत हजारों की संख्या में अपने छोटे-बड़े साथियों को लेकर आ उपस्थित हुए। कपाय नायक नेपाल नाम के द्वीप पर चढ़ाई करना चाहता था। जैसे ही यह बात मालूम हुई एक ही रात में मयलापुर, शेङ्गी, और विजयावाडा के समस्त मछुआरे अपनी-अपनी छोटी-बड़ी हरिगोलें लेकर, हजारों की संख्या में आ पहुँचे। और यह भी राय हरिहर के कार्यों का ही प्रताप था।

ऐसी थी वह रायरेखा जो विजयधर्मराज्य की राजगीता ही बन गई थी। उस रायरेखा ने छोटे-से-छोटे और निम्न-से-निम्न मनुष्य को भी इस धर्मराज्य के लिए अपने व्यक्तिगत हितों का परित्याग कर सर्वस्व की बलि चढ़ाने के लिए अनुप्राणित कर दिया था। रायरेखा के बिना विजयधर्मराज्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती और उस रायरेखा का प्रणेता था राय हरिहर।

ऐसा था वह राय हरिहर, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसका भाई भी उसी के जैसा हो। यह सच है कि भगवान कालमुख ने इतने परिचित नामों को छोड़कर अपरिचित बुक्का को निर्वाचित किया था। यह भी सच है कि भगवान कालमुख के शासन की कोई सरलता से अवहेलना नहीं कर सकता था। परन्तु फिर भी सबके मन में यह प्रश्न अवश्य घुमड़ रहा था कि कच्चा हीरा हीरा हो ही नहीं, ऐसी बात तो नहीं, परन्तु वह पत्थर ही न हो, यह भी कैसे कहा जा सकता है!

उस रात लोगों के मन में यही विचार चक्कर लगा रहे थे, परन्तु उन्हें वाणी के द्वारा व्यक्त करने का साहस किसी में नहीं था। दुःखभरी वह रात

थी। कोई जागना नहीं चाहता था, परन्तु नींद किसी को भी नहीं आ रही थी।

और आनेगुण्डी के दुर्ग में आधीरात घिर रही थी।

दुर्ग के दुर्गपाल सोमेश्वर सोलंकी के अरमणे के एक कक्ष में उन्मत्त-पंचाशिका के धतूरे के रस के उन्माद की बेहोशी-भरी नींद में मस्त बुक्काराय एक पलंग पर सोया पड़ा था। उसकी चिकित्सा के लिए सोमेश्वर सोलंकी ने राजवैद्य को बुला भेजा था, परन्तु उन्होंने यही कहा था कि यह जब तक सोना चाहे बिना किसी विघ्न-बाधा के सोता रहने दिया जाये, यही इसकी सर्वश्रेष्ठ औषधि है। इसलिए उसे अकेले एक कमरे में सुलाकर शेष सब लोगों को वहाँ से परे हटा दिया गया था।

ठीक आधीरात हुई तो उल्लू की आवाज सुनाई दी। उल्लू सदा आधी-रात के समय ही बोलता है। और जब वह बोलता है तब उसकी आवाज घण्टे की झंकार-जैसी कुछ खिंची और कुछ गूँजती हुई, कुछ ऊँची और कुछ झनझनाती हुई मालूम पड़ती है।

उल्लू की इस आवाज को सुनकर नीचे दुर्ग के प्रांगण में बैठे हुए लोगों में से मल्लिनाथ ने कहा—सुना, उल्लू बोल रहा है। 'उत्तररामचरित' में तो भवभूति ने इस स्थल पर सीता माता द्वारा पोषित हाथी का वर्णन किया है। कांपिली के स्थलपुराण में हाथियों की क्रीड़ा का वर्णन है। लिखा हुआ है कि आधीरात में हाथियों की चिघाड़ को सुनकर हथिनियाँ दौड़ी आती हैं। परन्तु वाह रे समय की बलिहारी, जहाँ आधीरात के समय हाथी चिंघाड़ा करते थे वहीं आज उल्लू बोल रहा है!

इस पर सोमेश्वर सोलंकी ने हँसकर कहा—उल्लू यहाँ कभी-कभी बोलता तो अवश्य है, परन्तु उसके बोलने को शकुन माना जाये या अपशकुन, यह बताना ज्योतिष का काम है।

'शास्त्र में लिखा है कि उल्लू की आवाज चोरों के लिए अपशकुन और योद्धाओं के लिए शुभ शकुन है। कहा जाता है कि उल्लू दाहिनी ओर बोलता सुनाई दे तो जीत होती है।'

'अब हमें थोड़ी देर के लिए नींद आ जाये तो अच्छा।' उदयादित्य ने

कहा। 'यदि हम विनोदी या किरात होते तो पाँसे खेलते हुए सारी रात बिता देते और पता भी न चलता कि कब सबेरा हो गया।'

अरमणे के प्रांगण में इस तरह की बातें हो रही थीं। और अरमणे के प्रकोष्ठों में आधीरात की नीरव शान्ति छायी हुई थी। बुक्काराय के प्रकोष्ठ में एक टिमटिमाता दिया जल रहा था। सहसा उस प्रकोष्ठ में एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। उसके मुँह पर ढाटा बँधा हुआ था। शरीर में वह तुरुष्कों-जैसा बदन और पाँवों में पायजामा पहिने हुए था। वह बिलकुल दबे पाँवों चल रहा था। बिल्ली के चलने की भी आवाज सुनाई दे जाती है, परन्तु उसके चलने की आवाज बिलकुल ही नहीं आ रही थी। सिर पर वह तुरुष्कों-जैसी पगड़ी बाँधे हुए था। चेहरे में केवल उसकी लाल आँखें दिखाई दे रही थीं। हाथ में वह एक लम्बा छुरा लिये हुए था। यदि कोई देखनेवाला वहाँ होता तो उसके लिए यह निश्चय करना कठिन हो जाता कि छुरी अधिक लपलपा रही है या उसके नेत्रों में हत्या की लालसा!

वह धीरे-धीरे, बड़ी सावधानी से पाँव उठाता हुआ पलंग की ओर बढ़ने लगा। वह इस तरह कदम उठा रहा था मानो जमीन पर काँच के टुकड़े पड़े हों और उनसे बच-बचकर चल रहा हो। पलंग के समीप पहुँचकर एक क्षण वह उस पर सोये हुए बुक्काराय की ओर देखता रहा।

बुक्काराय के चेहरे पर से धतूरे का नशा और उन्माद धीरे-धीरे उतरता जा रहा था। सायंकालीन सूर्य की लाल आभा-जैसा वह चेहरा ऐसा लग रहा था मानो बिस्तर में पड़ा कोई अंगारा दहक रहा हो। बुक्काराय की आँखें खुली हुई थीं, परन्तु वे कुछ देख नहीं रही थीं। वह बिस्तर में फैला पड़ा था। शरीर पर वह कुछ ओढ़े हुए नहीं था। खुला बदन ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो धतूरे के उन्माद की गर्मी को सहने में असमर्थ नंगा पड़ा हो। चेहरे पर उसके शान्त और प्रसन्न मुस्कराहट थी।

तुरुष्क-जैसे उस नकाबपोश ने अपना छूरेवाला हाथ ऊँचा उठाया। अपने प्रहार को पूरी शक्ति देने के लिए उसका हाथ उठता हुआ पीठ के पीछे तक चला गया। एक पाँव को जरा आगे बढ़ाकर उसने थोड़ा-सा झुका दिया, जिससे वार करते समय शरीर का सन्तुलन ठीक-ठीक बना रह सके।

उसके चेहरे की सभी शिराएँ तन गईं। छुरे का निशान साधती हुई उसकी आँखें सिकुड़कर तीर की नोक-जैसी पैनी हो उठीं। चीता जिस प्रकार शिकार पर झपटने से पहले बदन को सिकोड़ता है उसी प्रकार अपने शरीर को सिकोड़ वह उछलकर वार करने जा ही रहा था कि किसी ने लपककर पीछे से उसके छुरेवाले हाथ को पकड़ लिया।

हत्यारे ने तड़पकर पीछे की ओर देखा, लगभग अठारह वर्ष की एक किशोरी उसका हाथ कसकर पकड़े हुए थी।

'सोना!' हत्यारे ने फुसफुसाकर कहा, फिर उसने अपने मुक्त हाथ से सोना को जोर का एक धक्का दिया और छुरेवाले अपने हाथ को छुड़ाने की कोशिश करने लगा। सोना धकियाकर दूर जा पड़ी, साथ ही छुरा भी उसके हाथ से छूटकर दूर जा गिरा। सोना की हथेली से खून बह चला और वह जोर से चीख उठी। लेकिन हत्यारे ने उसे दुबारा चीखने का मौका नहीं दिया। लपककर उसके पास पहुँच गया और अपने एक हाथ से उसका मुँह दबा दिया।

'अरे, यह क्या है?' सोमेश्वर सोलंकी चीख सुनकर अन्दर दौड़ा आया था।

सोमेश्वर को देखते ही हत्यारा भागने लगा, परन्तु सोमेश्वर ने लंगी मारकर उसे नीचे गिरा दिया। साथ ही सोमेश्वर भी उस पर जा गिरा। गिरते ही सोमेश्वर ने उसे अपने हाथों से बलपूर्वक दबा दिया।

'सोना! सोना!!' सोमेश्वर ने पूछा, 'क्या तुझे गहरी चोट लगी है?'

'नहीं पिताजी, उसके छुरे की धार से हथेली जरा-सी छिल गई है।'

नीचे गिरा हुआ हत्यारा सोमेश्वर को उलटकर निकल भागने का प्रयत्न कर रहा था, इसलिए सोमेश्वर ने उसकी छाती पर घुटने से इतने जोर से दबाया कि उसका दम घुटने लगा। अब सोमेश्वर ने दोनो हाथों में उसका सिर पकड़कर इतने जोर से जमीन पर पछाड़ा कि हत्यारा धीमी-सी कराह के साथ बेहोश होकर गिर पड़ा।

'सोना, यह क्या है?'

'पिताजी, मैंने इस तुरुष्क को हमारे राज-अतिथि की हत्या करने का प्रयत्न करते देखा और मैं दौड़ी आई ।'

'तुरुष्क ? और आनेगुण्डी में ? हो सकता है कि आज की घटनाओं की खबर दौलताबाद पहुँच गई हो और दिल्ली के सुरत्राण ने किसी दोमार को भेजा हो; लेकिन वह आनेगुण्डी में आया कैसे ?' सोमेश्वर ने उठकर खड़े होते हुए कहा। उसके लिए राज-अतिथि की हत्या के प्रयत्न जितनी ही चिन्ता-जनक यह बात भी थी कि कोई तुरुष्क इस प्रकार आनेगुण्डी में आये। खड़े होने के बाद उसने कहा, 'इस बात की अभी और तत्काल पूरी जाँच-पड़ताल करनी चाहिए।' फिर उसने हत्यारे का ढाटा पकड़कर उसे खींचकर खड़ा कर दिया और सोना से कहा, 'जरा दिये की ओट से परे तो हट जाओ। आनेगुण्डी में घुसने की हिम्मत करनेवाले इस कीड़े को मैं भी तो देख लूँ।'

और वह उस आततायी को खींचता हुआ दिये के बिलकुल समीप ले आया। वहाँ लाकर सोमेश्वर ने जोर से उसके ढाटे को खींचा। दो-एक झटके के बाद ढाटा खुल गया और हत्यारे के चेहरे पर दिये का प्रकाश फैल गया। उस चेहरे को देखते ही सोमेश्वर चार कदम पीछे हट गया और सोना पुनः जोर से चीख पड़ी।

'कौन, बलदेव ?' सोमेश्वर ने इस तरह कहा मानो उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हो। उसके ओठों से इस प्रकार आवाज निकल रही थी मानो वह अन्तिम साँसें ले रहा हो, बलदेव....बलदेव ओह, बलदेव....तू....।'

और सोना तो मारे आश्चर्य के इस तरह स्तम्भित हो उठी थी कि केवल एक बार 'भाई' कह पाई और उसके बाद उसकी वाणी ही जड़ हो गई।

धीरे-धीरे, बहुत ही धीरे-धीरे सोमेश्वर के अचरज का स्थान क्रोध ने ले लिया और वह कहने लगा—बलदेव, तू मेरा एकाकी पुत्र होकर मेरे ही अतिथि और मेरे ही महाराज की हत्या करने को प्रवृत्त हुआ ! मेरा ही पुत्र एक नीच गोभूरी बन गया। बोल बलदेव, बोलता क्यों नहीं ? जिसके पापी हाथ कटारी चलाने को उद्यत हुए थे अब उसकी जीभ बन्द क्यों है ?

'बन्द तो नहीं है।' बलदेव ने कहा, 'परन्तु वह एक मूर्ख पिता के सामने चुप रहना ही उचित समझती है।'

'सच कहा, बलदेव, तूने बिलकुल सच कहा। ले, इस कटार को ले और मेरी छाती में अपने हाथों से पिरो दे और फिर जहाँ तेरी खुशी हो चला जा। कुल-मर्यादा और परिवार के सम्मान का तुझे इतना ही विचार है तो उठा यह कटार और भोंक दे मेरे सीने में। सोना, जानती नहीं तुम कौन हो? तुम सोलंकी की पुत्री हो। कैसा है यह सोलंकियों का कुल? भगवान वशिष्ठ ने स्वयं अपने हाथों एक अप्सरा की सृष्टि की और उस अप्सरा के द्वारा सोलंकियों को सिरजा। तू उस सोलंकी राजकुल की कन्या है। उठा ले वह कटार और दे दे अपने भाई के हाथों में। ठीक है बलदेव। अपने पिता की प्रतिष्ठा की हत्या की अपेक्षा अपने पिता के शरीर की हत्या तेरे लिए कम दुःखदायी होगी। राष्ट्र के लिए भी वह कम क्लेशदायी होगी। हिचकिचा क्यों रहा है? पिता की प्रतिष्ठा की हत्या करने को तत्पर तू उसके शरीर की हत्या करते क्यों डरता है? उठा ले कटार, कर दे मेरा काम तमाम और तब तुझे जहाँ और जिस ओर जाना हो खुशी-खुशी चला जा। सोना, खड़ी देखती क्या है! उठा कटार और थमा दे अपने भाई के हाथ में।'

सोना अपने पिता के इस आदेश की अवहेलना न कर सकी। उसने धीरे से छुरा उठा लिया। उसकी हथेली से अब भी खून बह रहा था। वह छुरा खून से सन गया और बूँदें टपककर धरती को रँगने लगीं।

परन्तु तभी बलदेव ने बहिन के हाथ से छुरे को परे झटक दिया और सोमेश्वर को धक्का देकर भागना चाहा। पहाड़-जैसे सोमेश्वर को धकेलकर भागना आसान नहीं हुआ, इसलिए वह कुपित दृष्टि से अपने पिता की ओर देखने लगा; लेकिन पिता की आँखों में इस तरह अंगारे दहक रहे थे कि बलदेव उनकी ओर देखने का साहस न कर सका। उसने दोनो हाथों से अपनी आँखें मूँद लीं और नीचे बैठ गया।

'अरे कायर!' सोमेश्वर सोलंकी ने तिरस्कारपूर्वक कहा, 'बाप का नाम डुबाने चला, लेकिन वह भी तुझे डुबाना न आया। कायर कहीं का!'

और अपने पुत्र की ओर देखे बिना ही सोमेश्वर उस प्रकोष्ठ से बाहर चला गया। बाहर जाकर उसने वहाँ लकटती हुई घड़ियाल पर जोर से डंका मारा। घण्टे की आवाज सुनते ही कुछ आभट वहाँ दौड़े आये। सोमेश्वर ने

आँख मूँदकर बैठे हुए बलदेव की ओर हाथ का इशारा किया और आभटों को आदेश दिया—ले जाओ गोभूरी को ! डाल दो इसे तुरुष्क दोमारों को बन्द की जानेवाली कालकोठरी में। खबरदार, यह भागने न पाये। नहीं तो तुम्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। सवेरा होते ही इसे न्याय के लिए पेश किया जायेगा।

आभट बलदेव को ले चले। जाते-जाते बलदेव ने अपने पिता की ओर देखा और चीखकर बोला—तुम्हें इसके लिए पछताना होगा।

लेकिन सोमेश्वर ने उससे मुँह मोड़ लिया। वह एक गोभूरी के साथ बात करना अपनी पद-मर्यादा के प्रतिकूल समझता था।

'निगम नायक !' सोमेश्वर ने वहाँ आये हुए आभटों में से एक को उद्देश्य कर कहा, 'एक बिस्तर ले आओ। तुम अपनी तलवार मुझे दो। महाराजाधिराज का पहरा मैं स्वयं दूँगा।'

५. न्याय

ब्राह्ममुहूर्त हुआ। आनेगुण्डी के दुर्ग में सोमेश्वर सोलंकी के अरमणे के मुख्य द्वार पर चौघड़िये बजने लगे। नौबत बजी, शहनाई बजी, भेरी बजी, तूर्य भी बजा।

आनेगुण्डी के दुर्ग में इस तरह के प्रातःकालीन चौघड़िये आज पहली ही बार सुनाई दे रहे थे। आज से पहले कालमुख भगवान के अतिरिक्त विजयधर्म-राज्य का दूसरा कोई महाराजाधिराज नहीं था। और आज तो सकलवर्णाश्रम-धर्ममंगलपरिपालिसातु श्रीविरूपाक्षसान्निध्यात राजराजेश्वर महाराजाधिराज बुक्काराय इस दुर्गपाल के अरमणे में विश्राम कर रहे थे। और महाराजाधिराज जहाँ भी विश्राम करते हैं वही उनका प्रासाद कहा जाता है। यह परम्परा केवल करनाटक में ही नहीं समस्त दक्षिणापथ में एक सहस्र वर्ष से प्रचलित थी।

रात-भर के विश्राम के बाद बुक्काराय अब स्वस्थ हो गया था।

वह बाहर निकला। सोमेश्वर सोलंकी आगे-आगे चल रहा था।

महाराज बुक्काराय दूसरे कक्ष में आये। वहाँ उन्होंने वस्त्र परिधान किये। एक ऊँचा कामदार, घुटनों तक पहुँचनेवाला चीनांशुक का बदन, नीचे ऐसा ही रेशम का मुंडा और पाँवों में भेड़ के ऊन सहित चमड़े के उपानह....

'दुर्गपालजी, यह सब कहाँ से?'

'महाराज, भगवान कालमुख का कल आदेश हुआ और आनेगुण्डी के पांचाल और पंचकारक आपके स्वामिभक्त नागरिक बन गये। हमारे महाराजाधिराज की वेशभूषा और वस्त्र-परिधान उनके गौरव के उपयुक्त न हों तो उसका लांछन तो हमीं को लगेगा न? पिछली रात में ही यह सब तैयार करवाया गया है।'

बुक्काराय का वस्त्र-परिधान पूर्ण होते ही सोमेश्वर ने उनके सामने एक मुद्रा रखी। वह हाथ के पंजे जितनी चौड़ी थी और उसमें अनेक रत्न जड़े हुए थे। उस मुद्रा को देखकर बुक्काराय ने साश्चर्य सोमेश्वर की ओर देखा।

सोमेश्वर ने कहा—प्रभु, यह मूल्यवान मुद्रा नई नहीं है। इसमें सफेद किनारी के नीचे नीलम और पन्नों के द्वारा समुद्र का और उसके ऊपर लाल रत्नों के द्वारा हरिगोल का आकार बनाया गया है। यह पृथ्वी और समुद्र पर महाराज के आधिपत्य की सूचक है। इसमें जो तीन बड़े हीरे हैं वे विरूपाक्षदेव के त्रिलोचन के प्रतीक हैं। यह राजमुद्रा गौतमीपुत्र शातकर्णी की है जिन्हें दक्षिणापथ ही नहीं उत्तरापथ के लोग भी वीर विक्रमराय कहकर पूजते हैं। आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व इस नरोत्तम ने दक्षिणापथ में अपनी गौरव-गाथा निर्मित की थी। आज उनके नाम पर संवत् चलता है। शक आक्रमणकारियों के विजेता शकारि गौतमीपुत्र शातकर्णी का पराक्रम, बल और तेज आपके कर्तव्यपथ को आलोकित करता रहे। धन्य हूँ मैं और महान सौभाग्य है मेरा कि मैं, सोमेश्वर सोलंकी, आपका राजभक्त दुर्गपाल, इस पुरातन और ऐतिहासिक मुद्रा को आपके कामदार में लगाने का अवसर पा रहा हूँ। भगवान विरूपाक्षदेव से मेरी यह प्रार्थना है कि आप इस मुद्रा की परम्परा और इतिहास को दक्षिणापथ में पुनर्जीवित करें।

'यह मुद्रा तुम्हारे पास कहाँ से आई?'

'गौतमीपुत्र शातकर्णी की यह मुद्रा देवगिरि के सिंह यादव को मिली

थी। वहाँ से करनाटक के राजा होयसलराज बल्लालदेव के पास आई। वहाँ से कलियुग के कालयवन मलिक काफूर के पास पहुँच गई। दिल्ली में उसकी अकालमृत्यु के बाद उसके हत्यारे, कांपिली के सूबा, मलिक मुहम्मद के कब्जे में चली गई। और जब मैंने महामंडलेश्वर राय हरिहर की आज्ञा से कांपिली के सूबा को पराजित किया तो यह मेरे पास चली आई। मैंने इसे भगवान कालमुख को सौंप दिया था। जब भगवान ने सभी सामन्तों, दुर्गपालों आदि को निमंत्रित किया और जब राय हरिहर ने विजयोत्सव की घोषणा की तो भगवान ने इसे पुनः मुझको दे दिया था। देते समय उन्होंने कहा था कि अब जो इस राज्य का उत्तराधिकारी होगा वही इसे धारण करने का अधिकारी समझा जायेगा; उसी को यह मुद्रा सौंपी जाये। इसलिए आज मैं यह आपको सौप रहा हूँ। और भगवान विरूपाक्ष से मेरी यही प्रार्थना है कि यह मुद्रा आपकी और आप इस मुद्रा की शोभा बढ़ायें।'

यह कहकर सोमेश्वर ने उस मुद्रा को बुक्काराय के कामदार में मजबूती से टाँक दिया और तब कामदार महाराज बुक्काराय के हाथ में थमा दिया।

जैसे ही बुक्काराय ने दुर्ग के प्रांगण में प्रवेश किया, सोमेश्वर सोलंकी ने स्वयं बन्दीजन बनकर उनके आगमन की घोषणा की। दुर्ग के प्रांगण में एकत्रित सभी सामन्तों, नायकों, दुर्गपालों और दंडनायकों ने विजयधर्मराज्य के प्रथम महाराजाधिराज और भगवान विरूपाक्ष के वारिक (प्रतिनिधि) के रूप में सकलवर्णाश्रमधर्ममंगल के परिपालक को भक्तिभाव से प्रणाम किया।

राय बुक्काराय ने अपना कामदार हाथ में लेकर नीचे रखते हुए कहा--यह कामदार मेरा नहीं है, यह मुद्रा भी मेरी नहीं है। ये दोनों आप सभी के हैं। यहाँ उपस्थित आप लोगों में से प्रत्येक मुझसे ज्ञान में, अनुभव में, व्यवहार में और उम्र में भी बड़ा है। कालमुख भगवान ने मुझे अपना उत्तराधिकारी नियुक्तकर यह मुद्रा धारण करने का अधिकार इसी लिए प्रदान किया है कि मैं आप सब के द्वारा दक्षिणापथ की सेवा करता हुआ विजयधर्मराज्य को सुस्थिर करूँ। इस मुद्रा की परम्परा हम सब की परम्परा हो। इसका पराक्रम हम सबका पराक्रम बने। आप सबकी श्रद्धा पर निर्भर रहकर ही राय हरिहर ने प्रायोपदेश (परलोकगमन) किया है और भगवान

कालमुख ने अपनी इहलीला का संवरण। राय हरिहर हमें रायरेखा दे गए हैं और भगवान कालमुख हमें यह मुद्रा प्रदान कर गए हैं। इन दोनो की मर्यादा और दोनो का पराक्रम हम सब की मर्यादा और हम सब का पराक्रम बने। इन दोनो को मरणपर्यन्त निबाहते रहने की मैं आप सब लोगों के समक्ष शपथ ग्रहण करता हूँ।

'महाराजाधिराज बुक्काराय की जय हो!'

जब यह प्रचण्ड घोषणा शान्त हो गई तो राजगुरु, पंडित आर्यभद्रदेव ने कहा—सामन्त और दुर्गपाल, नायक और दंडनायक, रायस और समस्त जन सुनें : महाराजाधिराज बुक्काराय का राज्याभिषेक तो शुभ मुहूर्त और शुभ घड़ी देखकर दक्षिणापथ की परम्परा के अनुसार, पहले उनके जन्मग्राम कैलाश में और तत्पश्चात् चारों सम्प्रदायों के मुख्य तीर्थ—श्रवण बेलगोला, श्रृंगेरी, शिवकांची और श्रीरंगम् में सम्पन्न होगा। परन्तु परिपाटी यह है कि जब तक किसी उत्तराधिकारी की सर्वसम्मति से नियुक्ति नहीं हो जाती, दिवंगत राजा का अन्तिम संस्कार हो नहीं सकता। इसी लिए मैंने सोमेश्वर सोलंकी से कहा कि वह महाराजाधिराज को राजोचित पोशाक में सज्जकर यहाँ लायें। महाराजाधिराज बुक्काराय सर्वसम्मति से उत्तराधिकारी का अपना पद ग्रहण कर लें उसके पश्चात् ही भगवान कालमुख के अन्तिम संस्कारों की विधि सम्पन्न की जा सकती है। इसलिए सभी एक मन और एक स्वर से कहें : महाराजाधिराज राजराजेश्वर सकलवर्णाश्रमधर्ममंगलपरिपालिसातु विरूपाक्ष-देवसान्निध्यात राय बुक्काराय की जय हो!

सब ने राजगुरु के जयनाद का साथ देते हुए उच्च स्वर में कहा—जय हो! राय बुक्काराय की जय हो!

इसके बाद राजगुरु ने कहा—अब महाराजाधिराज अपने समस्त दुर्ग-पालों, सामन्तों, दंडनायकों, रायसों, देश्यों, आभटों आदि के साथ पम्पापति के धाम की ओर प्रस्थान करें। कालमुख भगवान ने जो अवधि निश्चित की थी वह पूरी हुई। वहाँ चलकर हमें उनके अन्तिम संस्कारों के सम्बन्ध में निर्णय करना होगा। माधव पंडित आदि सभी शिष्यगण भी हमारे साथ वहाँ चलें।

'महाराज !' अभी राय बुक्काराय राजगुरु के द्वारा पहनाये हुए कामदार को ठीक से सँभाल ही रहे थे कि सोमेश्वर सोलंकी ने आगे बढ़कर निवेदन किया, 'राजन् ! प्रस्थान करने के पूर्व आपको एक अभिकरण का न्याय करना है।'

'न्याय ? अभी ?' महाकरणाधिप दादैया सोमैया ने कहा, 'दुर्गपाल, क्या तुम जानते नहीं कि अभी हमें कालमुख विद्याशंकर भगवान और महामंडलेश्वर राय हरिहर की अन्तिम क्रियाएँ सम्पन्न करनी हैं ? जब तक हम इन धार्मिक कृत्यों को नहीं कर लेते कोई सांसारिक कार्य किया नहीं जा सकता।'

'प्रभु !' सोमेश्वर ने कहा, 'मैं जानता हूँ कि कालमुख भगवान और महामंडलेश्वर की अन्तिम क्रियाएँ करना हम सब का पहला कर्तव्य है; और यह जानते हुए भी मैं महाराज से निवेदन करता हूँ कि वह यहाँ से प्रस्थान करने के पूर्व एक अपराधी का न्याय कर अपना निर्णय प्रदान करें। यह नितान्त अनिवार्य है।'

लोगों की समझ में नहीं आया कि दुर्गपाल सोमेश्वर इस समय, जब कि अन्तिम संस्कार प्रथम और प्रमुख कर्तव्य है, न्याय-निर्णय के लिए इतना आग्रह क्यों कर रहा है ? महाराज बुक्काराय को भी उसका यह आग्रह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—दुर्गपालजी, आप यह कभी नहीं चाहेंगे कि मेरे ऊपर यह लाछन लगे कि विजयधर्म-साम्राज्य का महाराज भगवान कालमुख का अन्तिम संस्कार करने से पूर्व एक सामान्य राजकीय व्यवहार में संलग्न हुआ। मैं समझता हूँ कि आप मेरे इस कथन से सहमत होंगे। और क्या फिर भी आपको अभी ही न्याय चाहिए ?

'जी हाँ महाराज !'

'अच्छी बात है तो ऐसा ही हो। अपराध क्या है ? अपराधी कौन है ? और आपको क्या न्याय चाहिए ?'

'महाराज ! अपराध है राजहत्या के प्रयत्न का, गोभूरी का और अपराधी है मेरा ही पुत्र बलदेव।'

यदि सहसा धरती भी फट जाती तो वहाँ उपस्थित लोगों को उतना विस्मय

न होता। आनेगुण्डी के समरकेशरी दुर्गपाल सोमेश्वर सोलंकी के एकाकी पुत्र ने राजहत्या का प्रयत्न किया! अपराधी और कोई नहीं बलदेव है!

राय बुक्काराय सोमेश्वर की ओर देखते ही रह गए। उन्होंने विस्मित होकर पूछा—राजहत्या? तुम्हारा पुत्र? यह तुम क्या कह रहे हो?

'महाराज! आप रात मेरे अरमणे में विश्राम कर रहे थे, उस समय मेरे पुत्र बलदेव ने आपकी हत्या करने का प्रयत्न किया। मेरे पूर्वजों का पुण्यफल कहिए या मेरा या साम्राज्य का सौभाग्य कहिए, वह अपने प्रयत्न में सफल न हो सका। भगवान विद्यातीर्थ प्रभु की मुझ पर बड़ी कृपा हुई कि मैंने अपने पुत्र को उसके प्रयत्न में सफल न होने दिया।'

'रात में? पिछली रात में?' चारों ओर से स्वर सुनाई दिया। 'लेकिन हमें तो कुछ भी पता न चला।'

'रात में किसी को व्यर्थ चिन्ता न हो यह सोचकर मैं चुप रहा, किसी से कुछ न कहा और सारी रात स्वयं महाराज के पलंग का पहरा देता रहा।'

विनय चालुक्य ने तीखे स्वर में पूछा—और वह तुम्हारा पुत्र है कहाँ?

'वह अब मेरा पुत्र नहीं रहा।' सोमेश्वर ने भी उतने ही तीखे स्वर में कहा, 'अब तो वह केवल दुर्गपाल का अपराधी और बन्दी है। और मैंने अपने आभटों को उसे उपस्थित करने का आदेश दिया है।'

और थोड़ी ही देर में बलदेव वहाँ ले आया गया। सब ने पहले बलदेव और फिर सोमेश्वर की ओर देखा तब एक-दूसरे की ओर देखने लगे। अन्त में सबकी दृष्टि महाराज बुक्काराय की ओर गई।

राय बुक्काराय ने कहा—विजयधर्म-साम्राज्य में राय से लेकर विनोद और किरात सभी के लिए विधि-निषेध की व्यवस्था रायरेखा में निर्धारित की गई है। रायरेखा की मर्यादा के अनुसार, विजयधर्मराज्य के अन्तर्गत, सभी प्रदेशों में, रायराया से लेकर किरात तक, सभी कार्यकर्ताओं का न्याय राजगुरु या उनके प्रतिनिधि धर्माधिकारियों के द्वारा ही किया जाना चाहिए। न्याय करने का काम राजगुरु का है और शेष सब अधिकारियों का काम उनके किये हुए न्याय-निर्णय को कार्यान्वित करने का है। इसलिए मैं राजगुरु से निवेदन करता हूँ कि भगवन्, अपराध की फरियाद करनेवाला

यहाँ है और अपराधी भी यहाँ हैं इसलिए आप न्यायदान करें। इस कार्य में हस्तक्षेप करने का अधिकार मुझे, रायराया को, नहीं है।

राजगुरु ने कहा—सोमेश्वर, अपराध और अपराधी का उद्देश्य तो स्पष्ट ही है और उसे अपराध करने से यथासमय रोक भी दिया गया है। ऐसी स्थिति में यदि हम अपने धर्म-कर्म को पहले निपटाकर बाद में न्याय-निर्णय करें तो क्या तुम्हें आपत्ति है ?

'गुरुदेव ! आप धर्म के ज्ञाता और आचार्य हैं। फिर भी मेरी यही प्रार्थना है कि न्याय-निर्णय का कार्य अभी ही सम्पन्न हो जाना चाहिए।'

उदयादित्य यादव यह सुनते ही उत्तेजित हो उठा और बोला—लेकिन तुम बाप-बेटे....परन्तु दूसरे ही क्षण वह यह सोचकर चुप लगा गया कि इस तरह कहना उचित नहीं।

परन्तु सोमेश्वर ने कहा—नहीं उदयादित्यजी, यह प्रश्न केवल बाप-बेटे का नहीं यदि बाप-बेटे का ही प्रश्न होता तो मैंने रात में ही अपने बेटे का वध कर डाला होता। यह प्रश्न तो समस्त विजयधर्मराज्य का है। सीमा पर अवस्थित शत्रु के समक्ष, पहले मोरचे के दुर्गपाल की प्रतिष्ठा और उसके परिवार की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। रायराया पर दबे-छिपे हाथ उठानेवाले प्रत्येक गोभूरी को सचेत करने का यह प्रश्न है। रक्तपात, हत्या और षड्यंत्रों के द्वारा राजसिंहासन की प्राप्ति का कार्य हमने तुरुष्कों को सौंप दिया है; या फिर सौंपा है उत्तरापथ के निर्बुद्धि राजाओं को। दक्षिणापथ में हम ऐसे कुकृत्यों का चित्र भी शेष नहीं रहने देना चाहते। और यह प्रश्न इसी बात के निपटारे का है और हमें यही बात दिखा देना है। अभी कालमुख भगवान का अन्तिम संस्कार नहीं हो पाया है। उनकी पूज्यात्मा पम्पा-मन्दिर में ही भ्रमण कर रही होगी। वह भी इस बात को जान लें, इसी लिए मैं इतना अधीर, और उतावला हो रहा हूँ। रायराया, गुरुदेव, दुर्गपाल और सामन्तवर्ग सभी एक क्षण के लिए विचार करें। मैंने भगवान कालमुख विद्याशंकर की सेवा में अपने जीवन के पूरे सात वर्ष व्यतीत किये हैं। अपना पुरुषार्थ और पराक्रम उनकी तपस्या की पूर्ति में लगा दिया है। और भगवान कालमुख की मृत्यु के बाद उनके अन्तिम संस्कार नहीं होने पाते हैं और मेरा ही पुत्र, राजलोभ के

पाप से प्रेरित होकर, विजयधर्म का द्रोही बन जाता है। इसी लिए मेरी प्रार्थना है कि इस प्रकरण का अभी और यहीं निर्णय किया जाये। हमें यह दिखा देना चाहिए कि विजयधर्म-साम्राज्य पर अधिकार किसी गोभूरी की छुरी में नहीं उसके न्याय-निर्णय में, उसके सामन्तों के धर्म-निर्णय में निहित है। राजगुरु, यदि आपने अभी ही निर्णय नहीं किया तो मेरे कुल के नाम पर कलंक लग जायेगा। लोग भाँति-भाँति के तर्क-वितर्क और कुतर्क करने लगेंगे। कालान्तर में इस कुकृत्य के साथ मेरा नाम भी जोड़ दिया जायेगा। जो भी सुनेगा उसका विश्वास दुर्गपालों और सामन्तों पर से उठ जायेगा और, आज नहीं तो कल, राज्य-लोभ की लोनी इस साम्राज्य की दीवारों में लगकर इसे कमजोर करने लगेगी।

'अच्छी बात है।' राजगुरु ने कहा, 'तुम्हारी बात स्वीकार की जाती है। अपराधी को मेरे सम्मुख उपस्थित करो।'

जब बलदेव सोलंकी को राजगुरु के सम्मुख खड़ा कर दिया गया तो उन्होंने कहा—बलदेव सोलंकी, तुम्हारे ऊपर रायराया की हत्या के प्रयत्न का अभियोग है। यह सच है या झूठ ?

युवक बलदेव ने सभी सभाजनों पर एक दृष्टि डालकर रायराया की ओर देखा। उसके उद्धत और गर्विष्ठ चेहरे पर पहले तिरस्कार दिखाई दिया, फिर उसकी आँखों में ईर्ष्या का दावानल सुलग उठा। उसने बिच्छू के डंक-जैसे स्वर में कहा—अभियोग सच भी है और झूठ भी।

'यह कैसे हो सकता है ? कोई भी बात या तो सच होती है या तो झूठ ? झूठ भी है और सच भी है, यह तो कभी हो नहीं सकता।'

'राजगुरु !' बलदेव ने जरा तीखे स्वर में कहा, 'सच इसलिए है कि जिस बात का प्रयत्न करने की बात कही गई है वह मैंने किया है; लेकिन ऐसा करके मैंने कोई अपराध किया हो यह बात झूठ है।'

'रायराया का वध करना या वध करने का प्रयत्न करना, यह गोभूरी का काम है। और ऐसा अपराध करनेवाले गोभूरी को प्राणदंड दिया जाता है। फिर भी तुम कह रहे हो कि तुमने प्रयत्न किया है, लेकिन वह अपराध नहीं है—यह कैसे ?'

'राजगुरु ! मैंने आपका न्याय सुन लिया। आप मेरा वध करना चाहते हैं न ? तो दीजिए आदेश और समाप्त कीजिए इस प्रकरण को। व्यर्थ न्याय का नाटक क्यों कर रहे हैं ?'

'बलदेव, हमें अभी दूसरे कई महत्वपूर्ण कार्य करने हैं, इसी लिए किसी तरह का नाटक करने की हमारी जरा भी इच्छा नहीं। इस समय हमारे हृदय शोक से उद्विग्न हो रहे हैं, परन्तु फिर भी उद्धत जवानी के अपराध की वार्ता तो हमें शान्तिपूर्वक सुननी ही होगी। यह भूलने से कैसे काम चलेगा कि यह शासन न्याय और नीति का है। मैं तुझसे केवल इतना ही पूछता हूँ कि तू जो करना चाहता था वह गोभूरी कर्म था फिर भी तू उसे अपराध क्यों नहीं मानता ?'

'यदि आप जानना ही चाहते हैं तो सुनिए ! मैं अपने को अपराधी इसलिए नहीं मानता कि मैं तुम्हारे इस रायराया, राजपरमेश्वर, महाराजाधिराज को रायराया स्वीकार नहीं करता।'

'बलदेव, तेरे स्वीकार करने या न करने से इसलिए अन्तर नहीं पड़ता कि इसमें तेरी स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भी क्या तू यह बता सकता है कि तू बुक्काराय को रायराया क्यों नहीं मानता ? नहीं मानने का तेरे पास क्या कारण है ?'

'कारण ? कारण यही है कि रायराया बनने के उपयुक्त यदि कोई है तो वह मैं हूँ। मैं ही उसका वास्तविक अधिकारी हूँ। मेरा पिता मूर्ख हो सकता है पर मैं मूर्ख नहीं। एक गड़रिये का छोकरा धतूरे का रस पीकर उन्मत्त अवस्था में प्रलाप करने लगे और जंगल में तप करनेवाला एक जोगीड़ा बहकावे में आ जाये तो क्या मुझे भी आ जाना चाहिए ? कदापि नहीं। आनेगुण्डी का राज्य मेरा है। उसका राजा मैं हूँ। मेरे पिता ने अतुलित पराक्रम करके इस सीमा को तुरुष्कों से सुरक्षित और तुरुष्क-विहीन किया है। यह साम्राज्य उसी का है। तलवार के जोर से उसने इसे हस्तगत किया है; और राजपूत तलवार के सिवाय दूसरी किसी बात को नहीं जानता। तलवार ही राजपूत का न्याय है, लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि मेरा पिता जितना वीर है उतना ही मूर्ख भी है। वह अपने अधिकार को छोड़ सकता है,

तिलांजली दे सकता है; लेकिन मैं, उसका उत्तराधिकारी, ऐसा कदापि नहीं कर सकता। इस कावेरी और तुंगभद्रा के बीच का आसमुद्रपर्यन्त यह जो प्रदेश है उसमें केवल सोलंकी कुल ही सब में पुरातन है। शेष सभी सामन्त और दुर्गपाल अर्वाचीन और सोलंकी कुल के बाद के हैं। सोलंकी की तलवार की काट और सोलंकी का प्रताप भी प्रसिद्ध है। एक समय था जब सोलंकियों की तलवार ने मालवा और गुजरात में भी अपना साम्राज्य स्थापित किया था। इस प्रदेश में राज्य का अधिकारी यदि कोई हो सकता है तो वह सोलंकी ही है और सोलंकियों में भी यदि कोई अधिकारी हो सकता है तो वह मैं हूँ। सत्तर पीढ़ियों से हमारा कुल दक्षिणापथ के किसी-न-किसी प्रदेश पर शासन करता आ रहा है। ऐसे कुल का मैं उत्तराधिकारी हूँ। क्या मैं ऐसे नाम-गोत्रहीन व्यक्ति का, जिसे अपने दादा का भी नाम नहीं मालूम, जो जाति से गड़रिया और पेशे से कुरुबा है और अपने को यादव कहता है, अधिकार मंजूर कर लूँ? कदापि नहीं। मैं गोभूरी नहीं। मैंने कोई अपराध नहीं किया। क्योंकि मैं इस गड़रिये को रायराया मानता ही नहीं।'

राजगुरु पंडित आर्यभद्रदेव की मुखमुद्रा कठोर हो गई और उन्होंने कहा—सोमेश्वर सोलंकी, तुम्हें कुछ कहना है?

'जी! मुझे कुछ भी नहीं कहना है। मैं अपने अथवा अपने इस पुत्र के लिए दया की भीख नहीं माँगता। रात में जब यह पकड़ा गया तो इसके कुकृत्य के बारे में मेरे दो-एक विश्वस्त अनुचरों और आभटों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। मैं चाहता तो उसी समय इसे इसके दुष्कृत्यों के लिए दंड दे सकता था, लेकिन मैंने ऐसा करना उचित नहीं समझा और इसे धर्मासन के समक्ष स्वयं ही उपस्थित किया। मैं तो केवल न्याय चाहता हूँ। सोलंकी कुल अपनी स्वामिभक्ति और निष्ठा के लिए सदैव प्रसिद्ध रहा है। आज से पहले इस कुल में किसी ने धर्मशासन के प्रति विश्वासघात नहीं किया। आज से पहले मेरे किसी भी पूर्वज ने अपने कर्तव्य से अधिक अपने अधिकार को नहीं माना। सोमेश्वर सोलंकी ने विजयधर्म-साम्राज्य के शासन को स्वीकार किया है—अपने लिए और अपने समस्त उत्तराधिकारियों के लिए। मैं जानता हूँ कि आज सोलंकी कुल की सत्तर पीढ़ियों की परम्परा

समाप्त हो जायेगी, हो ही गई है, क्योंकि सोलंकियों के कुल में कोई गोभूरी होता ही नहीं। वंश चलते रहने की मुझे कोई आकांक्षा नहीं। अपने सब साथियों के साथ जिसे मैंने अपने जीवन और मरण के रूप में स्वीकार किया है वही विजयधर्म मेरा जीवन, मेरी मृत्यु, और मेरी वंश-परम्परा है। मेरे पुत्र का अपराध अक्षम्य है। ऐसा अपराध करनेवाला मेरा पुत्र रह ही नहीं सकता। राजगुरु, आप धर्माधिकारी के स्थान पर विराजमान हैं। आप मेरे कुल के प्रति, मेरे पराक्रम के प्रति, मेरे पूर्वजों के प्रति, और भगवान काल-मुख की आत्मा के प्रति न्याय करें। हमारी विजय तो तभी हो सकती है जब कोई विजयधर्मी अपने इकलौते पुत्र का भी अपराध और अन्याय सहन न करे। मैं यही चाहता हूँ कि आप बलदेव सोलंकी को प्राणदंड दें।'

६. गोभूरी को प्राणदंड

धर्माधिकारी के पद पर विराजमान राजगुरु ने निरुद्वेग स्वर में पूछा—यहाँ उपस्थित दुर्गपालों, सामन्तों, नायकों, दंडनायकों, रायसों, ब्राह्मणों, पंडितों, आभटों और परिवारजनों को इस अपराधी के पक्ष अथवा विपक्ष में, विरोध अथवा समर्थन में, जो भी कहना हो कह सकते हैं। कहना हो तो यहीं कहें अथवा जीवन-भर के लिए मौन धारण करें!

यह सुनकर चन्द्रगुटी का दुर्गपाल विनय चालुक्य उठकर खड़ा हुआ और बोला—भगवन्, मेरी एक विज्ञापना है।

'कहो।'

'समस्त दुर्गपाल-मंडल और समस्त सैनिक-मंडल की ओर से मैं अपराधी को प्राणदंड दिये जाने की प्रार्थना करता हूँ।'

धर्माधिकारी ने हाथ ऊँचा करके विनय चालुक्य को रोकते हुए कहा—अभी तो अपराधी के अपराध की छान-बीन हो रही है। इस समय किसी का अभिप्राय सुनने का अवसर नहीं। अभी तो अपराधी के समर्थन अथवा विरोध में यदि तुम्हें कुछ कहना हो तो कह सकते हो। न्यायासन पर बैठने के बाद अपराधी का न्याय-निर्णय करने में धर्माधिकारी किसी दुर्गपाल, सामन्त अथवा

रायस का अभिप्राय नहीं सुना करते। दुर्गपाल विनय चालुक्य, यदि अपराधी के साथ तुम्हारा कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो तो तुम उसके बारे में अवश्य कुछ कह सकते हो।

'जी हाँ, मेरा अपराधी के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।' विनय चालुक्य ने गम्भीर स्वर में कहना शुरू किया, 'सोमेश्वर और मैं दोनो ही सोलंकी हैं। हम दोनो के मूलपुरुष एक ही थे। हमारे दोनों कुलों के बीच वर्षों से विवाह भी होते आये हैं। इस समय सोमेश्वर सोलंकी के घर में जो सती है वह मेरी बहिन होती है। बलदेव मेरा भाञ्जा हुआ और हमारी पारिवारिक परम्परा के अनुसार बलदेव सोलंकी के साथ मैंने अपनी पुत्री का वाग्दान भी किया है, जिसकी विधि आगामी महानवमी को सम्पन्न करने का निश्चय किया गया है। यदि भगवान कालमुख का आदेश मानकर हमें यहाँ आना न होता तो यह सम्बन्ध अक्षयतृतीया के दिन ही सम्पन्न हो जाता। इस प्रकार अपराधी और अपराध के साथ मेरा प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और मैं अपराधी का मातुल, उसके पिता के साथ पूर्णतः सहमत होता हुआ, अपराधी के लिए प्राणदंड की याचना करता हूँ।'

'भगवन्! अपने इकलौते बेटे के अक्षम्य अपराध के लिए मेरे बहनोई ने प्राणदंड की जो याचना की है उसका समर्थन करते हुए मैं अपने बहनोई की सराहना करता हूँ।'

'मैं, चन्द्रगुटी का दुर्गपाल, विजयधर्मराज्य के समस्त दुर्गपालों का प्रतिनिधि हूँ। मैं प्रार्थना करता हूँ कि अपराधी को प्राणदंड दिया जाये। इस धर्मासन के पीछे राय हरिहर का कठोर तप है। उस महापुरुष ने अपने क्षात्र-स्वभाभ, क्षात्रतेज और क्षात्रधर्म के साथ अपनी तलवार को म्यान में रखकर कठोर संयम से केवल रायरेखा की ही आराधना की है। अनेक सम्प्रदायों और अनेक भाषाओं में विभक्त इस भूमि को एकचित्त और एकमन करके एकराष्ट्र का निर्माण करने के लिए वह नरपुंगव तपोनिष्ट ब्राह्मण बनकर इस प्रदेश के गाँव-गाँव में घूमा और हर जगह उसने सम्पत्तिवालों से सम्पत्तिदान और अधिकारियों से अधिकार-दान माँगा और अपनी भिक्षा के कमंडलु से राष्ट्र का निर्माण किया। उन्हीं के सत् प्रयत्नों से दक्षिणापथ का

एक-एक वासी अपने प्रदेश के लिए ममत्व और अपनत्व का अनुभव करने लगा। उस अपनत्व और ममत्व की माँग है कि रायरेखा के प्रदेश में एक भी सामन्त, एक भी दुर्गपाल, एक भी रायस, एक भी देश्य, एक भी नायक और एक भी दंडनायक ऐसा न हो जिस पर कोई भी अविश्वास करे। भगवन्, सभी जानते हैं कि राय हरिहर ने चन्द्रगुटी का दुर्ग मुझे सौंपा है। न करें नारायण, लेकिन कभी विधि वाम ही हुआ तो मेरा वह दुर्ग हमारे राष्ट्र का अन्तिम प्राणाधार होगा। समूचे राष्ट्र के लिए वह दुर्ग अन्तिम सहारा बनकर खड़ा रहेगा। सबके संयुक्त संयम और पुरुषार्थ का प्रतीक वह विजयधर्म-साम्राज्य का शेषनाग बना हुआ है और बना रहेगा। ऐसे दुर्ग का मैं दुर्गपाल हूँ। यदि किसी को जरा भी आशंका हुई कि मुझ में, मेरे किसी स्वजन या आत्मजन में राज्य का लोभ उत्पन्न हो गया है तो मेरे उस दुर्ग का महत्व समाप्त हो जायेगा और शक्ति नष्ट हो जायेगी। एक बात और है। यदि तुरुष्कों को पता चल गया कि हमारे दुर्गों में गोभूरी होते हैं तो वे उन्हें ढूँढ़ने और उनसे लाभ उठाने का प्रयत्न प्रारम्भ कर देंगे और प्रत्येक दुर्ग में किसी सुन्दर पांड्य अथवा बलदेव को खोजना आरम्भ कर दिया जायेगा। इसलिए ऐसे अपराध का दंड तो अवश्य ही अत्यधिक कठोर होना चाहिए। और अपराधी जितना ही उच्चपदस्थ हो दंड भी उतना ही कड़ा होना चाहिए। भगवन्, अपराधी के मामा के रूप में और चन्द्रगुटी के दुर्गपाल के रूप में समस्त दुर्गपाल-मडल की ओर से मैं अपराधी को प्राणदंड दिये जाने की माँग करता हूँ।'

'और मैं अपने भाई के लिए दया की भीख माँगती हूँ।' यह कहती हुई अठारह-बीस वर्ष की एक किशोरी वहाँ आ खड़ी हुई। सहसा सब का ध्यान पुरुषों की रूखी और कर्कश आवाज के बीच सुनाई दिये उस नारी के कोमल कण्ठ की ओर आकर्षित हो गया। लम्बे कद और छरहरे बदनवाली इस कन्या के मुख पर अभी बचपन की कमनीयता शेष थी। सहसा पुरुष-समाज के बीच चले आने की लज्जा से उसका मुखमंडल आरक्त हो उठा था। लेकिन लज्जा के कारण वह अपने निश्चय से डिगकर लौटेगी नहीं, ऐसा आभास उसकी सुडौल देहयष्टि से हो रहा था। उसने अपने शरीर पर बिलकुल

सादा बदन पहन रखा था। बदन पर लाल रंग का उपरिवस्त्र था। दोनो हाथों में सोने की चूड़ियाँ और कपाल में टीका था। पाँवों में विद्युत्‌रेखा-जैसे चमकते नुपुर थे, जिनमें गँठे घुँघरू रुनझुन कर बज उठते थे। यह निर्णय करना कठिन था कि दोनो मे कौन अधिक रुपहला है—उसका कण्ठ-स्वर या नूपुरों की झनकार ?

पुरुष-समाज के मध्य उसका आगमन इस तरह था मानो गर्जन-तर्जन करते घटाटोप बादलों को चीरकर चन्द्रलेखा उग आई हो। एक क्षण तो सब-के-सब विस्मित होकर उसकी ओर देखते रह गए।

वह राजगुरु के धर्मासन के समक्ष आकर खड़ी हो गई और दृढ़ स्वर में बोली—भगवन्, मैं अपने भाई के लिए क्षमा-याचना करने आई हूँ।

'सोना !' बलदेव ने तीक्ष्ण स्वर में लगभग चीखते हुए कहा, 'सोना, तू यहाँ क्यों आई ? यहाँ आना सोलंकी की राजकन्या के उपयुक्त नहीं; और मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? तू मेरे लिए दया की भीख माँग रही है ? जा, लौट जा, सोना, तत्काल लौट जा ! मैं किसी की दया नहीं चाहता।'

'सोना !' सोमेश्वर सोलंकी ने कठोर स्वर में कहा, 'लौट जा। यहाँ तेरी कोई आवश्यकता नहीं। यहाँ तेरे देखने अथवा कहने-जैसा कुछ भी नहीं है। जानती नहीं, यह भगवान कालमुख के विजयधर्मराज्य का, भगवान विरूपाक्ष-देव के साम्राज्य का धर्मासन है। यहाँ केवल न्याय होता है, दया नहीं दिखाई जाती।'

'क्या तुम्हारे विजयधर्मराज्य में दया और क्षमा के लिए कोई स्थान ही नहीं ? भगवान् विरूपाक्ष के साम्राज्य में—भगवान के चरणों में तो रावण और बाणासुर, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु-जैसे असुरों और म्लेच्छों को भी दया मिलती आई है। क्या अब भगवान विरूपाक्ष के नाम पर चलाए जानेवाले साम्राज्य से दया निःशेष ही हो गई है ?'

धर्माधिकारी ने बिलकुल निरुद्वेग, शान्त स्वर में केवल इतना ही कहा—किशोरी, तुम्हें अपराधी के समर्थन या विपक्ष में कुछ कहना है ?

'जी, कहना तो बहुत-कुछ है, परन्तु क्या आप सुनेंगे ? मेरे पिताजी ने राज्य की जो सेवाएँ कीं उसके बदले में क्या आप उन्हें निरवंश ही कर देंगे ?'

'न्यायासन के समक्ष, न्याय के आसन से भूतकाल में किये गए कार्यों का पुरस्कार नहीं माँगा जाता।'

'एक मनुष्य से भूल हो गई। क्या उसे अपनी भूल सुधारने का अवसर भी नहीं दिया जायेगा?'

'भूल और मेरी?' बलदेव ने कहा, 'इस नादान लड़की की बात पर ध्यान देना उचित नहीं। मैं न दया माँगता हूँ न क्षमा; और न अपनी भूल ही स्वीकार करता हूँ। प्रथम तो मैं भूल मानता ही नहीं और यदि वह हुई भी है तो उसे सुधारना नहीं चाहता। मैं तो अपनी सात पीढ़ियों की परम्परा पर दृढ़तापूर्वक खड़ा हूँ। जब तक दक्षिणापथ में अति प्राचीन और सनातन गौरव से पूर्ण सोलंकी कुल है और उस कुल का एक भी व्यक्ति जीवित है तब तक उस प्रदेश में दूसरा कोई भी राजा या राजराजेश्वर नहीं हो सकता। जो ऐसा करते हैं वे मेरी कुल-परम्परा के द्रोही और अपराधी हैं। अभी मैं तुम्हारा बन्दी हूँ। तुम कई हो और मैं अकेला हूँ। विजयधर्म और दक्षिणापथ की परम्परा के अनुसार यदि मैं चाहूँ तो तुमसे आभीर (द्वन्द्व-युद्ध) माँग सकता हूँ, परन्तु मुझे विश्वास है कि माँगने पर भी तुम उसे स्वीकार नहीं करोगे। कह दोगे कि न्यायासन से आभीर माँगा नही जा सकता; क्योंकि तुम सब कायर हो और बलदेव की तलवार की काट से डरते हो। मुझे इसका कोई दुःख नहीं। राज्य प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करना, सफल हो जाने पर कुल-रीत्यानुसार शासन करना और असफल होने पर हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करना, यह तो क्षत्रियों की रीति ही रही है। सोना, तुम जाओ। यह मत भूलो कि तुम एक कायर पिता की पुत्री होते हुए भी सोलंकी राजवंश की कन्या हो। सोलंकी कभी किसी से भीख नहीं माँगता। उसे जो लेना होता है तलवार के जोर से लेता है, नहीं तो हँसते-हँसते अपने हाथों सिर उतारकर दे देता है। भीख माँगकर मेरा अन्तःकाल क्यों बिगाड़ती है बहिन? मेरे लिए क्या यही शोक थोड़ा है कि मैं एक कायर पिता और मूर्ख बाप का बेटा हूँ! ऊपर से तू एक कायर राजकन्या का भाई बनने का दुःख और क्यों बढ़ा रही है? जा, लौटकर चली जा बहिन।'

'नहीं, मैं, सोलंकी-वंश की राजकन्या, अपने भाई, अपने मामा, अपने पिता, अपनी माता और इस वीर सभा के यहाँ उपस्थित सभी सदस्यों से असहमत होकर राजगुरु के धर्मासन के समक्ष आँचल फैलाकर भीख माँगती हूँ, दया और क्षमा माँगती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि मेरे भाई को छोड़ दिया जाये। आपने देश में राष्ट्रभक्ति और राष्ट्र की सेवा के लिए सर्वस्व समर्पित करने का जो वातावरण निर्मित किया है क्या उससे मेरा भाई कभी प्रभावित होगा ही नहीं ? आज नहीं हो रहा, परन्तु कल तो वह प्रभावित हो ही सकता है। उसने राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु क्या यह क्षत्रियों का स्वभाव नहीं ? मानव-स्वभाव की स्वाभाविक दुर्बलता के वश में होकर एक वीर पुरुष ने क्षणिक आवेश में कुछ अनुचित कार्य कर डाला, तो उससे प्राणदंड देना कहाँ का न्याय है ? आपने जो वातावरण निर्मित किया है उसे दक्षिणापथ के सभी निवासी, यहाँ तक कि होलेय और पालेर, किरात और शम्बूर भी प्रभावित हुए हैं। तो क्या वह वातावरण इतना दुर्बल है कि मेरे भाई को कभी अनुप्राणित कर ही नहीं सकता ? क्या आप ऐसा ही समझते हैं ? जरा मेरे मामा की ओर देखिए, मेरे पिता की ओर देखिए। भगवान कालमुख के आदेश से धतूरे के पत्ते पीस-पीसकर घायल हुए मेरे इन हाथों की ओर देखिए।' और सोना ने अपने दोनो हाथ सामने की ओर फैला दिये। सच ही उसके दोनो हाथों की हथेलियाँ क्षत-विक्षत हो रही थीं।

सोना ने आगे कहा—जिस उमंग, उत्साह और आनन्द से हम मा-बेटी ने इतने सारे आगन्तुकों के स्वागत-सत्कार का प्रबन्ध किया, उस आतिथ्य की ओर देखिए। हमारे दुर्ग, हमारे आभट और हमारे पांचालों और पंचकारकों की ओर देखिए। जिस वातावरण से आनेगुण्डी का प्रत्येक व्यक्ति अनुप्राणित हो रहा है, क्या वह एक नादान युवक को कभी प्रभावित नहीं कर सकता ? भूल करना मनुष्य का स्वभाव है। यदि उसे प्रायश्चित करने का अवसर दिया जाये तो वह कभी देवता भी बन सकता है। लेकिन यदि उसे भूल सुधारने का अवसर ही नहीं दिया जाये तो वह सिवाय म्लेच्छ बनने के और क्या करेगा ? धर्मासन क्या इतना दुर्बल है कि दया कर ही नहीं सकता ? क्या तुम्हारा धर्म इतना निर्बल है कि एक आदमी को क्षमा

भी नहीं कर सकता ? मैं आँचल फैलाये आप सब से दया की भीख माँग रही हूँ। क्या इतने वीरवर मुझे दया का दान भी नहीं दे सकते ?

'नहीं !' बलदेव ने कहा, 'क्योंकि मुझे दया नहीं चाहिए। दया किस लिए ? सोना, तू सोलंकियों की राजकन्या होकर एक गड़रिये से, एक कुरुबा के राजसिंहासन से दया की भीख माँगती है ? इससे अच्छा तो यह होता कि कहीं डूब मरती। इतनी विशाल तुंगभद्रा क्या तुझे दिखाई नहीं दी ? मैं कहता हूँ, तू यहाँ से इसी समय चली जा।'

'राजगुरु !' सोना ने भूमि पर गिरकर साष्टांग दंडवत करते हुए कहा, 'राजगुरु, आप तो जैन दर्शन के समर्थ सिद्धान्तवेत्ता और अरहन्त समय (सम्प्रदाय) के महान आचार्य हैं। जैन सिद्धान्तों के आप सर्वज्ञ पंडित हैं। हिंसा का विचार तक कभी आपके मन में उत्पन्न नहीं होता। तो क्या आप अपनी जीभ से एक मनुष्य की मृत्यु का आदेश प्रदान करेंगे ?'

'सोलंकी कुमारी !' राजगुरु ने अत्यन्त शान्त और उद्वेगहीन स्वर में कहा, 'तुम कन्या हो और भोली-भाली कन्या हो, इसलिए तुम्हारी ऐसी बहुत-सी बातें, जो नहीं सुनना चाहिए थीं, मैंने सुनीं; परन्तु तुम्हारी अन्तिम बात तो मैं भी नहीं सुन सकता। राजगुरु और धर्माधिकारी का कोई समय, कोई सम्प्रदाय नहीं होता। राजगुरु राष्ट्र का गुरु होता है और वह राष्ट्र के धर्म की धुरा का वहन करता है; दूसरा कोई धर्म उसके लिए नहीं होता। तुझे यदि और कुछ कहना हो तो कह।'

सोना यहाँ आई तब उसे यह विश्वास था कि अपने भाई के लिए दया की उसकी प्रार्थना को सभाजन अविलम्ब स्वीकार कर लेंगे; लेकिन राजगुरु का चेहरा और साथ ही वहाँ उपस्थित अन्य सभी लोगों के चेहरे तो कुछ और ही कह रहे थे। उसे कोई भी दया दिखाने के लिए उद्यत होता प्रतीत नहीं हुआ। वह निराश हो गई और दोनो हाथों से अपनी आँखें ढँककर खड़ी रही। यहाँ तक कि उसकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ बह चलीं और आँसू अँगुलियों के बीच से टपाटप गिरने भी लगे। बलदेव ने अपनी बहिन के पास जाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु आभटों ने उसे एक कदम भी नहीं हिलने दिया। तब विनय चालुक्य आगे बढ़ा और सोना को स्नेहपूर्वक उठाकर

बोला—जा बेटी, भाई के प्रति तूने अपनी ममता का दिग्दर्शन किया। अब यह भी दिखा दे कि सोलंकी-वंश की राजकन्या भयंकर-से-भयंकर आघात को कैसे सह सकती है। जा, अन्दर चली जा।

सोना अपने मामा से लिपटकर सिसक उठी।

ठीक उसी समय राजगुरु का शान्त, निराकुल, आवेशहीन स्वर सुनाई दिया। उन्होंने व्यवस्था दी—अपराधी बलदेव गोभूरी के रूप में वध का पात्र है। किसी भी शास्त्र और किसी भी समय में आततायी के वध का निषेध नहीं। धर्मासन अपराधी को प्राणदंड दिये जाने का आदेश प्रदान करता है। आनेगुण्डी के दुर्गपाल सोमेश्वर सोलंकी को यह आज्ञा दी जाती है कि वह अपराधी के दंड को शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित करने की व्यवस्था करें।

यह सुनते ही सोना जोर से चीख उठी। अपने मामा के कन्धे पर उसका मस्तक इस तरह टिक गया मानो पाषाण में से कोई प्रतिमा उत्कीर्ण कर दी गई हो। सोमेश्वर वैसा ही उग्र, कठोर और भावहीन खड़ा था।

अपराधी का न्याय-निर्णय सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोगों पर उसकी बड़ी विचित्र प्रतिक्रिया हुई। इस सम्बन्ध में तो किसी की दो राय नहीं थी कि अपराधी को जो दंड दिया गया वह सर्वथा उचित ही था। लेकिन सब यही सोच रहे थे कि अपराधी के दंड के कारण दुर्गपाल बेचारा अनायास ही मारा जा रहा है।

अपराधी दंडनीय था, वध्य था, विजयधर्म के लिए वह लांछन था, भगवान कालमुख के पूजनीय नाम पर वह कलंकवत था और राय हरिहर के पुरुषार्थ का तो वह विनाशक ही था। महामंडलेश्वर ने सहस्रों वर्षों से चले आते पारस्परिक मतभेदों का अन्त करके जिस एकता का निर्माण किया था, जो नई श्रद्धा, नई मर्यादा और नई नीति स्थापित की थी, अपराधी ने आज उसी नीति और मर्यादा को भंग किया था। उसका अपराध ऐसा था कि कोई भी उसे क्षमा नहीं कर सकता था। उसका वध तो होना ही चाहिए। धर्मासन ने उचित ही न्याय-निर्णय किया था। परन्तु उसके बाप और बहिन ने तो कोई अपराध नहीं किया था। वे दोनो इस न्याय-निर्णय के द्वारा व्यर्थ ही लज्जित और दंडित हो रहे थे। अपराधी न होते हुए भी उन्हें कठोर दंड

मिल रहा था। यही स्थिति चन्द्रगुटी के दुर्गपाल विनयादित्य चालुक्य की भी थी। यह सच है कि उसकी पुत्री अपराधी बलदेव के साथ विवाहित होने से बच गई थी, परन्तु अपने भांजे के मृत्युदंड से प्रभावित तो वह भी हुआ ही था, यद्यपि स्वयं उसने कोई अपराध नहीं किया था।

इस प्रकार अपराधी के लिए कठोरता और उसके कुटुम्बियों के लिए कोमलता का अनुभव करते हुए सब-के-सब असमंजस में खड़े थे। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि इस समय क्या कहना उचित होगा। सब चुप खड़े अपने ओठ चबा रहे थे। तभी माधव पंडित ने, जो रायराया बुक्काराय के समीप खड़ा था, कुछ आगे बढ़कर कहा—धर्मासन ने मृत्युदंड प्रदान किया और अब धर्मासन का विसर्जन हुआ। इस पृथ्वी के निवासियों में तो अब ऐसा कोई रहा ही नहीं जिसके समक्ष अपराधी अपने दंड के विरुद्ध निवेदन कर सके। हाँ, वह यदि चाहे तो विजयधर्म-साम्राज्य के अधिष्टाता भगवान पम्पापति विरूपाक्ष के समक्ष दया की प्रार्थना कर सकता है। और राज-राजेश्वर रायराया बुक्काराय भगवान विरूपाक्षदेव के प्रतिनिधि के रूप में अपराधी की दया-प्रार्थना पर इस तरह अन्तिम निर्णय दे सकते हैं कि जिसमें धर्मासन और धर्मासन-द्वारा प्रदत्त दंड की महत्ता और गौरव घटने न पाये और सकल वर्णाश्रम धर्मों के मांगल्य की रक्षा हो सके। सब धर्मों और सब सम्प्रदायों की यही परम्परा है। रायरेखा की भी यही नीति और मर्यादा है। भगवान विरूपाक्षदेव की जय हो! सकलवर्णाश्रमधर्मपरिपालिसातु भगवान विरूपाक्षदेव के प्रतिनिधि राजराजेश्वर रायराया महाराज बुक्काराय की जय हो!

यह सुनते ही रायराया बुक्काराय अपने आसन से उठ खड़े हुए और उन्होंने आतुर स्वर में पूछा—माधव पंडित, क्या यह सच है?

फिर उन्होंने राजगुरु के समक्ष आकर दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए पूछा—भगवन्, गुरुदेव, माधव पंडित ने जो कहा क्या वह सच है?

'माधव पंडित ने यथार्थ ही कहा है। धर्मासन का गौरव खंडित न हो, साथ ही दूसरे इस प्रकार का अपराध करने को प्रेरित न हों, इस भाँति,

भगवान विरूपाक्ष के प्रतिनिधि के रूप में, रायराया राजेश्वर को, धर्मासन के आदेश को, इस प्रकार का कोई अन्य अपराध न हो तब तक, परिवर्तित करने का अधिकार है।'

'यदि ऐसी बात है तो मैं अपराधी की दया-प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करूँगा। कहो बलदेव सोलंकी, तुम्हें क्या कहना है ?'

'जो पहले कह चुका हूँ उसके अतिरिक्त मुझे और कुछ भी नहीं कहना है और न उसमें मैं एक शब्द ही कम करना चाहता हूँ। तुम सब, दुर्भाग्य से मेरे पिता और मामा सहित, एक ओर हो, संख्या में अधिक हो और मैं अकेला हूँ। दक्षिणापथ की परम्परा के अनुसार मैं द्वन्द्व-युद्ध की माँग कर सकता हूँ। परन्तु जानता हूँ कि तुम उसे स्वीकार नहीं करोगे। तुम्हारे धर्मासन ने जो न्याय किया है मैं तो उसे भी स्वीकार नहीं करता। जानता हूँ कि तुम मेरा वध करना चाहते हो और करोगे। परन्तु मैं किसी गड़रिये अथवा कुरुबा से क्षमा या दया की भीख नहीं माँगूँगा। मुझे मौत का कोई डर नहीं।'

अपराधी के इस औद्धत्य को देखकर सब-के-सब चकित रह गए। माधव पंडित ने एक ऐसा मार्ग खोज निकाला था जो धर्मासन के गौरव की रक्षा करने के साथ सोमेश्वर सोलंकी के सम्मान की रक्षा करनेवाला भी था; परन्तु उद्दण्ड अपराधी अभी भी अपने अविवेक और अहंकार में पड़ा हुआ था। यदि उसकी भाँति सभी पुरातन राजपरिवार राज्यलोभ से प्रेरित होकर इस प्रकार के कुकृत्य और दुष्प्रयत्न करने लगें तो रायरेखा की मर्यादा कहाँ रह जायेगी! तब तो सप्तसामन्तचक्रचूड़ामणियों के समय की अशान्ति, अविश्वास और अस्थिरता ही लौट आयेगी और तुरुष्कों के लिए दक्षिणापथ के द्वार अनायास ही खुल जायेंगे। अपराधी अपना अपराध स्वीकार कर लेता तब भी एक बात थी, परन्तु वह उद्धत तो अपने अपराध को अपराध ही नहीं मान रहा था। ऐसे काले नाग का तो वध ही भला!

इतने में रायराया बुक्काराय ने कहा—जिसका अपराध धर्मासन के समक्ष प्रमाणित हो चुका है वह अपने मुँह से पक्ष या विपक्ष में कुछ भी कहे, इससे

कोई बात बनती-बिगड़ती नहीं और न उसका ऐसा कथन विचारणीय ही हो सकता है !

यह कहकर रायराया एक क्षण के लिए रुके और सबने यही सोचा कि उन्होंने धर्मासन के निर्णय को स्वीकार कर लिया है, लेकिन दूसरे ही क्षण रायराया सोना के निकट आये और बड़ी भावुकतापूर्ण वाणी में उन्होंने कहा—सोलंकियों की राजकन्या, तुम्हारी प्रार्थना भगवान विरूपाक्षदेव को स्वीकार है। भगवान के प्रतिनिधि के रूप में मैं तुम्हारे भाई बलदेव सोलंकी को, वह गोभूरी का दूसरा अपराध न करे तब तक के लिए बन्धन-मुक्त करता हूँ। सोमेश्वर दुर्गपाल, अब आप अपनी कन्या से कहिए कि वह निश्चिन्त होकर अन्तःपुर में जाये। दुर्गपाल, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि धर्मासन ने जो निर्णय किया है उसका पालन करना हम सब का धर्म है। बलदेव सोलंकी को आज सायंकाल से पहले विजयधर्म-साम्राज्य की सीमा से निष्कासित कर धर्मासन के आदेश को कार्यान्वित किया जाये।

सुनकर सभी ने सन्तोष और मुक्ति की साँस ली। लोगों को यह आशंका हो गई थी कि माधव पंडित के द्वारा क्षमा प्रदान करने का मार्ग सुझाये जाने के बाद भी रायराया अपनी ही हत्या करने का प्रयत्न करनेवाले को क्षमा नहीं करेंगे। किसी-किसी को यह भी आशंका हो रही थी कि रायराया क्षमा कर देंगे और इस प्रकार धर्मासन के गौरव को क्षति पहुँचेगी। इसलिए सभी को यह देखकर प्रसन्नता हुई कि रायराया ने अपराधी को क्षमा भी किया, धर्मासन के गौरव को क्षति भी नहीं पहुँचने दी और अपराधी को, सौम्य परन्तु स्पष्ट शब्दों में, निर्वासित करने का आदेश प्रदान कर दंडित भी किया। इस दंड के द्वारा सोमेश्वर सोलंकी के सम्मान की रक्षा भी हो गई।

सोना सुनकर क्षण-भर रायराया की ओर देखती ही रह गई, मानो जो सुना उस पर उसे विश्वास नहीं हुआ। फिर वह रायराया के चरणों में गिर पड़ी और बोली—राजराजेश्वर, आपका यश अमर हो !

रायराया का आदेश होते ही आभटों ने बलदेव को मुक्त कर दिया। वह छलाँग मारकर उनके सामने आ खड़ा हुआ और एक क्षण विष-बुझी दृष्टि से रायराया को देखता रहा, फिर झुँझलाये हुए साँप की भाँति फुफकारकर

बोला—हम फिर मिलेंगे रायराया, और उस बार मैं यह सावधानी रखूँगा कि तुम्हारे और मेरे बीच कोई दुर्गपाल और धर्माधिकारी न हो।

फिर उसने सोना का हाथ पकड़कर उसे पाशविक् शक्ति से झकझोरकर खड़ा करते हुए कहा—उठ सोना, तू मेरी बहिन है या नहीं? सोलंकी राज-कन्या होते हुए भी एक गड़रिये के लड़के के पाँव छूते तुझे लज्जा नहीं आती?

तलवार की धार-जैसे उसके इन शब्दों को सुनकर किसी के चेहरे पर ग्लानि तो किसी के चेहरे पर रोष की वह्नि सुलग उठी। सोमेश्वर सोलंकी का चेहरा राख की तरह हो गया और उसने अपनी तलवार को म्यान से बाहर खींच निकाला।

राय बुक्काराय ने बीच-बचाव करते हुए कहा—दुर्गपाल, शान्त हो जाओ! जिस तलवार ने विजयधर्म के गौरव को ठेठ दिल्ली के सुल्तान के यमुना-तटस्थित महल तक गुँजा दिया है अपनी उस तलवार को म्यान में करो। उसे निकालने के अभी कई अवसर आयेंगे। और अभी म्यान में कर लेने से तुम्हारी यह तलवार लज्जित भी नहीं होगी। अभी तो भाई-बहिन और मा-बेटे को मिल लेने दो। इस बीच हमें भगवान कालमुख के समाधिस्थल पर जाना है; उसी की तैयारी की जाये।

अब महाकरणाधिप प्रज्ञाचक्षु दादैया सोमैया ने कहा—भगवान पम्पापति विरूपाक्षदेव ने मुझ पर बड़ी दया और बड़ा उपकार किया। रायराया, मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आपके हाथों विजयधर्मराज्य का गौरव दिगंतव्यापी हो!

'गड़रिया कहीं का! भगवान विरूपाक्षदेव को भी दूसरा कोई सकल-वर्णाश्रमधर्मपरिपालक नहीं मिला! खोजा भी तो एक कुरुबा! वाह रे भगवान और वाह रे रायराया।' बलदेव कह उठा।

'भाई, अब तो चुप हो जा।' सोना ने चिल्लाकर कहा, 'चल माताजी के पास।' और वह उसे घसीटती हुई ले चली।

उसकी ओर पीठ करते हुए रायराया ने कहा—सोमेश्वर दुर्गपाल, हमारे श्रीमुख के आदेश को कार्यान्वित करने के लिए आपके पास सायंकाल तक

का समय है, फिर इतने अधीर क्यों हो रहे हैं ? भाई यदि बहिन के निकट और पुत्र माता के निकट मुक्तमन होकर बात नहीं करेगा तो कहाँ करेगा ? हमें पम्पापति के मन्दिर की ओर चलने की तैयारी करनी चाहिए।

फिर माधव पंडित को अपने समीप आने का संकेतकर रायराया बुक्काराय ने कहा—माधव पंडित, महाकरणाधिप तो पर्वत की भाँति दुर्धर्ष हैं। आप भगवान कालमुख के पट्टशिष्य हैं। भगवान विद्याशंकर की समस्त विद्याओं के ज्ञाता विद्यारण्य की भाँति हैं। बलदेव ने जो कहा वह नितान्त असत्य तो नहीं है। मेरे पिता योद्धा होते हुए भी खेती ही करते थे और मैं भी यादव की अपेक्षा कुरुबा ही अधिक हूँ। दोरासमुद्र का बाल-दुर्गपाल अवश्य रहा हूँ, परन्तु विशेष कुछ जानता नहीं। आप मेरे साथ ही रहिएगा। मेरे संस्कार एक गड़रिये के ही हैं। इसलिए मेरे राजराजेश्वर-पद को सुशोभित करने के लिए आपको सतत मेरे साथ ही रहना होगा।

७. पूरण कन्याली

आनेगुण्डी के सभी निवासियों को यह बात मालूम हो गई थी कि भगवान कालमुख ने समाधि ली है; और यह भी सभी को मालूम हो गया था कि गत में कोई समाधि को भंग न करे, ऐसी इच्छा भगवान कालमुख ने प्रदर्शित की है। इसलिए आनेगुण्डी के दुर्गवासी और उनके साथ ही आस-पास के सभी पिंडारा, किरात और कुरुबा समाधिस्थ भगवान कालमुख विद्याशंकर के अन्तिम दर्शनों के लिए लालायित हो रहे थे और किसी राज्याधिकारी के अधिकृत आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे।

बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद, सवेरे के प्रथम प्रहर में, आनेगुण्डी के दुर्ग के पम्पा-द्वार में से उन्होंने विजयधर्म की वीर-मंडली को बाहर निकलकर भगवान पम्पापति के मन्दिर की ओर जाते देखा। यह मंडली धीरे-धीरे और चुपचाप चल रही थी। चेहरे सभी के गम्भीर थे। देखनेवालों को यह तो पता चल ही गया कि वीरों की इस मंडली को निकलने में देर हो गई

थी, लेकिन देर का कारण किसी को ज्ञात न था। किसी अनिवार्य कारण से ही देर हुई होगी, ऐसा लोगों का अनुमान था; और इससे अधिक जानने की किसी की इच्छा भी नहीं थी। क्योंकि इस समय सभी के मन भगवान कालमुख के समाधि लेने के समाचारों के कारण दुःखित हो रहे थे और दुःख के उस बोझ के नीचे लोगों का समस्त कुतूहल दब-सा गया था।

दुर्ग-द्वार के दोनों ओर एकत्रित जनसमुदाय और आभटों के बीच से होकर वह मंडली आगे बढ़ी और तब लोग भी उनके पीछे हो लिये।

जब वे भगवान विरूपाक्ष के मन्दिर में पहुँचे तो उन्होंने भगवान काल-मुख को उसी स्थिति में बैठा पाया जिस स्थिति मे पिछली शाम छोड़कर गये थे। भगवान कालमुख के शरीर की आभा इतनी दिव्य थी मानो किसी ने स्वर्णचम्पा के पराग से उसका मार्जन किया हो। लग रहा था मानो ऋषिराज अभी समाधि में ही बैठे हों।

राजगुरु पंडित आर्यभद्रदेव सबसे पहले आगे आये और उन्होंने साश्चर्य देखा कि भगवान कालमुख के चरणों में सिर नवाये एक आदमी खड़ा है। राजगुरु के साथ अन्य लोगों की दृष्टि भी उस व्यक्ति की ओर गई और सभी यह सोचकर चकित हो उठे कि इतने चौकी-पहरे के होते हुए भी वह व्यक्ति अन्दर कैसे घुस आया। महाकरणाधिप के आदेशानुसार सोमेश्वर सोलंकी ने मन्दिर के चौकी-पहरे का पूरा प्रबन्ध किया था और मन्दिर के बाहर दरवाजे पर और रंगमंडप में भी आभट खड़े पहरा दे रहे थे।

'अरे सामी, तू कौन है और कहाँ से आया है?' राजगुरु ने उच्च स्वर में पूछा।

इस बीच वैष्णव भागवत आचार्य, शैव सम्प्रदाय के शंकराचार्य और वीरशैवों के जंगमनाथ तोताचार्य भी भगवान कालमुख के चरणों के निकट पहुँच चुके थे। किसी ने भगवान के चरणों पर घी चुपड़कर, किसी ने उनकी नाक के आगे दर्पण रखकर और किसी ने नाभिप्रदेश के अन्तर्गत सुषुम्ना नाम की नाड़ी को टटोलकर निश्चय कर लिया कि भगवान कालमुख सच ही सदा के लिए अपनी जीवन-लीला का संवरण कर गए हैं। यह निश्चय कर लेने के बाद तीनों आचार्यों ने राजगुरु की ओर देखा। लेकिन

राजगुरु तो उस अपरिचित आगन्तुक से कह रहे थे—अरे भाई, तू कौन है ? कहाँ से आया है और क्यों आया है ?

'प्रभु ! मैं तो एक ब्राह्मण हूँ । भगवान कालमुख अपनी जीवन-लीला का संवरण करनेवाले हैं, यह सुनकर बड़ी दूर से आया हूँ; परन्तु मेरे भाग्य में भगवान की अमृत-दृष्टि लिखी ही नहीं थी ।'

यह सुनकर राजगुरु ने सोमेश्वर सोलंकी को पुकारकर कहा—दुर्ग-पालजी, आपके आभटों की दृष्टि चुकाकर यह कोई आदमी भगवान की समाधि को भ्रष्ट करने के लिए यहाँ तक आ गया है । इस सम्बन्ध में आप उचित जाँच-पड़ताल कीजिए ।

जब सोमेश्वर सोलंकी ने उस अनिच्छित आगन्तुक को अपने अधिकार में कर लिया तो राजगुरु पंडिताचार्य आर्यभद्रदेव ने रायराया बुक्काराय से कहा—रायराया, भगवान के उत्तराधिकारी के नाते अब आपको भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज की समाधि की व्यवस्था करनी चाहिए ।

'भगवान चले गए ?'

'योगी पुरुष ने अपने मृत्यु-समय की पहले से ही घोषणा कर दी थी । जब तक समय नहीं आता वह मृत्यु को रोके रहते हैं और उचित अवसर आते ही मृत्यु को स्वीकार कर लेते हैं । भगवान विद्याशंकर महाराज ने जैसे ही देखा कि उचित अवसर आ गया है, वह हम लोगों के बीच से विदा हो गए ।'

रायराया बुक्काराय ने माधव पंडित की ओर देखकर कहा—विद्यारण्य, अब हमें क्या करना चाहिए ?

'अब शेष सब आज्ञाएँ महाकरणाधिप दादैया सोमैया के द्वारा प्रदान की जानी चाहिए ।'

'लेकिन संन्यासी के अन्तिम संस्कारों की विधि क्या है ?'

'विधि तो यह है कि जिस स्थान पर संन्यासी प्राणों के परित्याग के लिए समाधि धारण करके बैठते हैं वहीं उनका भूमिदाह किया जाता है; फिर उस स्थान पर एक उत्तराभिमुख मन्दिर का निर्माण कर उसमें संन्यासी की प्रतिमा प्रतिष्ठित करनी चाहिए ।'

यह सुनकर रायराया बुक्काराय महाकरणाधिप दादैया के समीप आये और बोले—दादा!

प्रज्ञाचक्षु महाकरणाधिप मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बोले—कौन रायराया? शतायु भव! सुनिए, मैं अपने मनःचक्षुओं से देख रहा हूँ कि पिछली रात हम सब को विदा करने के पश्चात् भगवान कालमुख विद्याशङ्कर ने अपने इहलीला संवरण के निर्णय के सम्बन्ध में पुनः विचार किया है और हम सब पर दया करके भगवान ने अपने इस विषम निर्णय को सम्प्रति स्थगित कर दिया है। विजयधर्मराज्य को अभी भगवान कालमुख की छत्रछाया की आवश्यकता है। अभी हम लोगों में शठता और दम्भ है, आदर्श, धर्म और नीति के प्रति अस्थिरता आदि दुर्गुण हैं। ये दुर्गुण राजतंत्रों में अनादि काल से चलते आये हैं—चाहे वह साम्राज्य हो, वैराज्य हो, पारमेष्ठ्य हो, आधिपत्य हो, या गणराज्य हो। सब ओर से मन, वचन और कर्म का निरोधकर उच्चतम आदर्श का अवलम्बनकर, असत्य, अव्यवहार और दुर्व्यवहार, चाहे वह निकटतम मित्र के ही क्यों न हों एक क्षण के लिए भी सहन न करे—ऐसी निष्ठा और जागृतिवाला राजयोग तो योगियों के लिए भी दुर्लभ है। रायराया, आप मुझे भगवान के समीप ले चलिए। मैं एक बार पुनः उनके आशीर्वाद प्राप्त करना चाहता हूँ।

दादैया सोमैमा की यह बात सुनकर सभी चकित हो उठे। सब बुक्काराय की ओर और बुक्काराय सबकी ओर देखते रहे; फिर बुक्काराय ने माधव पंडित की ओर देखकर कहा—विद्यारण्य, दादा तो भगवान को अब भी जीवित समझते हैं। आप ही उनसे बात कीजिए और उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत कीजिए। हम तो उन्हें समझाने में असमर्थ हैं।

तब माधव पंडित ने कहा—दादा, मैं माधव पंडित, भगवान कालमुख का शिष्य, आपको प्रणाम करता हूँ।

'ओ-हो, कौन, विद्यारण्य माधव? भगवान कालमुख विद्याशंकर ने जिसे अपना श्रेष्ठ शिष्य कहा है, वह तुम्हीं हो? मैं तुम्हारे दर्शनों से परिचित नहीं, इसलिए पूछना पड़ रहा है। जिस दिन से मालादेवी मुझे अकेला और अन्धा छोड़कर चली गई उस दिन से मैं सचमुच अन्धा हो गया। वही मेरी

आँख थी। उसी की आँखों से मैं सब-कुछ देख और समझ सकता था। यदि मेरी माला होती तो मुझे यह पूछने की आवश्यकता न होती कि तुम कौन हो?'

दादैया सोमैया की पत्नी मालादेवी, अपने पिता की अकाल मृत्यु के बाद, बहुत ही थोड़े समय तक जीवित रह सकी थीं।

माधव ने कहा—दादा, वह सती तो धन्य है। राजसी वैभव और विलास के बीच भी आत्मबलिदान किस तरह किया जाता है, इसका पाठ उन्होंने इस दुनिया को पढ़ाया और चली गईं। ऐसे सौभाग्यशाली बहुत ही थोड़े हैं जो अपने आत्मबलिदान के निमित्त को अपने नेत्रों के समक्ष साकार होता हुआ देख पाते हैं। वह सौभाग्यशालिनी देवी उन्हीं में से एक थीं।

'हाँ माधव, वह तो धन्य हुई परन्तु मेरी आँखें भी लेती गईं। लेकिन जाने दो इन बातों को। भगवान कालमुख की उपस्थिति में इस प्रकार निजी सुख-दुःख की बातें करना शोभास्पद नहीं। माधव, मुझे भगवान के समीप ले चलो। मैं उनके आशीर्वाद ग्रहण करना चाहता हूँ।'

'दादा, भगवान कालमुख विद्याशंकर का आशीर्वाद तो अब समस्त विजयधर्मराज्य के लिए सुलभ हो गया है।'

'तो क्या भगवान ने अपने निर्णय का परित्याग नहीं ही किया? क्या सच ही उन्होंने लीला-संवरण कर ली?'

'जी हाँ।'

'जैसी कालमुख भगवान की इच्छा। तो भी मुझे भगवान के चरणों में ले चलो।'

माधव पंडित महाकरणाधिप दादेया सोमैया को भगवान कालमुख के समाधिस्थ शरीर के पास ले आये। महाकरणाधिप ने भगवान कालमुख का चरण-स्पर्श करके कहा—माधव, रायराया कहाँ हैं?

'जी, मैं यहीं हूँ।' रायराया ने कहा।

'रायराया, भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज चले गए। मालादेवी भी चली गईं। बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा! जो उत्तराधिकार उन्होंने आपको प्रदान किया है उसकी गम्भीरता को तो समझते हैं न?'

'जी।' रायराया ने कहा।

'और जो विद्या तुम्हें उत्तराधिकार में प्रदान की है उसका रहस्य तुम भी समझते हो न माधव पंडित?'

'जी।'

'तो अब भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज की देह के अन्तिम संस्कारों की तैयारी करो। जो भी उनके अन्तिम दर्शन करना चाहें उन सब को कर लेने दो। फिर जिस स्थान पर भगवान ने समाधि ली है वहीं उनके भूमिदाह के लिए गड्ढा खुदवाओ। उस गड्ढे में भगवान का भूमिदाह करो। उस स्थान पर भगवान कालमुख विद्याशंकर का समाधि-मन्दिर निर्मित कर उसमें भगवान कालमुख की पाषाण प्रतिमा की स्थापना करो।'

'पाषाण की प्रतिमा? भगवान कालमुख विद्याशंकर तो विजयधर्म-साम्राज्य के महापिता, प्रणेता, द्रष्टा और स्रष्टा थे। उनकी प्रतिमा स्वर्ण की होनी चाहिए या पाषाण की?'

'मृतात्मा का सम्मान सदा श्रद्धा से किया जाता है सम्पत्ति से नहीं। योगी अपने बाद श्रद्धा का दान माँगता है, समृद्धि का नहीं। भगवान की प्रतिमा के समक्ष बैठकर भक्तगण ध्यान, धारणा और चिन्तन-मनन करके पवित्र हो सकें; चोर-चोरी करने के लिए प्रेरित हों, ऐसा मत करो।'

'दादा, भगवान कालमुख विद्याशंकर की प्रतिमा काँसे या राँगे की बनाई जाये। इस तरह रायराया भी प्रसन्न होंगे और आपकी मनीषा भी पूर्ण होगी। पांचाल और पंचकारक अति सुन्दर प्रतिमा बनाते हैं।'

'तो ऐसा ही हो।' महाकरणाधिप ने कहा, 'मैं अब यहीं रहूँगा। सदैव भगवान विरूपाक्ष का स्मरण करता रहूँगा। भगवान कालमुख का सदैव ध्यान करता रहूँगा। माला गई, मेरे नेत्र गये। भगवान गये, मेरा उत्साह चला गया। अब मैं अपना शेष जीवन इस मन्दिर में ही बिताऊँगा। रायराया, जब भी मेरी आवश्यकता पड़े तो मैं आपको यहीं, इसी मन्दिर में मिलूँगा। आप सब मिलकर भगवान कालमुख की श्रद्धा को आलोकित करें। और माधव पंडित, तुम भी भगवान की विद्या को उजागर करो!'

'दादा, आप अकेले ही क्यों? अब तो हम सभी यहीं रहेंगे। समस्त

विजयधर्म-साम्राज्य का विजयनगर यहीं स्थापित होगा। साम्राज्य के उपयुक्त उसकी एक राजधानी होनी ही चाहिए। भगवान विरूपाक्षदेव के सान्निध्य के अतिरिक्त, भगवान कालमुख विद्याशंकर के समाधिस्थल के अतिरिक्त वह राजधानी अन्यत्र हो ही कैसे सकती है? विजयधर्म-साम्राज्य की राजधानी विजयनगर यहीं निर्मित होगा और आज ही उसकी नींव डाली जायेगी।'

'विचार बहुत ही सुन्दर है रायराया।' दादैया सोमैया ने कहा, 'स्तुत्य भी है। प्रारम्भ आज ही कर दीजिए। राजधानी का नाम भगवान के नाम पर विद्यानगर ही रखा जाये।'

'जैसी दादा की आज्ञा।'

'रायराया, आज्ञा देने का मेरा समय बीत गया। अब तो परामर्श दे सकता हूँ। जब भी माँगेंगे अवश्य परामर्श दूँगा; लेकिन युवक राजा का महाकरणाधिप अन्धा हो, यह कुछ अच्छा नहीं लगता। फिर भी एक बिन-माँगी सलाह दे रहा हूँ—आप भगवान कालमुख के प्रतिनिधि हैं, माधव पंडित भी उनके प्रतिनिधि हैं, आप दोनों अभी अल्पवयस्क हैं, आपके पास श्रद्धा है, उनके पास विद्या; आप साहसी हैं, वह विचारवान। आप उन्हीं को अपना महाकरणाधिप बनाइए।'

'दादा, न तो आप इस तरह मुक्त हो सकते हैं और न आपको हममें से कोई मुक्त होने दे सकता है। महाकरणाधिप तो आप ही रहेंगे। रायराया के प्रतिनिधि भी आप ही रहेंगे। विद्यारण्य माधव पंडित को मैं सर्वसम्मति से महामंत्री नियुक्त करूँगा। हम आपको अधिक कष्ट नहीं देंगे, परन्तु मुक्त तो कदापि नहीं करेंगे।' कहते-कहते रायराया भावुक हो उठे।

इसके बाद रायराया ने माधव पंडित से कहा—विद्यारण्य, अब भगवान का अन्तिम संस्कार कीजिए।

लोगों को पता तो चल ही गया था, इसलिए अन्तिम दर्शन और चरण-स्पर्श करने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। आदेश मिलते ही लोग एक-एक कर आने लगे। जो भी दर्शन कर लेता रंगमंडप के नीचे जा बैठता। जब सब दर्शन कर चुके तो मन्दिर के द्वार बन्द कर दिये गए। अन्दर केवल

राजगुरु, चारों सम्प्रदायों के आचार्य, ब्राह्मण और खुदाई करनेवाले आभटों के अतिरिक्त दूसरे किसी को नहीं रहने दिया गया।

रंगमंडप के नीचे काफी संख्या में लोग एकत्रित हो गए। वहाँ आकर महाकरणाधिप दादैया ने लोगों को सम्बोधितकर कहा—आप सब मेरी इस अन्तिम बात को सुनें—महामंडलेश्वर राय हरिहर का दाह-संस्कार आज तुंगभद्रा नदी के किनारे किया जायेगा और उनकी अस्थियों पर उनके जन्म-ग्राम कैलाश में एक समाधि-मन्दिर बनाया जायेगा। उस मन्दिर का उपयोग अग्रहार के रूप में होगा और वहाँ शस्त्रास्त्रों की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जायेगा।

'भगवान कालमुख ने अपनी लीला का संवरण किया। राजसंन्यासी अपने ही अदम्य उत्साह का भोग बन गए। महामंडलेश्वर राय हरिहर भगवान काल-मुख की विदा से पहले ही विदा हो गए। हमारे सात वर्षों के पुरुषार्थ और मनोभिलाषाओं का मैं ही अकेला प्रतिनिधि बचा रह गया। यहाँ उपस्थित दुर्गपालों, सामन्तों, रायसों, नायकों, दंडनायकों आदि सभी को मेरी एक ही आज्ञा है और वह अन्तिम आज्ञा यह है कि भगवान कालमुख ने हमें उत्तरा-धिकार में एक रायराया और एक विद्वान पंडित प्रदान किया है। जो श्रद्धा-भक्ति आप मुझे देते आये है वह अब इन दोनो को प्रदान करें। पिछले सात वर्ष हमारे चारों ओर उत्पात होते रहे, लेकिन हमने शान्ति बनाये रखी। वह शान्ति आवश्यक थी। शान्ति के उस काल में आपको विजयधर्म-साम्राज्य की रायरेखा अर्थात् उसका संगठन मिला। सुदृढ़ और विशाल सीमाएँ उप-लब्ध हुईं; तुरुष्कों ने सात वर्ष में हमारे जितने प्रदेश को छिन्न-भिन्न किया उससे अधिक प्रदेश शान्ति के इस काल में हमने पुनःसंगठित और व्यवस्थित किया है। इस अवधि में हम सब लोगों के मन के मैल धुले हैं। वह शान्ति हम लोगों के लिए अब भी अनिवार्य है, परन्तु तुरुष्कों के लिए वह असहनीय हो उठी है। तुरुष्कों की इस मान्यता को कि हम आपस में लड़-झगड़कर दुर्बल हो जायेंगे और स्वयं उन्हें बुला लायेंगे, हमने सच नहीं होने दिया। हमारी यह शान्ति जिस समय उन्हें युद्ध से भी अधिक भयंकर प्रतीत होने लगेगी तब युद्ध की घोषणा होगी। और युद्ध तो युवकों का प्रिय व्यवसाय

है, इसलिए जब भी युद्ध छिड़े आप सब युवक रायराया और युवक महाप्रधानी को अपना सहयोग, समर्थन और शक्ति प्रदान करें। मैं अब इसी मन्दिर में रहूँगा और यहाँ बैठा-बैठा राष्ट्रोदय और राष्ट्र के संगठन को देखता रहूँगा; और राष्ट्र की उन्नति के लिए अहर्निश भगवान कालमुख की आत्मा, राय हरिहर की श्रद्धा और भगवान विरूपाक्ष की कृपा की आकांक्षा करता हुआ प्रार्थना में रत रहूँगा।'

और इतना कहकर पम्पापति के देवमन्दिर के बन्द दरवाजों को खोलकर महाकरणाधिप अन्दर चले गए। एक क्षण तो किसी के मुख से बोल भी नहीं फूटा। सभी को यही लगा मानो सात वर्ष का भूतकाल अपनी पीठ फिराकर चला गया है।

थोड़ी देर बाद सोमेश्वर सोलंकी वहाँ आया और बोला—रायराया, राय हरिहर की श्मशान-यात्रा की अधिकाश तैयारियाँ हो गई हैं और शेष भी शीघ्र ही पूरी हो जायेंगी। इस बीच यह एक आदमी, भगवान कालमुख की अन्तिम आज्ञा का लोपकर, मेरे आभटों की दृष्टि चुकाकर, रात के समय मन्दिर में घुस गया था। आप इसके सम्बन्ध मे योग्य आदेश प्रदान करें।

राय बुक्काराय ने कहा—दुर्गपाल, ऐसे सब प्रकरणों में अब से महाप्रधानी विद्यारण्य महाराज ही आदेश प्रदान करेंगे।

'जी, वह भी यहीं हैं। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वह इस प्रकरण मे यथोचित शासन प्रदान करें। पता नहीं, कल रात से ऐसा क्या हो गया है कि मेरे सभी चौकी-पहरे दुर्बल पड़ते जा रहे हैं।' सोमेश्वर ने ग्लानि-भरे स्वर से कहा।

विद्यारण्य ने कहा—दुर्गपाल, आप दुःखित न हों। कल रात के या आज दिन के इस प्रसंग के लिए कोई आपको दोष नहीं दे सकता। कहाँ है अनधिकार चेष्टा करनेवाला वह ब्राह्मण?

अपने पीछे दो आभटों के पहरे में खड़े उस ब्राह्मण को आगे करते हुए सोमेश्वर ने कहा—जी, यह रहा वह अनधिकारी व्यक्ति।

'भगवान कालमुख की अन्तिम आज्ञा की अवहेलना कर तुमने समाधिस्थल में प्रवेश क्यों किया?'

'महाराज, मुझे पता नहीं था कि भगवान ने इस तरह की कोई आज्ञा दी है। पता होता तो मैं कदापि उस आदेश की अवहेलना न करता। मैं तो भगवान के दर्शन करने आया हूँ।'

'कहाँ से आये हो तुम?'

'बहुत दूर, मदुरा से।'

'मदुरा से? मदुरा तो तुरुष्कों की नगरी है। तुम्हारा नाम क्या है?'

'पूरण कन्याली।'

'रेवा-तट के निवासी, तुम, यहाँ दक्षिण में कैसे?'

'महाराज, गुजरात के राजा रायकरण जब गुजरात से देवगिरि आये तो मैं भी उनके साथ चला आया। देवगिरि में उन्होंने तुरुष्कों से युद्ध किया और मैं उनके साथ तुरुष्कों की नगरी में पहुँच गया। आजकल मैं वहीं श्रीरंग के मंदिर में हूँ।'

'श्रीरंग का मन्दिर? हमने सुना है कि भगवान वल्लभाचार्य और भगवान रामानुज आदि महाभागवतों का पवित्र स्थान और मन्दिर तो अब भ्रष्ट हो गया है। उस मन्दिर से सभी देवमूर्तियों को हटाकर सुल्तान आज-कल वहाँ रहने लगा है। यदि यह सच है तो श्रीरंगम् का मन्दिर अब देवता का मन्दिर नहीं रहा, वह मदुरा के तुरुष्क सुल्तान का रंगमहल बन गया है।'

'जी, बात तो सच है।'

'और फिर भी तुम वहाँ रहते हो, यह कैसे?'

'जी, जब तुरुष्क सुल्तान ने उस देव-मन्दिर को अपना रंगमहल बनाया तो उसकी एक प्रेमिका ने यह माँग की कि जहाँ मूर्ति का निजमन्दिर था उस रिक्त प्रकोष्ठ में घी का अखंड दीपक जलाया जाये। मैं उस अखंड ज्योति का रक्षक और पुजारी हूँ।'

'सुल्तान की वह प्रेमिका कौन है?'

'जी, वह एक नापित नारी है। नाम उसका मन्दांगी है। सुन्दर पाड्य ने उसे दंडकणिका के रूप में सुल्तान को भेंट किया है। वह अनुपम सुन्दरी है। जन्म-नक्षत्रों की विषमता और जन्म-ग्रहों के बलाबल के कारण उसका भाग्य-योग विषकन्या का है!'

'सुल्तान की प्रेमिका ? और तुम उसके वेतनभोगी पुजारी ?' इतना कह-कर विद्यारण्य माधव सोमेश्वर सोलंकी की ओर मुड़े और बोले, 'दुर्गपाल, यह ब्राह्मण गोभूरी न भी हो तो भी इसकी परिस्थितियाँ और संयोग ऐसे हैं कि इसे गोभूरी ही समझना चाहिए। ले जाओ इसे और बन्द कर दो करागार में।'

'परन्तु महाराज....' पूरण व्यग्र हो उठा।

'ले जाओ इसे। दुर्गपाल, अभी हमें बहुत-से महत्वपूर्ण कार्य तत्काल निपटाने हैं। और यह प्रकरण ऐसा है जिसके लिए अधिक समय और गहरी छानबीन की आवश्यकता है। ले जाओ इसे और बन्द कर दो कारागार में। देखो, यह किसी से भी बात न करने पाये। मुझे तो यही उचित लगता है कि इसका न्याय-निर्णय महाप्रधानी की अपेक्षा धर्माधिकारी को ही करना चाहिए। और, पूरण कन्याली, इस बात को तो तुम जानते ही होगे कि हमारे यहाँ प्रत्येक गोभूरी को प्राणदंड देने का ही नियम है!'

तभी सहसा बाहर जोर-जोर से शंख बज उठे। भेरी और तूर्य के स्वर सुनाई पड़ने लगे और कोई उच्च स्वर में पुकार उठा—कावेरी-तट के रुद्रकांची के योगीमठ के अधिपति महन्तराज योगी सिंगी की जय हो!

और योगिराज सिंगी अपनी पालकी से नीचे उतरता दिखाई दिया।

८. योगिराज सिंगी

योगिराज सिंगी ने जैसे ही अपनी पालकी से पाँव नीचे रखा उसके दोनों भेरीवालों ने भेरी बजाई, शंखवालों ने शंख फूँका और उसके साथवाले उच्च स्वर में पुकार उठे—योगिराज सिंगी की जय हो! योगिराज सिंगी का मुँह काला हो! योगिराज सिंगी का खाना-पीना हराम हो!

योगिराज सिंगी का शरीर ऊँचा-पूरा और शक्तिशाली था। भगवें उपवीत के नीचे उसकी काया गेरू से रँगे स्वर्ण-जैसी दीपित हो रही थी। उसका मस्तक जैन श्रमण के मस्तक की भाँति पलित किया हुआ था। उसकी दाढ़ी भी इस तरह साफ थी मानो केशों का लुंचन किया हो। उसका मुख

हाथी के गण्डस्थल-जैसा था। रंग कुछ ललछौंहा। पतले सँकरे होठ और जरा आगे को निकली हुई ठुड्डी उसे बहुत ही सुन्दर और दुराग्रही बनाये दे रहे थे। हाथ उसके हाथी की सूँड जैसे थे और उनमें उभरे हुए स्नायु ऐसे लगते थे मानो उन पर साँप लिपटे हों। हथेलियाँ इतनी मजबूत और शक्तिशाली प्रतीत होती थीं कि वह किसी भी मस्त साँड का मस्तक दबा ले तो वह भी चूर-चूर हो जाये। जब वह चलता, उसके पाँवों की धमक से धरती काँपने लगती थी। वह सौन्दर्य, पौरुष और शक्ति की साक्षात् प्रतिमा लगता था। वह मनुष्य नहीं किसी कुशल पांचाल-पंचकारक द्वारा चन्दन की लकड़ी में उत्कीर्ण भीम की मूर्ति प्रतीत होता था।

अपने अनुयायियों के विचित्र जयनाद के साथ, रंगमंडप के नीचे जमी भीड़ के बीच से मार्ग बनाता हुआ वह योगी पम्पापति के मन्दिर की सीढ़ियों की ओर बढ़ा। उसके अनुयायी अब भी पुकार रहे थे—योगिराज सिंगी की जय हो! योगिराज सिंगी का मुँह काला हो! योगिराज सिंगी का खाना-पीना हराम हो!

दक्षिणापथ में जयनादों की कोई कमी नहीं थी। जितने लोग थे उतने ही सम्प्रदाय थे और उतने ही उनके जयनाद भी थे। सबसे छोटा जयनाद वीरशैवों के जंगमनाथ का था और सबसे लम्बा श्रवणबेलगोला के वीरवणिगों के जगतसेठ—पृथ्वी शेटी—का था। और इन दोनों जयनादों के बीच शंकराचार्यों, भागवताचार्यों, सप्तसामन्तचूडामणियों, नायकों, राजाओं, महाराजाओं, यादव राजाओं, काकतीय राजाओं, होयसल राजाओं, चोल और पांड्य राजाओं, वातापी और कल्याणी के सोलंकियों तथा सामुरायों आदि के जयनाद थे। हजार वर्षों से इस प्रदेश में इतने जयनाद चले आ रहे थे कि उनकी गूँज में मनुष्यता का स्वर ही खो गया था। साम्प्रदायिक आचार्यों के जयनादों में धर्म का स्वर विलीन हो गया था। छोटे-बड़े राज्यों और महाराजाओं के वीरतापूर्ण जयनादों में समझदारी का स्वर हिरा गया था।

इस प्रदेश के आबाल-वृद्ध नर-नारियों ने अपने जन्मदिन से मृत्युदिन तक अनेक प्रकार के जयनाद सुने थे, लेकिन 'तेरा मुँह काला हो' और 'तेरा खाना-पीना हराम हो' ऐसा जयनाद उन्होंने आज तक कभी नहीं सुना था।

प्राणदंड के अपराधी को ढोल पीटते हुए गली-गली घुमाया जाता था तब भी इस तरह की घोषणा नहीं की जाती थी। परन्तु यह योगिराज सिंगी था कि उसी के आगे-पीछे चलते हुए, उसी के अपने पार्श्वद जोर-जोर से पुकारते जा रहे थे—योगिराज सिंगी का मुँह काला हो, योगिराज सिंगी का खाना-पीना हराम हो!

जैसे ही योगिराज ने अपना पाँव पम्पापति के मन्दिर की सीढ़ियों पर रखा लोगों को आशंका हुई कि कहीं उसके बोझ से सीढ़ियाँ ही न टूट जायें। लेकिन सीढ़ियाँ टूटीं नहीं, केवल चरमराकर रह गयीं और वह रंगमंडप के ऊपर पहुँच गया। अब उसके पाँव की धमक से सारा रंगमंडप धमधमा उठा। उसकी विशाल उत्तुंग काया के सामने मन्दिर का विस्तार और आयाम छोटा हो गया। अपने पाँवों की धमक से मन्दिर को गुँजाता हुआ वह भगवान विरूपाक्ष के सामने बने नन्दी के समीप जा खड़ा हुआ। नन्दी काफी ऊँचा था। पूरी ऊँचाईवाले शक्तिशाली वृषभ के नाप का वह बनाया गया था, परन्तु इस समय, विराटकाय योगी के सामने, वह बच्चों के खिलौने-जैसा लग रहा था।

विरूपाक्ष के लिंग के समक्ष पहुँचकर योगिराज ने अपने वदन पर ओढ़ा भगवा उपरिवस्त्र उतार फेंका और लोगों ने साश्चर्य देखा कि उसका सारा शरीर, यहाँ तक कि जाँघों से लेकर घुटनों तक का भाग भी, पीतल की पतली कड़ियों से कसा हुआ था। गले में भी इसी प्रकार की बहुत-सी बारीक कड़ियाँ लिपटी हुई थीं। इन कड़ियों के ही कारण भगवे वस्त्र के नीचे उसका शरीर गेरू-रँगे स्वर्ण-जैसा दीपित हो रहा था।

समान्यतः भगवान शंकर का दर्शन पहले नन्दी को नमस्कार कर तब देवाधिदेव के समक्ष साष्टांग दण्डवत करके किया जाता है; और भगवान पम्पापति विरूपाक्षदेव के आगे तो मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र और लक्ष्मण ने भी साष्टाग प्रणाम किया था। परन्तु वह योगी दोनों हाथों की उँगलियाँ पीठ पीछे एक-दूसरे से मिलाकर और सीना तानकर विरूपाक्ष लिंग के समक्ष घूरता हुआ इस प्रकार खड़ा था मानो बजरंगबली का कोई भक्त उनके सामने खड़ा दर्शन कर रहा हो। सब देवों में केवल हनुमानजी ही एक ऐसे देवता हैं

जिन्हें अपने भक्त का भी सिर नवाकर दर्शन करना स्वीकार नहीं। जब त्रिलोकी के नाथ विरूपाक्षदेव के समक्ष वह योगी साष्टांग दंडवत करने के स्थान पर गर्व से सीना फुलाकर खड़ा हो गया तो लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही और वह आश्चर्य उस समय और भी बढ़ गया जब वह योगी पीतल की कड़ियों से आवेष्टित अपनी छाती में जोर से घूँसे मारने लगा। यहाँ तक कि उसकी मुक्की और छाती से लहू की धारें बह चलीं और पीतल की कड़ियाँ लहूलुहान हो गईं।

फिर एक पार्श्वद आया और उसने अपने भगवा कपड़ों के नीचे से एक काली साड़ी निकालकर योगिराज को दी। योगी ने उसे ओढ़ लिया और तब किसी वृद्धा नवोढ़ा की भाँति दोनों हाथों से तालियाँ बजाता मटक-मटककर नाचने और गाने लगा :

"मथुरा की गलियन में खेलन गये कान्हा।
नूपुरन की जोड़ी कहाँ भूल आये कान्हा॥"

उस लम्ब-तड़ंगे योगी को इस भाँति नाचते-गाते देख वहाँ उपस्थित सभी व्यक्ति क्षण-भर के लिए स्तम्भित रह गए। उस योगी का कृत्य इतना उपहासास्पद था कि सब लोग समय और स्थान की गम्भीरता को ही भूल गए और खिलखिलाकर हँसने लगे। और तो और रायराया और माधव पंडित के चेहरों पर भी मुस्कराहट छा गई।

योगिराज सिंगी मटकता रहा, गाता रहा और उसके पार्श्वद जोर-जोर से नारे लगाते रहे। जब उसने रुकने का नाम ही न लिया तो रायराया बुक्काराय कुपित हो उठे। उनका हाथ अपनी तलवार की मूठ पर चला गया और वह उठने को ही थे कि विद्यारण्य माधव ने उनका हाथ पकड़ लिया और स्वयं उठकर योगिराज सिंगी के पास गया। योगिराज सिंगी के समीप पहुँचकर माधव पंडित ने उसे प्रणाम किया और संकेत से उसे चुप रह जाने को कहा। पार्श्वदों को भी उन्होंने चुप हो जाने का संकेत किया; फिर माधव पंडित हँसते-खिलखिलाते लोगों की ओर मुड़े और उन्हें भी शान्त हो जाने का संकेत किया।

पार्श्वद 'योगिराज सिंगी का मुँह काला हो', 'योगिराज सिंगी का खाना-

पीना हराम हो,' 'योगिराज सिंगी की जय हो' के नारे अन्तिम बार लगा-कर चुप हो गए।

~~अब~~ विद्यारण्य माधव योगिराज के पास आये और उसके शरीर पर ओढ़ी हुई काली साड़ी को धीरे से खींचकर उतार दिया। योगी का शरीर पीतल की कड़ियों की रगड़ के कारण लहूलुहान हो रहा था। माधव पंडित ने उसे एक आसन दिखाकर बैठने का संकेत करते हुए कहा—योगिराज, भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज ने विजयधर्मराज्य के अपने प्रतिनिधि एवं उत्तराधिकारी के रूप में जिनका चयन किया है वह रायराया बुक्काराय यह हैं।

'जय हो महाराया की!' योगिराज ने कहा, 'भगवान कालमुख का तप सार्थक हो। महाराज महाराया को यश प्राप्त हो।'

माधव पंडित ने योगिराज के शरीर पर कसी हुई पीतल की कड़ियों को ध्यान से देखा तो पाया कि उनमें से अधिकांश तीन धारवाली थीं और सभी खून से रँग उठी थीं। परन्तु उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पीड़ा और वेदना का कोई चिह्न उस योगी के चेहरे पर दृष्टिगोचर नहीं होता था। उन्होंने पूछा—योगिराज, आप सचमुच ही योगी हैं या कोई दोमार हैं और दोमार-कृत्य के लिए ही यह स्वांग किया है?

'रायराया,' योगिराज ने बुक्काराय की ओर देखकर कहा, 'मैं दोमार नहीं हूँ, न यह कोई स्वांग ही है। मैं वास्तव में शृंगेरी मठ का योगिराज सिगी हूँ।' फिर माधव पंडित की ओर देखकर उसने पूछा, 'आपका नाम और काम?'

उत्तर दिया रायराया बुक्काराय ने—यह हैं माधव विद्यारण्य, हमारे महाप्रधानी।

'महाप्रधानी? परन्तु महाकरणाधिप तो दादैया सोमैया थे न?'

'वह भी हैं। वह हमारे महाकरणाधिप हैं, परन्तु उन्होंने आज वानप्रस्थ ले लिया।'

'वानप्रस्थ ले लिया? और भगवान कालमुख विद्याशंकर ने उन्हें अनुमति भी दे दी?'

'योगिराज,' माधव पंडित ने धीरे से कहा, 'अब तो सभी को अपने ही

मन से निश्चय करना होगा कि भगवान अमुक प्रसंग में अनुमति देते या नहीं ? क्योंकि भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज तो अब किसी को भी अनुमति देने की स्थिति में नहीं रहे। आज वह ब्रह्मर्षि-पद को प्राप्त हुए। उन्होंने सदा के लिए समाधि ले ली।'

यह सुनते ही योगिराज सिंगी को इतना आघात लगा कि वह लगभग निर्जीव ही हो गया। जब थोड़ी देर के बाद पुनः प्रकृतिस्थ हुआ तो उसने अपने पार्श्वदों को बुलाकर कहा—भाविको, तुम्हारी श्रद्धा-भक्ति से मैं परितृप्त हुआ। आशीर्वाद देने की शक्ति तो मुझमें नहीं, परन्तु उत्तराधिकार में मैं तुम्हें रुद्रकाची के अपने मठ की समस्त स्थावर-जंगम सम्पत्ति प्रदान करता हूँ। उसे मिल-जुलकर आपस में बराबर-बराबर बाँट लो, मठ को तोड़ दो और सब अपने घरों को लौट जाओ और गृहस्थाश्रम का सुख-लाभ करो और....और....नहीं, कुछ नहीं। तुम जाओ और सुखी होओ।

'और आप ?' एक पार्श्वद ने पूछा, 'हम आपको छोड़कर जा नहीं सकते, जायेंगे भी नहीं।'

'मेरी बात छोड़ो, मुझे भूल जाओ। यह सामने तुंगभद्रा नदी बही जा रही है। शबरी ने अपनी भक्ति से इसे रसपूर्ण किया है। हनुमानजी ने इसमें स्नानकर इसकी महिमा को बढ़ाया है। भगवान रामचन्द्र के पादपद्मों से यह पुनीत हुई है। भगवान कालमुख के तप की यह साक्षी है। इसी के पवित्र जल मे मैं अपने नश्वर शरीर को विलीन कर दूँगा।'

'परन्तु योगिराज....'

पार्श्वद की बात काटकर योगिराज ने कहा—तुम स्वयं कुछ भी नहीं समझते, फिर भी मुझे समझाना चाहते हो ! भगवान कालमुख के चरण की वन्दना कर उनके आशीर्वाद प्राप्त करना मेरे जीवन की एकमात्र अभिलाषा थी। लेकिन भगवान ने अपनी त्रिकालदृष्टि से पहले ही जान लिया कि मैं पापी आ रहा हूँ और उन्होंने समाधि ले ली। ये पीतल की कड़ियाँ और इनका कष्ट व्यर्थ ही हुआ। तुम्हारी गालियाँ सुनना भी निष्फल हो गया। इतना सब करने के बाद भी मुझे कालमुख भगवान का आशीर्वाद

प्राप्त न हो सका ! मैं उनकी कृपा से वंचित ही रह गया । अब जीवन में बचा ही क्या ? तुम अपनी राह जाओ, मैं अपनी राह जाता हूँ ।

अभी तक के व्यवहार और आचरण से तो वह योगिराज सभी को सरभंगी (पागल) ही लगा था, परन्तु उसकी यह बात सुनकर सभी को लगा कि उसके इस विचित्र व्यवहार के पीछे अवश्य कोई रहस्य होना चाहिए और यदि इस योगी को मर जाने दिया तो उस रहस्य का उद्घाटन कभी न हो सकेगा ।

सम्भवतः यही सोच-विचारकर रायराया बुक्काराय खड़े हो गए और बोले—लेकिन ऐसा भी कभी हुआ है योगिराज, कि मरनेवाले के पीछे कोई अपना प्राण ही दे दे ? मृतकों का तो स्मरण किया जाता है, आदर किया जाता है और जिन कार्यों को करने का वह आदेश दे गए हैं उन्हें यथाशक्ति पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है । आप तो योगी हैं, स्वयं ज्ञानी हैं, आपको भला कोई क्या उपदेश दे । आप ही दूसरों को उपदेश देते हैं । तो भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज के पीछे आप ऐसा ही उपदेश लोगों को देंगे ?

'नहीं रायराया, आप मेरी बात को समझे नहीं । लेकिन इसमें आपका भी कोई दोष नहीं । मेरा दुर्भाग्य कहिए कि आज तक मुझे किसी ने समझा नहीं और सिंगी योगी को—अब योगी कैसा—सिंगी ढोंगी को कोई समझ भी नहीं सकेगा ।'

यह सुनकर माधव पंडित ने कहा—योगिराज, आपने कुछ कहा ही नहीं तो कोई समझे क्या और कहे क्या ? आपका अभी तक का आचरण और आपके पार्श्वदों द्वारा किया हुआ आपका जयजयकार—सभी कुछ हमारे लिए रहस्यमय ही रहा । आप इस रहस्य का उद्घाटन करें तो कुछ हमारी समझ में आये । और हम आपसे कह-सुन सकें ।

'माधव विद्यारण्य महाराज, यदि ऐसी बात है तो मैं आपको अपनी सारी बात समझाकर कहता हूँ । उसमें रहस्य-जैसा तो कुछ भी नहीं है । है केवल अपार दुःख और महान शोक, लेकिन मेरी बात सुनकर आप लोग हँसेंगे तो नहीं ?'

'जिस योगी ने जानबूझकर ऐसी स्थिति बना रखी है कि उस पर सारी दुनिया हँसे और उसकी खिल्ली उड़ाये, उसकी बात सुनकर भला कौन हँसेगा ? उसकी बात हँसने-योग्य तो कदापि नहीं हो सकती, वह तो समझने के लिए ही होनी चाहिए।'

'माधव पंडित, न तो मेरी बात में कुछ समझने-जैसा है न कोई रहस्य ही है। वह तो मेरे ऊपर हँसने-जैसी ही होगी। वैसे बात जो भी है बहुत ही संक्षिप्त और सीधी-सादी है। लेकिन क्या मुझमें इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि आपमें से कोई मुझे पहचान ही नहीं सकता ?'

यह सुनते ही सब एक-दूसरे की ओर देखने लगे, मानो मन-ही-मन पूछ रहे हों कि यह कौन है ? लेकिन मुँह से किसी ने कुछ न कहा।

तब योगिराज सिंगी ने कहा—इसमें किसी का दोष नहीं। जब स्वयं मेरे मामा वायीजन श्रेष्ठि ही मुझे नहीं पहचान सके तो दूसरे कहाँ से पहचान पाते ? मामा, क्या तुमने मुझे पहचाना नहीं ? मैं हूँ तुम्हारा भांजा वरजांग (वज्रांग)।

यह सुनते ही वायीजन श्रेष्ठि, जो इस सब से निर्लिप्त दूर बैठे हुए थे, सहसा विस्मित होकर उठ खड़े हुए और बोले—कौन वरजांग ? तुम ? तुम योगी हो गए ?

'हाँ मामा, मैं ही हूँ वरजांग। अब योगी सिंगी कहलाता हूँ। मेरे पाप उदित हुए और मैंने यह वेश धारण किया। जब आपकी पुत्री गोमती को मैं प्राप्त न कर सका तो मुझे बड़ी निराशा हुई और उस निराशा ने मुझे अत्यधिक कायर बना दिया। यहाँ मेरे मामा, माधव पंडित, रायराया और अन्य सभी उपस्थित हैं और मैं किसी से अपने पाप की बात नहीं छुपाऊँगा। मेरी धर्म की बहिन की मेरे लिए यही आज्ञा है कि मैं अपने पाप और कायरता की बात को ढोल बजाकर उजागर करता रहूँ; तभी मेरे अपराधों का प्रायश्चित हो सकेगा।'

यह कहकर योगी थोड़ी देर के लिए चुप हो गया और फिर बोला—कायर तो मैं जन्म का ही था, इसी लिए मैं न कभी वीरवणिगा की किसी बेहारुलु में जाता था और न किसी बनाजा में सम्मिलित होता था। अपनी

कायरता के ही कारण मैं परिचेरी के विप्लव का सामना नहीं कर सका। अपनी कायरता के कारण मैंने एक अपनी सम्पत्ति को छोड़ शेष सब-कुछ गँवा दिया—अपनी होनेवाली पत्नी को गँवाया—प्राप्त होनेवाली जगतसेठ की मुद्रा को गँवाया। श्रवणबेलगोला की अपनी कीर्ति, अपनी इज्जत, मान-प्रतिष्ठा, वंश—यहाँ तक कि स्वभिमान को भी खो दिया; और मेरी कायरता की पराकाष्ठा तो तब हुई जब मैं मदुरा के सुल्तान से जाकर मिला और उसने मुझे मुसलमान बना दिया और मैं मुसलमान बन गया। लेकिन वहीं सौभाग्य से मुझे एक धर्मबहिन मिल गई। केवल मदुरा का सुल्तान ही उसके पास जा पाता है या फिर वह जाता है जो उसके पति को असंख्य द्रव्य देता है या गोभूरी बनना स्वीकार करता है। वैसे वह परिणीता है और उसका पति भी है, परन्तु वह पति ही उसे दंडकणिका के रूप में लोगों की पर्यंकशायिनी बनाता रहता है। बेला ही है वह, लेकिन मैं उसे बेला कैसे कह सकता हूँ, क्योंकि मेरी तो वह धर्मबहिन है! एक बार मैं उसके सौन्दर्य का पतिंगा बनकर, उसके पति को असंख्य द्रव्य देकर, और विजयधर्मराज्य में उसका गोभूरी बनना स्वीकार करके उसके यहाँ गया था और स्वयं उसका पति ही मेरा हाथ पकड़कर मुझे उसके शयनागार में छोड़ आया था।

'और वहाँ मैंने उसको पहिली बार देखा। बातें तो मैं उसके बारे में बहुत सुन चुका था, उसके रूप की प्रशंसा भी बहुत सुनी थी, लेकिन उसे देखा मैंने वहाँ पहिली ही बार; और उसे देखकर....लेकिन जाने भी दो उस बात को। पैसा देकर औरत को खरीदना भी तो कायरता ही है! और मैं स्वीकार कर चुका हूँ और पुनः स्वीकार करता हूँ कि मैं कायर था।

'भले ही वह दंडकणिका थी, बेसवागा थी, होलेय थी, बेला थी और जो भी रही हो परन्तु मेरी तो आँखें उसने उस रात खोल दीं और वह मेरी धर्मबहिन बन गई। उसने मुझसे कहा—भाई, जाओ कावेरी के उस पार, जहाँ भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज का विजयधर्मराज्य है, जहाँ दादैया सोमैया महाकरणाधिप हैं, जहाँ राय हरिहर महामंडलेश्वर हैं, वहाँ जाकर अपनी कायरता को प्रकाशित करो। वहाँ जाकर लोगों के मुँह से कायर और गोभूरी के रूप में गालियाँ सुनो, निन्दित होओ, रोज गालियाँ

खाओ। नारी के रूप की लोलुपता ही जगत के आधे पापों का मूल कारण है। तुम वहाँ जाकर योगी बनकर रहना और लोगों को सचेत करते रहना कि कोई तुम्हारे-जैसा न होने पाये।

'मैं वहाँ से लौट आया और रुद्रकांची में रहने लगा। मेरी कायरता मेरे देहगत सौन्दर्य के अभिमान में छिपी हुई थी। इसलिए मैंने बालों का मुंडन कराया और योगी बन गया। मठ बाँधकर रहने लगा। पार्श्वद रखे कि वे मुझे रोज खूब गालियाँ सुनाएँ।

'इसी बीच राजसंन्यासी का मदुरा के साथ युद्ध छिड़ गया। मैंने उसके बारे में सुना और उसमें सम्मिलित होने की इच्छा भी हुई, परन्तु इस डर से, कि कहीं शस्त्र से घायल न हो जाऊँ, कहीं पकड़ न जाऊँ, कहीं मदुरा का सूबा मुझे परेशानकर यातना न दे, मैं युद्ध में सम्मिलित न हो सका। युद्ध में जाने के लिए अपने मठ से निकलता रोज था, लेकिन थोड़ी ही दूर जाकर लौट आता था। फिर मैंने यह सुना कि राजसंन्यासी मारे गए और उनका सिर मदुरा के परकोटे पर टँगा हुआ है। मन तो बहुत होता था कि दौड़ा चला जाऊँ और उस सिर को उतार लाऊँ। मन-ही-मन मदुरा के सुल्तान के साथ युद्ध भी करता था परन्तु शरीर घबराता था और पाँव उठते नहीं थे। केवल यही सोचा करता कि आज नहीं, कल अवश्य जाऊँगा, पर वह कल कभी नहीं आया। इसी बीच समाचार मिले कि भालारी बिबोया राजसंन्यासी का सिर ही नहीं उतार लाया, सुल्तान का सिर भी काट लाया, और नये सुल्तान ने कुपित होकर मेरी धर्मबहिन के विश्वासघाती पति का सिर किले की दीवार पर टाँग दिया है।'

'तो क्या उस अभागिन के पति का नाम सुन्दर पांड्य था?'

'जी हाँ, उसका नाम सुन्दर पांड्य ही था और वह अपनी विवाहिता पत्नी को बेचकर मदुरा का राज्य लेना चाहता था। एक उसी को देखकर मुझे यह सन्तोष होता था कि मुझसे भी अधिक कायर एक मानवरूपी जन्तु इस धरती पर जीवित है। हाँ, तो मैं कह रहा था कि भालारी बिबोया ने मेरे सारे मनसूबों पर पानी फेर दिया। जिस सुल्तान का सिर मैं उतारकर लाना चाहता था उसे भालारी बिबोया उतार लाया था। उसकी यह वीरता मेरे

लिए असहनीय हो उठी और मेरी कायरता मुझे हजार-हजार बिच्छुओं के दंश से पीड़ित करने लगी। मेरे मन ने मुझे धिक्कारते हुए कहा, वरजाग, तू चाहे योगी बन चाहे योगिराज, चाहे सिंगी बन चाहे ढोंगी, परन्तु तू है प्रथम कोटि का कायर। शारीरिक कष्ट से तू डरता है!

'तब मैंने पांचाल को बुलवाया और उसे तौल मे बराबर सोना देकर ये कड़ियाँ बनवाई और इन्हें शरीर पर धारण किया और अपने मन से कहा, ले बेटा, जिस शारीरिक पीड़ा से तू डरता था उसे अब रात-दिन, सोते-जागते, उठते-बैठते, प्रत्येक पग पर अनुभव कर। जिस रक्त के बहने से तू डरता था अब वह रात-दिन बहकर तेरी इस काया को रँगता रहेगा!

'कड़ियाँ पहिनने के बाद मेरे मन में आया कि किसी गुरु का आशीर्वाद प्राप्त कर लूँ तभी यह कायरता मेरा पीछा छोड़ेगी, इसलिए मैं यहाँ भगवान कालमुख का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए दौड़ा आया। वह सर्वज्ञ थे। इतना तो अवश्य जान लेते कि मेरे मन में कोई पाप नहीं था, केवल शारीरिक पीड़ा का विचार ही मुझे भयातुर किये रहता था। मेरा प्रायश्चित देखकर वह अवश्य मुझे आशीर्वाद देते और उनके दर्शन कर मेरे मन की कायरता का झाड़-झंखाड़ उसी प्रकार जल जाता जिस प्रकार दावानल जंगल के झाड़-झंखाड़ को जला देता है। लेकिन हाय, मेरे भाग्य में यह सुख भी नहीं लिखा था! कायर भाग्यशाली होता ही कब है? भगवान कालमुख ने अपने ब्रह्मतेज से पहले ही जान लिया कि यह कायर कुत्ता यहाँ आयेगा और मेरे दर्शनों से पवित्र हो जायेगा; वह तो पवित्र हो जायेगा, परन्तु मेरा अस्सी वर्षों का तप खंडित हो जायेगा। इसलिए मेरे आने से पहले ही वह चले गए। अब मैंने भी निश्चय कर लिया है कि उनके पीछे जाऊँगा और उस लोक में उनके आशीर्वाद प्राप्तकर पुनर्जन्म मे अपनी वीरता दिखाऊँगा।'

यह कहकर योगिराज सिंगी चुप हो गया। सुननेवाले अवाक् हुए बैठे थे। सबसे अन्तिम पाँत में भालारो बिबोया बैटा हुआ था। वह उठकर योगिराज के पास आया और बोला—योगिराज सिंगी, मैं बिबोया आपसे कहता हूँ कि आप कायर नहीं हैं। व्यर्थ ही आप अपने मन को क्लेश दे रहे

हैं। भूल आपने अवश्य की और उसे क्षमा करने की शक्ति रायराया में है! आप भगवान कालमुख के आशीर्वाद चाहते हैं। भगवान के परमशिष्य, उनकी समस्त विद्या और प्रज्ञा के उत्तराधिकारी विद्यारण्य माधव पंडित आपको आशीर्वाद प्रदान करेंगे। आप मरने का विचार छोड़ दें, क्योंकि जीवित रहकर कर्म करने की अपेक्षा मरने का विचार करना सबसे बड़ी कायरता है।

'क्या कहते हो, मरना कायरता है? मनुष्य अपनी भूल को स्वीकार कर तुंगभद्रा में विलीन हो जाये, क्या यह वीरता नहीं?'

'नहीं, यह वीरता नहीं है। मेरी बात पर विश्वास न हो तो पूछ देखो अपने मामा से, पूछो इस सभा में उपस्थित किसी भी व्यक्ति से, पूछो स्वयं विद्यारण्य महाराज से। सभी यही कहेंगे कि मरना वीरता नहीं।'

यह सुनकर योगिराज सिंगी ने अपने दोनो गालों पर जोर से एक-एक तमाचा मारकर आत्म-तिरस्कार से भरे स्वर में कहा—ओ रे कायर, तेरा समस्त जीवन कायरता से काला हुआ और अब तू अपनी मृत्यु को भी कलंकित करना चाहता है? ओरे कायर....

माधव पंडित ने उसे समझाते हुए कहा—इस संसार में सबसे शक्तिशाली और सर्वोपरि यदि कोई है तो वह केवल ज्ञान है। संसार के सभी कार्यों की—वे सुकार्य हों, अकार्य हों, ज्ञान और अज्ञान से ही तुलना की जाती है। आचार्य कालमुख भगवान का अपनी इहलीला को संवरण करना ज्ञान से तौले जाने की बात है और तुंगभद्रा में तुम्हारे समाधि लेने का कार्य अज्ञान से तौले जाने की बात है। इस संसार के प्रत्येक कार्य में वीरता भी है और कायरता भी। केवल ज्ञान और अज्ञान के द्वारा ही दोनो का निर्णय किया जा सकता है। कर्त्तव्य समाप्त कर विषपान करके अपने गुरु के पीछे-पीछे चले जानेवाले महामंडलेश्वर सच ही वीरवर हैं। तुम योगिराज, ज्ञान और अज्ञान के बीच भटकते रहे हो। इस संसार में ज्ञान ही वास्तविक शक्ति है। तुम्हारा यह ज्ञान ही कि तुम कायर हो तुम्हारी वास्तविक वीरता है।

'मैं वीर हूँ? कौन कहता है कि मैं वीर हूँ? नहीं, मैं तो कायर हूँ। मैं

शरीर के कष्टो से बहुत डरता हूँ। सदा यह डर लगा रहता है कि कहीं घाव न लग जाये, कहीं पीड़ा न होने लगे।'

'तो फिर ये कड़ियाँ क्यों पहिन रखी हैं? क्या इनसे पीड़ा नहीं होती?'

'यह तो मेरा प्रायश्चित है।'

'लेकिन जब इस वेदना को तुमने सह लिया तो यह मानना ही होगा कि इस वेदना का तुम्हें कोई डर नहीं।'

'हाँ, यह तो ठीक है। तो क्या मैं तुंगभद्रा में समाधि न लूँ? शारीरिक वेदना मुझे विह्वल नहीं कर सकती, यह मैंने जान लिया। अपने जीवन में मैं यही करना चाहता था और यह मैंने किया।'

'योगिराज, आप इतने आतुर न हों। अकुलाने की भी आवश्यकता नहीं। शक्ति तो आपने प्राप्त की ही है। वास्तविक वेदना पर आप सवार तो हुए हैं, परन्तु अभी उसकी परीक्षा होना शेष है। संसार ने आपकी कायरता को देखा, जो न देख सके उन्हें आपने स्वयं दिखाया; परन्तु अभी दुनिया आपकी वीरता को कहाँ देख पायी है? कायरता पर आपकी विजय का विश्वास लोगों को कहाँ हुआ है? अभी आपको यह दिखाना है कि आपने कायरता को जीत लिया है। और साथ ही यह भी दिखाना है कि जिस प्रकार आपने अपनी कायरता को जीता, उसी प्रकार प्रत्येक विजयधर्मी अपनी कायरता को जीत सकता है। आज तक आप स्वयं प्रयत्न करके सुनते आये हैं कि तुम्हारा मुँह काला हो; अब आपको दुनिया से यह कहलवाना चाहिए कि तुम्हारा मुख उज्ज्वल हो।'

'इसी लिए तो मैं भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज के पास आया हूँ, परन्तु अब तो वह रहे नहीं। तो मैं क्या करूँ? तुंगभद्रा के अतिरिक्त मेरे लिए और स्थान ही कहाँ है?'

'भगवान कालमुख गये, परन्तु वह अपने साथ विजयधर्म-साम्राज्य को तो लेते नहीं गए। इस संसार में कोई मनुष्य कभी मरता नहीं। अपने बाद वह अपने कार्यों में, अपने उत्तराधिकारियों में, अथवा अपने द्वारा छोड़े हुए राग-द्वेषों में व्याप्त हुआ जीवित रहता है।'

'महामंत्रीजी, आपके इस सारे ज्ञान का मेरे लिए उपयोग ही क्या है?'

'सच्ची बात का ज्ञान सदैव उपयोगी होता है। वह सदा काम आता है। मत भूलो कि तुम्हारी भी उपयोगिता है।'

'उपयोगिता ? मेरी ?'

'हाँ।' माधव पंडित ने कहा, 'सोमेश्वर दुर्गपाल कहाँ हैं ?'

"जी, यहीं उपस्थित हूँ !'

'आप योगिराज को ले जाइए और किसी पांचाल को बुलवाकर इनकी कड़ियाँ कटवा दीजिए।' फिर योगिराज सिंगी की ओर देखकर माधव पंडित ने कहा, 'योगिराज, आप विश्राम करें। मन को दृढ़ और आस्थावान करें। राय हरिहर के अन्तिम-संस्कार और भगवान की समाधि की क्रियाविधियो से निवृत्त होने के बाद हम पुनः मिलेंगे।'

'जी, बहुत अच्छा।'

जब सोमेश्वर योगिराज सिंगी को ले चला तो माधव पंडित ने कहा—दुर्गपाल, जब आप योगिराज को मेरे पास लायें तो उस पूरण कन्याली को भी साथ लेते आइएगा।

'कौन, पूरण ?' योगिराज बोल उठे, 'वह यहाँ कहाँ से ? वह तो महा उस्ताद है।'

'आप मदुरा हो आये हैं इसलिए उसे आपने वहाँ देखा तो होगा ही ?'

'देखा क्यों नहीं ? देखा है और मैं उसे खूब अच्छी तरह जानता भी हूँ। बड़ा उस्ताद है वह। उससे बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है, महाप्रधानीजी।'

प्रत्युत्तर में माधव पंडित केवल मुस्करा दिये, परन्तु उनकी मुस्कराहट का मर्म कोई जान नहीं सका—आगामी साठ वर्षों तक उनकी उस मुस्कराहट का मर्म कोई समझ भी नहीं सकता था।

९. वैशाख सुदी अष्टमी का मध्याह्न

योगिराज सिंगी को लेकर सोमेश्वर चला गया। उनके पीछे योगिराज की पालकी और उसके कहार तथा पार्श्वद भी चले गए। अब उसकी नेकी

पुकारनेवाले कोई चोबदार वहाँ नहीं थे। किसी की यह समझ में नहीं आया कि सिंगीवाली उस घटना को गम्भीर समझा जाये या केवल उपहासास्पद। यह अवश्य था कि उसके जाने के साथ ही वह तमाशा भी वहाँ से चला गया। उसके जाने के बाद किसी ने सोचा कि उस घटना से कालमुख भगवान की समाधि का गौरव खंडित हुआ है तो किसी ने सोचा कि संन्यासी के भूमिदाह में काम तो बहुत थोड़े लोगों के जिम्मे होता है शेष को केवल प्रतीक्षा करनी होती है और सिंगीवाले प्रसंग के कारण समय बड़ी सरलता से कट गया है।

लेकिन अब फिर वहाँ अवसर के अनुरूप शान्ति और गम्भीरता व्याप्त हो गई थी। वहाँ उपस्थित सभी लोगों को छत्र-विहीन हो जाने का परिताप होने लगा था। उस परिताप में ताजे लगे घाव की असह्य पीड़ा नहीं कसक थी। आकस्मिकता के विस्मय की मूर्छना नहीं, भवितव्यता की भीति सता रही थी।

रंगमंडप के नीचे प्रांगण में जो जहाँ बैठे या खड़े थे वहीं बैठे या खड़े रहे। रंगमंडप में नेतागण बैठे थे और आघात का आवेग जैसे-जैसे कम होता जाता था उनकी हृदयगत चिन्ताएँ और गाम्भीर्य बढ़ता जाता था। सब बैठे एक-दूसरे के सामने टुकुर-टुकुर देखते थे और फिर सब-के-सब रायराया बुक्काराय की ओर देखने लगते थे। और रायराया विद्यारण्य माधव की ओर देखने लगते थे। लोग इस आशा में रायराया की ओर देखते थे कि अब कार्यारम्भ का अधिकार उनका था और रायराया विद्यारण्य की ओर इसलिए देखते थे कि कार्यारम्भ का अधिकार रायराया का होते हुए भी कार्यारम्भ करना विद्यारण्य का धर्म था।

और विद्यारण्य माधव निजमन्दिर के बन्द द्वारों की ओर देख रहे थे। क्योंकि अब जो कुछ भी करने को था वह उन बन्द द्वारों के पीछे से ही आरम्भ किया जाने को था। उन बन्द द्वारों के पीछे चारों समयों के आचार्य गये हुए थे। राजगुरु भी गये थे। महाकरणाधिप दादैया सोमैया भी गये थे। और उनमें से कोई भी लौटकर बाहर नहीं आया था और न अभी तक द्वार खुले थे।

सोमेश्वर अवश्य उन द्वारों को दो-एक बार खोलता-मूँदता उनसे आया-गया था। परन्तु हर बार उसने अपने पीछे द्वारों को सावधानीपूर्वक बन्द कर दिया था। वैसे उसके आने-जाने को लोगों ने विशेष महत्व इसलिए नहीं दिया, कि हाल ही में जो दो अनिच्छित घटनाएँ वहाँ घटी थीं उनके नियंत्रण का दायित्व, उस स्थान का दुर्गपाल होने के नाते, सोमेश्वर पर ही था।

अन्त में वह द्वार खुला। खुले द्वारों की राह एक व्यक्ति हाथ में थाली लिये बाहर निकला। इस थाली में कपड़े से ढकी हुई कोई वस्तु रखी थी। वह आकर विद्यारण्य माधव और रायराया के बीच में खड़ा हो गया और उसने थाली पर ढके हुए वस्त्र को धीरे से खींच लिया।

थाली में कालमुख भगवान का मोम का बना मस्तक रखा था। कारीगर ने समाधिस्थ भगवान कालमुख के मुख की मोम में यथावत आकृति अंकित कर दी थी।

मोम की उस प्रत्याकृति को देखकर रायराया चकित हो उठे। तब विद्यारण्य माधव ने स्पष्टीकरण किया—राजन्। यह व्यक्ति बड़ा ही कुशल पंचकारक है। भगवान विरूपाक्षदेव की सोने की, चाँदी की और काँसे की मुद्राएँ इसी ने बनाई हैं। अब यही भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज की प्रतिमा भी निर्मित करेगा। इसी लिए इसने भगवान के मस्तक और मुख की मोम मे प्रत्याकृति बना ली है। इस पंचकारक का नाम है लाखान्ना मुद्गल।

'भगवान की प्रतिमा कब तक तैयार हो जायेगी?' रायराया ने पूछा।

'राजन्, कम-से-कम छः महीने तो लग ही जायेंगे।'

'तो क्या तब तक समाधि प्रतिमा-विहीन रहेगी?'

'नहीं राजन्। आज सायंकाल तक मिट्टी की प्रतिमा बनाकर यहाँ प्रस्थापित कर दी जायेगी। वर्षाकाल के आरम्भ तक वह प्रतिमा यहाँ विराजमान रहेगी। इस बीच संगमरमर की एक दूसरी प्रतिमा बनाकर यहाँ प्रतिष्ठित कर दूँगा। काँसे की प्रतिमा पूरी होते-होते छः महीने लग जायेंगे।' लाखान्ना ने कहा।

'तो फिर ऐसा ही हो। भगवान कालमुख की प्रतिमा ऐसी होनी चाहिए जो हम सब को और हमारे बाद युगों-युगों तक दर्शन करनेवालों को अनुप्राणित करती रहे। जल्दी तो सभी को है, परन्तु तुम अपनी कला में कोई न्यूनता मत रहने देना। भगवान की प्रतिमा उनके गौरव के अनुरूप ही होनी चाहिए। तुम अपना पूरा समय लेकर ही मूर्ति निर्माण करना।'

सिर झुकाकर पंचकार ने थाली पर पुनः वस्त्र ढका और वहाँ से चला गया।

उसके जाने के थोड़ी ही देर बाद द्वार पुनः खुला और राजगुरु ने रायराया के साथ सब लोगों को अन्दर आने की अनुमति दी।

थोड़ी ही देर में कालमुख भगवान को समाधि दे दी गई। वह पद्मासन लगाये थे। और फूल, अक्षत, अबीर और गुलाल से उनकी देह ढक गई थी। पहली मिट्टी राजगुरु ने दी, उनके बाद धर्माचार्यों ने, फिर रायराया ने, तब विद्यारण्य ने और उसके बाद एक-एककर सभी दुर्गपालों, रायसों, नायकों, आदि ने। इन सब राजपुरुषों के बाद जनसाधारण ने भी समाधि में मुट्ठी-मुट्ठी मिट्टी डाली। प्रत्येक व्यक्ति मिट्टी डालता और समाधि-स्थान को नमस्कारकर आगे बढ़ जाता। थोड़ी देर में समाधि-गह्वर धरती के समतल हो गया। यह तो कोई नहीं जानता था कि भगवान कालमुख विद्याशंकर की उम्र कितनी थी; परन्तु यह सभी जानते थे कि वह लगातार अस्सी वर्षों से तपस्या कर रहे थे और आज उनका वह तपःपूत शरीर सदा के लिए धरती के अन्दर समा गया था। फिर समाधि-स्थान पर फूल चढ़ाये जाने लगे और देखते-देखते वहाँ फूलों का ढेर लग गया।

उधर राय हरिहर की अन्तिम यात्रा का विमान भी तैयार हो गया था। केवल उनका मुँह खुला था, शेष समस्त देह फूल, गुलाल और अबीर से आच्छादित थी। उदयादित्य, विनय चालुक्य, गोपभट्टी और मल्लिनाथ ने विमान को पहला कन्धा दिया। विद्यारण्य का भाई सायन अग्नि लेकर आगे चला। वेदमंत्र गाये जाने लगे। स्तोत्रों और सूत्रों का पाठ होने लगा।

विमान उठा और श्मशान-यात्रा तुंगभद्रा नदी के किनारे की ओर बढ़ चली। पीछे-पीछे अन्तिम-संस्कार में सम्मिलित होनेवाले लोगों की पंक्ति

सर्पराज की भाँति हिलती-डुलती चल रही थी। मन सभी के शोक-सन्तप्त थे। हृदय सभी के भावी चिन्ता से व्यथित हो रहे थे। अभी तक विजयधर्मराज्य के अन्तर्गत बसनेवाले विभिन्न सम्प्रदायों को चार व्यक्ति एक सूत्र में बाँधकर रखे हुए थे। उन चारों में एक थे राजसंन्यासी बल्लालदेव, दूसरे थे भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज, तीसरे थे महामंडलेश्वर राय हरिहर और चौथे थे महाकरणाधिप दादैया सोमैया। इनमें से एक की अकाल मृत्यु हुई। दूसरे ने समाधि ले ली, तीसरे ने आत्मविसर्जन किया और चौथे ने क्षेत्रसंन्यास लिया। मानो एक से सौ तक की गिनती पूरी हो गई, पाटी पर लिखा पोंछ डाला गया और फिर एक-दो से गिनती आरम्भ करने की नौबत आ गई।

आनेगुण्डी के दुर्ग को दाहिनी ओर और पम्पापति के मन्दिर को बायीं ओर रखकर श्मशान-यात्रा नदी-तट की ओर चली जा रही थी। नदी के किनारे बेर का एक विशाल वृक्ष था। लोगों में यह विश्वास प्रचलित था कि इसी बेर के वृक्ष के नीचे पुरातन काल में शबरी की झोपड़ी थी; और उसने यहीं बेर तोड़कर भगवान रामचन्द्र के लिए रख छोड़े थे। वह मुग्धा किशोरी थी तभी से रामचन्द्र की प्रतीक्षा करने लगी थी। रोज बेर तोड़कर रख लेती और बैठी प्रतीक्षा किया करती। लेकिन भगवान रामचन्द्र ने उसे जब दर्शन दिये तो वह बिलकुल बड़ी हो गई थी। जहाँ वह भगवान के लिए बेर इकट्ठे कर के रखा करती थी वहीं बेर का यह नया पेड़ खड़ा हो गया था और तब से चला आ रहा था। शबरी के इस पवित्र बेर-वृक्ष के तले राय हरिहर को अग्निदाह देने का निश्चय किया गया। चन्दन की चिता वहाँ बना दी गई थी, जो अपने ऊपर शयन करनेवाले की मानो उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी।

नदी के उस पार घोर दंडकारण्य था, जिसमें किरात और शम्बूक निवास करते थे। नदी के इस पार दूर-दूर तक कमर के बराबर ऊँची झाड़ियाँ फैली हुई थीं, मानो उस पार का जंगल नदी के इस पार आने का प्रयत्न कर रहा हो। श्मशान-यात्रा का मार्ग इन झाड़ियों के बीच से होकर जाता था।

सहसा एक झाड़ी गुर्राहट और चीत्कारों के तीव्र स्वर से गूँज उठी।

उसके समीप होकर जानेवालों के पाँव क्षण-भर के लिए रुक गए। सबने यही सोचा कि कहीं तुरुष्क तो नहीं आ गए।

दूसरे ही क्षण झाड़ी के अन्दर से खून का प्यासा पर डरा हुआ एक शेर गुर्राता हुआ बाहर निकल आया। लेकिन वह श्मशान-यात्रा में सम्मिलित होनेवालों को देखकर नहीं गुर्रा रहा था और न वह उन पर झपटा। उसके सारे शरीर से खून की धाराएँ बह रही थीं। झाड़ी के अन्दर से बाहर आकर वह झाड़ी की ओर मुँह करके खड़ा हो गया और अपनी दुम को फटकारता, दाँत दिखाता, गुर्राता रहा। थोड़ी ही देर में झाड़ी के अन्दर से लगभग पन्द्रह जंगली कुत्तों की एक टोली निकली और जोर से भूँकते हुए उन कुत्तों ने शेर पर दोनो ओर से हमला कर दिया।

एक कुत्ता दौड़ता हुआ ठीक शेर के सामने आया और जैसे ही शेर ने झपटकर वार किया वह फुर्ती से कतराकर एक ओर को हट गया। शेर इस असफलता पर झुँझलाकर जोर से दहाड़ उठा और कुत्तों ने दोनो ओर से लपककर उसकी दोनो बाजुओं में अपने दाँत और पंजे गड़ा दिये। एक कुत्ता उसकी दुम से लिपट गया। दो कुत्तों ने उसके पिछले दोनो पाँव पकड़ लिये। शेर ने उनसे छुटकारा पाने के लिए जोर की छलाँग लगाई। दोनो कुत्तों के मुँह से उसके पाँव छूट गए लेकिन दुमवाला कुत्ता चिपका ही रहा। जैसे ही शेर जमीन पर गिरा, कुत्तों ने फिर दोनों ओर से उस पर हमला कर दिया और उसकी पीठ पर अपने दाँत और पंजे गड़ा दिये। शेर ने करवट लेकर दो कुत्तों को अपने नीचे कुचल दिया और फिर छलाँग लगाई। इस बार उसने पंजे से एक कुत्ते की पीठ तोड़ दी और दूसरे कुत्ते को अपने दाँतों से फाड़ डाला, लेकिन जैसे ही वह जमीन पर गिरा शेष बचे कुत्तों ने फिर उसकी पीठ पर हमला बोल दिया। इस प्रकार बड़ी देर तक शेर और कुत्तों में तुमुल युद्ध होता रहा। अन्त में एक छोटे-से कुत्ते ने, जो अब तक दूर खड़ा था, लपककर शेर का गला पकड़ लिया और दूसरे सब कुत्तों ने एक साथ उस पर हमला बोल दिया। चीख-पुकार और गुर्राहट से सारा वातावरण भर गया। हवा में शेर और कुत्तों के बाल उड़ने लगे। खून के परनाले बह चले

और गुर्राते-दहाड़ते शेर ने अन्त में दम तोड़ दिया। कुत्तों ने उसकी सारी पीठ को चीर-फाड़ डाला था।

लोग खड़े शेर-कुत्तों के इस संग्राम को विस्मित हो देख रहे थे।

विद्यारण्य माधव ने उन्हें सम्बोधितकर कहा—भाइयो, देखा आप लोगों ने ? इन कुत्तों ने शेर को हमारे सामने फाड़ डाला। हम भी इसी प्रकार तुरुष्कों को पराजित करेंगे। महामंडलेश्वर की श्मशान-यात्रा के समय इस दृश्य को हमें एक शुभ संकेत ही समझना चाहिए। जंगली कुत्तों ने हमें संघ-बल की महिमा अच्छी प्रकार समझा दी है। जीवन में और युद्ध में भी हम इस बात को समझें, इसका अनुसरण करें तो हमारी विजय निश्चित है। हमें इसी स्थान पर महामंडलेश्वर राय हरिहर का दाह-संस्कार करना चाहिए। महामंडलेश्वर के अन्तिम संस्कारों के लिए इससे अधिक उपयुक्त स्थान और क्या होगा। और यहीं हमें अपने विजयधर्म-साम्राज्य की राजधानी का शिलारोपण भी करना चाहिए। संघ-बल के विजय की यह संकेतभूमि हमें सदा संघ-बल की महिमा समझाती रहेगी।

इतना कहकर माधव पंडित थोड़ी देर तक आसमान की ओर देखते रहे और फिर बोले—जहाँ भगवान कालमुख की समाधि है वहाँ हमारे नगर का पहला दुर्ग बनेगा और जहाँ संघ-बल के द्वारा शेर की मृत्यु हुई—उसकी अन्तिम पराजय हुई—वहाँ हमारे विजयधर्म-साम्राज्य की अथवणे (मुख्य शासकीय कार्यालय) रहेगी। जिस जगह शेर झाड़ी से बाहर निकला था वहाँ हमारा दूसरा दुर्ग होगा। कुल सात दुर्ग हम इस नगर में बनायेंगे। विजयधर्म-साम्राज्य की यह राजधानी विजयनगर कहलाएगी। शबरी की श्रद्धा, हनुमान का बल, कालमुख भगवान का आदर्श, सोमेश्वर दुर्गपाल की राजभक्ति, योगिराज सिंगी का प्रायश्चित—यह सब सात दुर्गों के हमारे इस नगर में मूर्तिमान हो। जब तक इस नगर के निवासियों में संघ-बल और आत्मश्रद्धा रहेगी कोई यहाँ की एक ईंट भी नहीं खिसका सकेगा। जब तक यह नगर रहे यहाँ बसनेवाली विविध जातियाँ, विविध सम्प्रदाय और विविध वर्ण अपने पारस्परिक हितों और आचार-व्यवहारों को गौण तथा राष्ट्रधर्म एवं संघ-बल को ही प्रमुख मानते रहें।

माधव इस तरह बोल रहा था मानो किसी आकाशवाणी को सुनकर उसे प्रतिध्वनित कर रहा हो। फिर वह नीचे झुका। एक चुटकी धूल लेकर उसने रायराया बुक्काराय के कपाल पर तिलक लगाया और शेष धूल को अपने सिर पर चढ़ा लिया।

वैशाख सुदी अष्टमी का वह मध्याह्न इस प्रकार स्मरणीय हो गया।

१०. अमीर ग़ाज़ी हसन गंगू

भगवान कालमुख विद्याशंकर के समाधि-स्थान पर उनकी मिट्टी की प्रतिमा विराजमान थी। उसके बनाने में पंचकार ने अपनी समस्त कला और कारीगरी लगा दी थी। निर्जीव मिट्टी की मूर्ति बिलकुल सजीव प्रतीत होती थी। दर्शक को लगता था मानो विद्याशंकर भगवान अभी ही समाधि से जागकर अपनी आँखें खोलेंगे।

समाधि-स्थान के ठीक सामने बाँस और मिट्टी की एक पर्णकुटी थी जो रातोंरात खड़ी कर दी गई थी। उसके ऊपर का छप्पर बाँस का था। वह इतनी स्वाभाविक लग रही थी मानो रात में स्वयं धरती फोड़कर निकल आई हो।

उस पर्णकुटी के अन्दर का सामान भी बिलकुल ही सादा था। एक कोने में पानी के लिए मृतिका घट, उसके पास एक भिक्षा-पात्र, जैसा कि जैन श्रमण रखा करते हैं, और एक कमंडलु। सामने काठ का तख्ता था, जिस पर एक चटाई बिछी थी और उस पर दीवाल से अपना शरीर टिकाये एक हाथ पर मस्तक रखे दादा सोमनाथ लेटे थे।

यह दादा सोमनाथ समस्त दक्षिणापथ में दादा सोमैया अथवा दादैया सोमैया के नाम से प्रसिद्ध थे। मदुरा के यह त्यागवीर छोटी-सी गरुड़ सेना लेकर निकल पड़े थे और इन्होंने मदुरा के भूतपूर्व सुल्तान जलालुद्दीन अहसनशाह के नाकों दम कर दिया था। अतुलित पराक्रम और वीरता के कारण दक्षिणापथ की जनता इन्हें भगवान शंकर का रुद्रावतार मानती थी। यह कर्नाटक के होयसल राजा वीर बल्लालदेव के तीसरे जामाता थे।

तुरुष्कों के भक्त तो नहीं पर उन्हें भला समझनेवाले, उनकी ओर से आँख मूँदे रहनेवाले अपने श्वसुर बल्लालदेव की आँखें सबसे पहले इन्हीं ने खोली थीं। साम्प्रदायिक विष को निर्मूल करने के लिए इन्होंने अपने हाथों अपनी आँखें निकाल फेंकी थीं। ऐसे थे कर्नाटक के महाकरणाधिप—भगवान कालमुख विद्याशंकर के विजयधर्म-साम्राज्य के महाकरणाधिप—दादैया सोमैया। उनके जीवन का एक-एक दिन भूतकाल की ओजपूर्ण कार्यवाहियों से देदीप्यमान और प्रेरणादायी था। किंवदन्तियों और लोक-कथाओं ने उन्हें लगभग देवताओं-जैसा ही रूप प्रदान कर दिया था। ऐसे थे ये विजयधर्म के भीष्म पितामह दादैया सोमैया। उन्होंने अपने जीवन में हलाहल विष और मधुरतम अमृत दोनो को ही पचाकर उसका समुचित उपयोग किया था और इस समय वह दीवाल से सिर टिकाये लेटे हुए थे।

उन्हें देखकर यह निश्चित करना लगभग असम्भव ही था कि वे चिन्तन कर रहे हैं या शान्तिपूर्वक लेटे हैं, जागते हैं या सोये हुए हैं।

थोड़ी देर बाद पर्णकुटी के द्वार पर किसी की पगध्वनि सुनाई दी। आगन्तुक ने पर्णकुटी की देहरी पर पाँव रखते हुए कहा—दादा, नमस्कार।

दादा को आवाज कुछ अपरिचित-सी लगी। इस स्वर को पहचानने के लिए उन्होंने मन को एकाग्र किया और फिर पूछा—कौन? माधव विद्यारण्य तो नहीं?

'जी हाँ, दादा, मैं ही हूँ।'

'आओ वत्स, बैठो। जरा उस आसन को ले लो।'

माधव ने बैठकर कहा—दादा, मैं आपकी आज्ञा लेने आया हूँ।

'आज्ञा? तू पागल तो नहीं हुआ? तुझे आज्ञा नहीं आशीर्वाद मिलना चाहिए।'

'यदि आशीर्वाद दें तब तो आपकी बड़ी कृपा होगी।'

'क्यों?'

'मैं यहाँ, आपके चरणों में ही, रहने के लिए आया हूँ।'

दादा ने हँसकर कहा—अरे पगले, मेरे चरण में रहने आया, यह तो

बड़ी अच्छी बात है। लेकिन जानता है मेरे चरण कहाँ हैं? सारा विजयधर्म-साम्राज्य ही मेरे चरण हैं।

'दादा, मेरे अविनय को क्षमा करें। परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि या तो आपने अपने-आपको हम से अलग कर लिया है या आप मुझे अपने से अलग कर रहे हैं। दादा, ऐसा क्यों? क्या आपको ऐसा लगता है कि माधव राज्य का अथवा सत्ता का लोभी हो गया है?'

'पढ़ा परन्तु गुना नहीं वत्स! कालमुख भगवान तेरी यह बात सुन पायें तो उन्हें कितना दुःख हो? मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या तुझे मुझमें राज्य अथवा सत्ता का लोभ या दोनो की अभिलाषा दिखाई देती है? या इस तरह की कोई भावना आज पनपती हुई प्रतीत होने लगी है?'

'मुझे विश्वास है दादा, कि आप में ऐसा कोई लोभ नहीं है; और अपनी ओर से यह विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे मन में भी ऐसी कोई लालसा नहीं; इसी लिए तो चाहता हूँ कि हम दोनो इस कुटी में साथ-साथ रहें और आनन्द का अनुभव करें। यहाँ रहते हुए मुझे आपकी सेवा करने का अवसर और लाभ अनायास ही प्राप्त होगा।'

'माधव, जरा ऊपर तो देख। मेरी करणाधिप की मुद्रा वहाँ रखी है। क्या तू मूझे उसको फिर से पहनाना चाहता है?'

'दादा, आपने उसे अपने सिर से उतारा ही किस लिए?'

सोमैया हँस पड़ें। वह हँसी ऐसी थी मानो समुद्र की अन्तिम लहरें किनारे से आकर टकराई हों। 'हा-हा-हा! तेरा विषाद अब मेरी समझ में आया! तुझे यही पूछना था तो सीधे से क्यों नहीं पूछ लिया वत्स?'

'अब सीधे-सीधे ही पूछता हूँ दादा, आपने इस मुद्रा का अचानक यों परित्याग क्यों कर दिया? मेरे ऊपर आपका इतना रोष किस लिए? मैं अपने गुरु, भगवान कालमुख की शपथ लेकर कहता हूँ कि महाप्रधानी बनने का मेरे मन में कभी कोई संकल्प या विकल्प नहीं था और न मैंने कभी ऐसी आकांक्षा ही की थी।'

'अरे पगले, जिस दिन भगवान कालमुख शिक्षा-दीक्षा के लिए सात शिष्यों को अपने साथ ले गए, उसी दिन से मैं इस अवसर की प्रतीक्षा कर

रहा था। मैं जानता था कि सात शिष्यों में कोई तो ऐसा निकलेगा जो विजयधर्म के बोझ को उठा सकेगा। तू ऐसा ही सुपात्र निकला। अब यह बोझ तेरे कन्धों पर है। मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ कि रायराया के विचार और मेरा संकल्प एक-जैसे रहे।'

'लेकिन दादा, मेरे ही साथ ऐसा क्यों?'

'इसका भी कारण है वत्स। तू उम्र में अवश्य छोटा है, परन्तु विद्या की दृष्टि से वृद्ध है। अवश्य ही तेरी विद्या अभी व्यवहार-शुद्ध नहीं हो पाई है, परन्तु तुझमें विद्या तो है। मेधा और प्रज्ञा भी है। इसलिए दूसरों को मेरा व्यवहार भले ही हास्यास्पद लगे तेरे लिए तो वह विचारणीय ही होना चाहिए।'

'जी।'

'तो वत्स, मेरी बात को ध्यानपूर्वक सुन। इस दुनिया में संकल्प के अतिरिक्त और कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं है। संकल्प ही एकमात्र सत्य है, वास्तविक प्रज्ञा भी वही है। उसके अतिरिक्त शेष सब माया है। जितने ही तुम माया में भटकोगे संकल्प का बल क्षीण होगा। और विजयधर्म की सफलता के लिए—और किसी भी लोकधर्म अथवा लोकनीति की सफलता के लिए संकल्प का बल ही आवश्यक होता है।'

'दादा, जरा विस्तार से समझाइए।'

'हाँ, समझाता हूँ। तुझे तो समझाकर ही कहना होगा, क्योंकि विजय-धर्म की धुरा, तू चाहे तो भी और न चाहे तो भी, अब तुझी को वहन करना है। सुन, हजारों-लाखों लोग जब अनेक वर्षों से मार्ग भूलकर भटक जाते हैं तो उन्हें सच्चे मार्ग पर लाने के लिए, उनका मार्गदर्शन करने के लिए कभी-कभी महापुरुष अवतीर्ण होते हैं। वे ईश्वर का अवतार न हों तो भी अवतारिक कृत्य तो अवश्य करते हैं। और संकल्प-बल से वे लोगों को सच्चा मार्ग दिखा पाते हैं। बिना संकल्प के इस जगत में कुछ नहीं होता। संकल्प है तो सब-कुछ है।'

'यह तो, दादा, शंकर-मत की बात हुई। इस बात का आपके मुद्रा-त्याग से कोई सम्बन्ध हो तो वह मेरी समझ में नहीं आता। हाँ, सहसा

आपके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ हो तो कह नहीं सकता। यदि महासती मालादेवी का अवसान आपके इस वैराग्य का कारण है तो दादा, क्या ऐसे वैराग्य को श्मशान-वैराग्य नहीं कहेंगे? आपने मुझे वत्स कहा है, इसलिए इतने अधिकार से यह पूछने की धृष्टता कर रहा हूँ।'

'नहीं माधव, न यह वैराग्य है न श्मशान-वैराग्य। सच में तो मैंने बड़ी-से-बड़ी माया को अपने गले लगाया है। इस ऊपर से दिखनेवाले वैराग्य और त्याग के नीचे मेरा बहुत बड़ा लोभ है।'

'लोभ और आपको? नहीं दादा, आपको कोई लोभ हो ही नहीं सकता और यदि है तो वह मुझे दिखाई नहीं देता।'

'माधव, मेरा लोभ क्या है, यह मैं तुझे बताता हूँ। अनादिकाल से आर्यों ने प्रभूत चिन्तन-मनन करके जो निष्कर्ष निकाला है और जिसे तू शंकर का मत कहता है वह यही है कि हमें अपने संकल्प से जरा भी विचलित नहीं होना चाहिए—संकल्प से विचलित नहीं होने का नाम ही संकल्प-सिद्धि है। लोग शंकर के मत को मायावाद कहते हैं, परन्तु वास्तव मे उसे संकल्पवाद कहना चाहिए। इस दुनिया में अनादिकाल से तंत्र और मंत्र, बुद्धि और प्रज्ञा, साधना और सिद्धि, विज्ञान और ज्ञान, लौकिक भाषा में कहें तो राजनीति और लोकनीति का युक्तियुक्त समन्वय ही एक बहुत बड़ी समस्या रहा है। दुनिया के विचारक और दार्शनिक इस महान प्रश्न को सुलझाने में निरन्तर व्यस्त रहे हैं। सांख्य और योग, शास्त्र और व्यवहार, जीव और प्रकृति, तंत्र और मंत्र, देवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति का संघर्ष सदैव मानव-सृष्टि की चिन्ता और उस संघर्ष का निवारण दुनिया के विचारको के अनुशीलन का मूल विषय रहा है। पहले विचार और उसके बाद व्यवहार या पहले व्यवहार और तत्पश्चात् विचार—सनातन सत्य क्या है—पहले विचार या पहले क्रिया—इस पर वेदकाल के ऋषियों ने विचार किया, भगवान कपिल मुनि ने विचार किया। उन्होंने सनातन सत्य के रूप में एक ओर ईश्वर और दूसरी ओर नवद्रव्यों की स्थापना की। उपनिषदकार उनसे भी आगे बढ़े और उन्होंने समस्त चराचर सृष्टि को तीन गुणों में

विभाजित किया—त्रिगुणात्मक बताया। भगवान महावीर उनसे भी आगे बढ़े और उन्होंने त्यागवाद की स्थापना की। उन्होंने कहा कि जितने व्यक्ति हैं सत्य के उतने ही पहलू हो सकते हैं; इसलिए अपने माने हुए सत्य के आग्रह के लिए दूसरे के माने हुए सत्य को, जिसे हम असत्य समझते हैं, छुड़वाने का प्रयत्न हिंसा है, पाप और अकार्य है; क्योंकि तुम मानो या न मानो, जिसे तुमने दूसरे का असत्य मान लिया है वह सत्य भी हो सकता है। भगवान बुद्ध ने इससे आगे चलकर इस मत का प्रतिपादन किया कि सर्वसाधारण समाज की मनीषा ही सत्य है, पंच ही परमेश्वर है, इसके अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं—ईश्वर है ही नहीं। उनके बाद आया द्वैतवाद। उसने कहा, पुरुष है और प्रकृति है, संकल्प है और जिस पर संकल्प आजमाया जाता है वह जड़ पदार्थ है अर्थात् एक चेतन है और दूसरा जड़ है। चेतन और जड़, गाय और घास के उदाहरण से यह बात अच्छी तरह समझ में आ जायेगी। गाय हुई चेतन और घास हुआ जड़, लेकिन वह जड़ घास गाय के सम्पर्क में आने से अपने मूल स्वरूप का परित्याग कर नये रूप में आ जाती है। घास का दूध बन गया। दूध दही बना। चेतना के चिन्तन से ही दही बनता है। जो अधिक चिन्तनशील होगा वह दही को बिलोकर छाछ बनायेगा और उसमें से मक्खन निकालेगा। एक पदार्थ में गति का समावेश होने से उसके रूप का सतत परिवर्तन होता रहेगा। जो गृहिणी और भी अधिक चिन्तनशील होगी वह केवल मक्खन बनाकर नहीं रह जायेगी। मक्खन को तपाकर घी और घी से मिष्ठान्न बनायेगी। मिष्ठान्न के बाद भी चिन्तन की समाप्ति नहीं हो जाती। मिठाई खाने के बाद उसका मल बनेगा। जो चिन्तनशील हैं उनके लिए मल खाद का रूप ग्रहणकर भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ायेगा। खाद से अन्न बनेगा और अन्न से प्राण बनेगा। चिन्तन संकल्प का मनोव्यापार और संकल्प का ही विशिष्ट गुण है। जड़ वस्तुएँ चेतन और उसके चिन्तन से सम्पृक्त होकर स्वयं चेतन बन जाती और चेतन में विलीन होती हैं। भगवान शंकर ने सत्य ही कहा है कि इस जगत् में चेतन ब्रह्म ही सत्य है और शेष सब माया। इसी लिए हमारे धर्मशास्त्रों में सभी सामाजिक व्यवहारों एवं यज्ञ-याग आदि की सफलता के लिए सतत चिन्तन करनेवाले

चिन्तनपरायण ऋषियों और गुरुओं की आवश्यकता पर इतना बल दिया गया है।'

'दादा, आपकी इस बात का अभिप्राय अब भी मेरी समझ में नहीं आया। सिद्धान्त तो मैं भी समझता हूँ परन्तु आज के प्रसंग में इसका उपयोग क्या है, प्रयोजन क्या है—यह मेरी समझ में नहीं आया।'

'वही तो मैं तुझे बताने जा रहा हूँ। बचपन से ही मेरी यह बड़ी अभिलाषा थी कि दक्षिणापथ की संस्कृति को, संस्कृति की धारा को तुरुष्कों के आक्रमण से अविच्छिन्न रखने और समाज की रक्षा करने के लिए पुरुषार्थ किया जाये। वह मैंने जीवन-भर किया। मेरे उस पुरुषार्थ और प्रयत्न के फलस्वरूप ऐसी ही मनोभिलाषावाले अनेक व्यक्ति, सभी वर्णों और सम्प्रदायों में से, सैकड़ों की संख्या में, निकल आये। उन सभी व्यक्तियों को एक वीतराग चिन्तनशील तपस्वी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ—उस तपस्वी के चिन्तन की निर्मल ज्योति ने उन सबके पथ को आलोकित किया! याद करो माधव, उस दिन को जब तुम भगवान कालमुख के वारिक (उत्तराधिकारी) बनकर उनसे शिक्षा ग्रहण करने के लिए गये थे। उस दिन से लेकर आज तक कितना कुछ हुआ है। सहस्रों वर्षों से इस प्रदेश में साम्प्रदायिक वैमनस्य चला आता था। चारों सम्प्रदाय एक-दूसरे का गला काटने में लगे थे। सभी सम्प्रदायों की यह मान्यता बद्धमूल हो गई थी कि दूसरे सम्प्रदाय की निन्दा किये बिना, उसे गिराये बिना हमारी उन्नति और बढ़ती हो ही नहीं सकती। जिस प्रकार मनुष्य अपने पहनने के वस्त्र बदलता है उसी प्रकार समयाचार्य सिद्धान्तों को बदलते रहते थे। एक समय (धर्म) का परित्याग कर दूसरे समय को अपनाना इतना सरल हो गया था जितना पुराने उपानह को फेंक-कर नये को धारण करना। इस प्रदेश में जितने दुर्ग और जितने बन्दरगाह हैं उतने ही स्वतंत्र राजा यहाँ पर हो गए थे और उनमें से प्रत्येक सप्तसामन्त चक्रचूडामणि बनना चाहता था। एक प्राणान्तकारी उन्माद ही इस प्रदेश में व्याप्त हो गया था। स्थिति इतनी विषम हो उठी थी कि कोई समझदार व्यक्ति जीवित रहना चाहता तो अन्यों की भाँति उन्माद-ग्रस्त होकर ही जीवित रह सकता था।

'और उस स्थिति की आज से तुलना करके देखो। आज चारों परम्पराओं के नायक एक हो गए हैं। चारो समय के आचार्य एक ही स्थान और एक ही सभा में विराजते हैं। चौरासी दुर्गों के दुर्गपाल आज एक ही रायरेखा की वन्दना करते हैं। एक सौ आठ बन्दरगाह आज, एक ही शासन के अन्तर्गत, एक ही देश की ग्रीवा में, मौक्तिक माला की भाँति सुशोभित हैं।

'मैं यह नहीं कहता कि इस भगीरथ कार्य के पीछे दुर्गपालों का प्रयत्न नहीं, राजसंन्यासी का त्याग नहीं, सामान्य जनहित के लिए राय हरिहर की लोकोत्तर दूरदर्शिता एवं दीर्घवृत्ति नहीं और स्वयं मेरा अपना आदर्श नहीं। यह सब-कुछ है, परन्तु इन सबसे अधिक और विशेप भगवान कालमुख का सकल्प है। हमने रायरेखा अंकित की। राजा, राज्य, राजकर्मचारी और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों, कर्त्तव्यों और अधिकारों को भी निश्चित किया। अब न तो कोई पुराने अधिकारों का दावा उपस्थित कर सकता है और न नये अधिकार माँग सकता है। समाज के निम्नतम स्तर से लेकर स्वयं राजा तक के अधिकार निर्धारित कर दिये गए हैं। और इन सब बातों का अन्तिम तथा राग-द्वेषातीत निर्णय करने का कार्य हमने राजगुरु और उनके धर्माधिकारियों को सौंप दिया है।

'यह सब हमने किया, और यह बहुत बड़ा काम हुआ। अभी तक किसी शासक और किसी शासन-तंत्र ने स्वेच्छा से न अपने और न जनसमुदाय के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का निर्धारण किया था। अभी तक तो राजा की इच्छा ही अन्तिम और सर्वोपरि रहती आई थी। हमीं ने सबसे पहले रायरेखा के द्वारा जनसमस्त को यह ज्ञान प्रदान किया और स्वयं भी प्राप्त किया कि वास्तविक धर्म एक है, वह राजा और प्रजा—सब के लिए समान है, राजा को भी उस धर्म के समक्ष नत होना और उस धर्म के शासन को स्वीकार करना पड़ता है। वत्स, जब तक रायरेखा जीवित रहेगी हमारा विजयधर्मराज्य और विजयनगर भी जीवित रहेगा, हमारा पुरुषार्थ यशस्वी होता रहेगा और हमारे समस्त प्रयासों-प्रयत्नों को भगवान का आशीर्वाद उपलब्ध होता रहेगा।

'और वत्स, यह सारा भगीरथ कार्य बिना किसी रक्तपात के सम्पन्न हो सका, इसका कारण भी तुम जानते हो ? इसका एकमात्र कारण है भगवान कालमुख का समाधि—तप—संकल्प। संकल्प स्वयं अशरीर है, परन्तु वह जड़ को चैतन्य में परिवर्तित कर देता है। संकल्प और चिन्तन से बड़ा और श्रेष्ठ कोई बल इस जगत में नहीं। चिन्तन और संकल्प की शक्ति के सामने कोई टिक नहीं सकता। जिनकी प्रज्ञा ऋतंभरा थी, जो वीतरागभयक्रोध और स्थितप्रज्ञ थे ऐसे विद्याशंकर महाराज के संकल्प ने ही हमारे महत् कार्य को सुगम किया है। आशा है अब तो तू मेरे कथन के अभिप्राय को समझ गया होगा।'

'जी हाँ, इस बात को तो मैं समझ गया कि संकल्प ही इस जगत में श्रेष्ठतम परिबल है। शंकराचार्य के अद्वैतवाद का मैंने भी अध्ययन किया है और इस बात को जानता हूँ कि केवल ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या है। शंकर मत के अनुसार, संकल्प के महान बल से ही ब्रह्म प्रतिपल जड़ पदार्थ का नितनूतन रूपान्तर करता रहता है। यह रूपान्तर इस प्रकार होता है कि जड़ पदार्थ का मूल रूप कौन-सा और मध्य रूप कौन-सा, इसे कोई जान नहीं पाता! प्रतिक्षण परिवर्तित होते रहनेवाले स्वरूपों के ही कारण शंकराचार्य महाराज ने इसे माया कहा है। प्रत्येक जड़ वस्तु संकल्प और चिन्तन के संसर्ग में आने पर रूपान्तरित होती हुई अन्त में प्राणरूप हो जाती है, और प्राण भी क्रमिक विकास को प्राप्त होता हुआ अन्ततोगत्वा संकल्प और चिन्तन में विलीन हो जाता है। शंकराचार्य के इस अद्वैतवाद की सत्यता केवल सिद्धान्त में ही नहीं व्यवहार में भी प्रतिक्षण प्रमाणित होती रहती है। बिलकुल निर्दोष प्रतीत होनेवाली जड़ वस्तु चिन्तन के परिपाक और संकल्प के परिणामस्वरूप समाज के लिए उपयोगी वस्तु—औषधि आदि में अथवा समाज का संहार करनेवाले पदार्थ—शस्त्रास्त्र एवं विष आदि में परिवर्तित हो जाती है। यह तथ्य तो हम सबका जाना-बूझा है। लेकिन यह बात अभी तब मेरी समझ में नहीं आई कि इसके लिए आपको हमसे अलग होने और निवृत्ति ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है ?'

'अरे पगले, क्या सच ही तू मेरे अभिप्राय को नहीं समझा ? समझ तो

अवश्य गया है, परन्तु या तो ममत्व के कारण, या लज्जा के कारण, अथवा शिष्टाचार के वश होकर तू न समझने का बहाना कर रहा है। बात वास्तव में यह है कि विजयधर्म के लिए, राग-द्वेष से, लोकापवाद, स्वार्थ और मोह-माया से परे रहकर चिन्तन और संकल्प करनेवाला कोई-न-कोई तो होना चाहिए। कम-से-कम एक व्यक्ति तो ऐसा होना चाहिए जो संकल्प और चिन्तन के कार्य को अपना जीवन-धर्म मानकर करता रहे। मैं अभिमान तो नहीं करता माधव, परन्तु मेरे राग-द्वेष कभी था ही नहीं, मोह-माया भी नहीं रही, स्वार्थ भी मुझमे नहीं था। जीवेषणा, पुरुषार्थ (महत्त्वाकाक्षा) और व्यवहार-धर्म को भी मैं छोड़ चुका हूँ। यह सच है कि मैं त्यागी नहीं, महात्मा नहीं, विद्वान भी नहीं, परन्तु विजयधर्म का संकल्प करने की पात्रता तो मुझमे अवश्य है। मालादेवी मुझे छोड़कर चली गईं, इसका मुझे कोई अफसोस नहीं; परन्तु उनकी मृत्यु के साथ ही मेरा संसार-योग भी समाप्त हो गया। ईश्वर ने मुझ पर यह बड़ी कृपा की कि मालादेवी अपने पीछे कोई परिवार नहीं छोड़ गईं, यदि छोड़ जातीं तो उस सन्तान के मोह में मेरा मन पिरोया रहता। उनके जाने के साथ मेरी आँखें भी गईं। माधव, उन्हीं के नेत्रों से मैं इस जगत को देखता और व्यक्तियों को नापता-परखता था। उनके नेत्रों पर मेरा अटल विश्वास था; उनकी दृष्टि ने कभी धोखा नहीं खाया, कभी भूल नहीं की। अब दूसरी आँखें मुझे मिल भी जायें तो वे माँगे की या उधार ली हुई प्रतीत होंगी। अब तो माधव, मुझे वानप्रस्थी हो जाने दे।

'हमारी जड़ें जम चुकी हैं, उन्हें उखाड़ना सरल नहीं है। अब तो यहाँ एक ऐसा बरगद फैलेगा जिसकी छाया-तले धर्म, समाज, शास्त्र, और संस्कृति का तपोवन निर्मित होगा, उसकी डाली-डाली पर पक्षी अपने घोंसले बनाएँगे। लकड़हारों से उसकी रक्षा करनी होगी। उसकी सार-सँभाल और संवर्द्धना के लिए अब चपल नेत्रों तथा शक्तिशाली भुजाओं की आवश्यकता है। मेरा धर्म तो अब केवल यह देखना है कि कहीं तुम हमारे रोपे हुए बिरवे को उखाड़ तो नहीं फेंकते, उसके तने से निकलती हुई शाखों की सुरक्षा तो करते हो और कहीं लकड़हारे तो उसे काट नहीं रहे हैं! बस, मेरा काम इसी की सतत चौकसी करते रहना है, इसी को निरन्तर जपते रहना है। इसलिए

माधव, तुम मुझे यहीं रहने दो। यहीं मुझे वानप्रस्थ करने दो। यह स्थान पवित्र है, हमारे लिए पूजनीय भी है। अब इस सम्बन्ध मे तुम एक शब्द भी नहीं बोलोगे, और न किसी दूसरे को ही कुछ कहने दोगे। तुम वास्तविक अधिकारी हो। इस कार्य और कर्त्तव्य के ही लिए भगवान कालमुख ने तुम्हें अपनी विद्या प्रदान की है, अपने आशीर्वाद दिये हैं। अब यह पुरुषार्थ तुम्हीं को करना होगा। इस उत्तरदायित्व का भार तुम्हीं को अपने पीठ और पुष्ट कन्धों पर वहन करना होगा। मेरी तुम्हें यही विज्ञप्ति है, तुमसे मेरी यही माँग और अपेक्षा है और तुम्हारे लिए मेरा यही आदेश है।'

'तो दादा, आपको भी मेरी एक शर्त माननी होगी।'

'कौन-सी शर्त ?'

'यह कि जब भी मैं आपके पास आऊँ आपको मेरे साथ शतरंज खेलनी होगी।'

'पगले, मैं प्रज्ञाचक्षु, वानप्रस्थ अब शतरंज क्या खेलूँगा !'

'दादा, आप भगवती मालादेवी के साथ प्रतिदिन शतरंज खेलते थे, यह बात मुझसे छिपी हुई नहीं है। आप प्रज्ञाचक्षु हैं और मुझे आपकी प्रज्ञा की ही आवश्यकता है। आप वानप्रस्थ हैं और मुझे आपके ज्ञान और अनुभव की ही आवश्यकता है। और मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपके साथ शतरंज खेलने से मुझे ये तीनों वस्तुएँ उपलब्ध होती रहेंगी। दादा, आप मेरी इतनी प्रार्थना स्वीकार कर लें तो फिर न आपको मुझसे कुछ कहने को रह जायेगा और न मुझे आपसे कुछ पूछने को ही।'

'और दादा, शतरंज के खेल में मैं आपकी आँखें बनूँगी।'

इस तीसरे आकस्मिक स्वर को सुनकर माधव चौंक पड़ा। उसने मुड़कर देखा और बोल उठा—कौन, सोनादेवी ? सोलंकी राजकुमारी यहाँ ?

उत्तर दिया दादैया सोमैया ने। उन्होंने कहा—हाँ यही तो बलिहारी है माधव ! सोना यहाँ अपने भाई के अपराध के प्रायश्चितस्वरूप मेरी सेवा करने के लिए आई है। सोमेश्वर दुर्गपाल ने इसे अनुमति भी दे दी है।

सहसा बाहर कोलाहल सुनाई दिया। ऐसा लग रहा था मानो कोई इसी ओर दौड़ा चला आ रहा हो। दूसरे ही क्षण रायराया बुक्काराय और

सोमेश्वर दुर्गपाल क्षिप्रवेग से वहाँ आते दिखाई दिये। दोनो पसीने से तर थे और दोनो की साँस भर आई थी।

आते ही रायराया बुक्काराय ने कहा—लीजिए दुर्गपालजी, महाप्रधानी माधव विद्यारण्य भी यहीं हैं। उन्हें खोजने का आपका परिश्रम बच गया। दादा, आप वानप्रस्थी हों या न हों, पर सुनिए, और महाप्रधानी, आप भी सुनिए : एक बड़ी विपद् टूट पड़ी है।

सुनते ही दादैया सोमैया का चेहरा एकदम पाषाणवत् स्थिर हो गया; माधव भी गम्भीर हो गया।

सोना की बड़ी-बड़ी तेजस्वी आँखें रायराया के चेहरे पर चिपक-सी गईं और वह बोल उठी—बड़ी विपद् ? मेरा भाई निर्वासित हुआ, वह गोभूरी के रूप में कलंकित हुआ, भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज ने अन्तिम समाधि ली, महामंडलेश्वर राय हरिहर ने देह-विसर्जन किया, महाकरणाधिप दादैया सोमैया ने वानप्रस्थ लिया—इतने अल्प समय में यह सब-कुछ क्या थोड़ा है जो आप इनसे भी बड़ी विपद् के टूट पड़ने की बात कर रहे हैं ?

'बेटी,' दादा ने कहा, 'चुप हो जाओ और रायराया को बोलने दो। दस वर्षों से हम जिस बात को डरते आये हैं, हो सकता है कि वही हो। तुरुष्क सुरत्राण मुहम्मद तुग़लक ने अन्ततोगत्वा आक्रमण कर ही दिया हो। अन्त में यह सत्य उसकी समझ में आ ही गया हो कि समय उसके साथ नहीं, हमारे साथ है। किसी भी क्षण घटित होनेवाली घटना अन्त में इस समय घट ही गई हो।'

रायराया ने कहा—हाँ, दादा ! बात तो ठीक यही है और विपत्ति भी यही है। अभी यह तो ठीक से समझ में नहीं आया कि उसने आक्रमण कर दिया है या नहीं किया, लेकिन उसका सन्देश लेकर एक अमीर हमारे यहाँ अवश्य आ पहुँचा है।

'कौन है वह अमीर ?'

'वह है अमीर मलिक ग़ाज़ी अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी।'

'कौन, वह कांपिलीवाला हसन ? कहाँ है वह ?'

'यहीं है, आपके ही पास आ रहा है। उसका सन्देश महाकरणाधिप के ही लिए है।'

'उसे सुल्तान के सन्देशवाहक के उपयुक्त सम्मान के साथ यहाँ ले आओ।'

११. मेहर सुल्ताना

इस समय का अमीर मलिक ग़ाज़ी अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी वही हसन गंगू था जो कांपिली में हाथी के पाँव-तले कुचले जाने की प्रतीक्षा में अध-मरा हो रहा था। परन्तु उस समय देखनेवाले यदि इस समय देखते तो वे भी उसे कभी पहचान न पाते। क्योंकि अभी तो अमीर अलाउद्दीन हसन तुरुष्कों की अमीरात के पूरे ठाठ-बाट में था; ऊपर से मलिक के रुतबे ने उस पर और भी रोगन चढ़ा रखा था।

सामान्यतः तुरुष्कों में यह प्रथा प्रचलित थी कि जो अमीर होता था वह मलिक नहीं हुआ करता और जो मलिक होता वह अमीर नहीं होता था। साधारणतः विदेशी लोग—अफगान, तातार, बलूच, वज़ीर और ज़िया ही मलिक हुआ करते थे। वे जिन्दगी-भर दिल्ली के तुर्क सुल्तान की फौजी नौकरी करके भी अपने मादरेवतन को भूल नहीं पाते थे। उनकी जिन्दगी की सबसे बड़ी फतह और कामयाबी यह होती थी कि हिन्दुस्तान आकर सुल्तान की फौज में नौकरी करें, तनखा हासिल करें, लड़ाइयों में शिरकत-कर लूटपाट मचायें और लूट का माल गाँठ में रखकर मादरेवतन लौट जायें और जब तक लूट का धन चलता रहे ऐश-आराम करें। मुल्क में जाकर अपने हरम में बीवियों की तादाद बढ़ायें, जमीन-जागीर खरीदें और उसकी बढ़ोतरी करें, घोड़े पालें और उनको तालीम दें और जब लूट का पैसा खत्म हो जाये तो दिल्ली के सुल्तान को ताजीम देने फिर हाजिर हो जायें—यह होता था अमीरों के जीवन का क्रम।

रणथंभौर को लूटकर जब तुर्क सेना लौट रही थी तो मलिक नासिरुद्दीन ने अलाउद्दीन खिलजी से कहा था—'तू दिल्ली का सुल्तान है तो क्या

हुआ, बन्दा तो सुल्तानों का भी सुल्तान है। तेरा तख़्त और ताज़ मेरी शमशेर के मुहताज हैं। मेरी तेग़ तेरे तख़्त की हिफाज़त करती है, मगर तभी तक जब तक कि मेरे पास दौलत नहीं होती। इस समय मेरे पास दौलत है, लूट का माल मेरे खच्चरों, ऊँटों और सिपाहियों की पीठ पर लदा हुआ है। पस, मुझे न अपनी शमशेर की दरकार है और न तेरे तख़्त और ताज़ की परवाह। मुल्क मे बेगमे और बीवियाँ मेरा इन्तज़ार कर रही हैं। बन्दा रुख़सत होता है; अल्विदा!'

यह मिज़ाज़ और यह हेकड़ी अकेले नासिरुद्दीन की ही नहीं उस जमाने के हरएक मलिक के स्वभाव का अंग थी! प्रायः सभी मलिकों को अच्छी तन्ख्वाह मिलती थी। अपने द्वारा की हुई लूट में वे आधोआध के हिस्सेदार होते थे। जंग की कामयाबी और फतह के बाद तन्ख्वाह और लूट की दौलत लेकर वे वतन को उड़ जाते थे। वहाँ रहन-सहन और आचार-व्यवहार में दिल्ली के सुल्तान की नकल करते और दौलत खत्म हो जाने पर तलवार को म्यान से निकाल पुनः दिल्ली दौड़े आते थे।

मलिकों की तुलना में अमीरों का स्वभाव और आचरण बिलकुल भिन्न प्रकार का था। लड़ने-भिड़ने का मौका पड़ने पर वे लड़ते थे और लड़ना उन्हें आता भी था। उनकी रणकुशलता और वीरता असन्दिग्ध थी। परन्तु उनका मुख्य लक्ष्य होता था सुल्तान-द्वारा विजित प्रदेशों में मुल्की नौकरी करना, वहीं जमीन-जागीर बनाना, इस देश में स्थायी रूप से बस जाना; गुलाम और बाँदियों-दासियों से घिरे रहना, शासन करना, राजनीतिक कुचक्रों और षड्यन्त्रों का संचालन करना, सुल्तान की आमदनी के लिए कर वसूलना, स्वयं खेती करना और दूसरों से करवाना और रहन-सहन तथा शान-शौकत में दिल्ली के सुल्तान को आदर्श मानकर चलना।

मलिक की निगाह हमेशा मादरेवतन की ओर रहती थी; अमीर इसी देश में स्थायी रूप से रहने-बसने का पक्षपाती था। दोनो के दृष्टिकोण में यह मौलिक अन्तर होने के कारण उनमें कभी एकता नहीं होने पाती थी। एक आम के पेड़ को तोड़-उखाड़कर उसकी पत्तियाँ और लकड़ियाँ तक उठा ले जाना चाहता था; दूसरा उसकी निगरानी करके फलने-फूलने देना चाहता

था, जिसमें पाँच-दस ग्राम सुल्तान को देकर शेष स्वयं हजम कर सके। ग्राम की दोनों में से किसी को भी चिन्ता न थी। उपयोग दोनों ही करना चाहते थे। एक की दृष्टि दूर तक देखनेवाली थी, दूसरे की केवल नाक के नीचे तक।

दोनों की वेश-भूषा में भी बड़ा अन्तर था। मलिक मानो चलते-फिरते किले ही थे। एक तलवार बगल से लटकती होती—कोई-कोई तो दो-दो तलवारें भी रखता था, कमर में छुरा, कटारी और पेशकब्ज खोंसे होते। शरीर पर कड़ियोंवाला जिरहबख्तर और माथे पर लोहे का टोप धारण करते। तंग शलवार, छोटा बदन और छोटी बंडी पहिनते। पाँव में चमड़े का जूता और जूतों में घोड़े को एड़ मारने के लिए लोहे की लम्बी, पतली नुकीली कील, जो प्रायः लाल रंग की होती थी। चेहरे पर गलमुच्छे और खुदा का नूर दाढ़ी—यह थी मलिक की वेश-भूषा।

कोई-कोई मलिक अपनी हवेली के दरवाजे के आगे तलवार लटकाये रहता और एक नगाड़ा भी वहाँ पड़ा होता। जिसकी इच्छा पटेबाजी (द्वन्द्व-युद्ध) करने की हो वह तलवार उतार ले और नगाड़े पर डंके की चोट करे। हवेली का मालिक हजार काम छोड़कर पटेबाजी के लिए हाजिर हो जाता। हर मलिक शानेशमशेर बनना चाहता था। उसके जीवन की यही सर्वोच्च कामना होती थी। शानेशमशेर बनने के प्रयत्न में हर दूसरे-चौथे दिन कोई-न-कोई मलिक घायल होता या मारा जाता था। पटेबाजी में घायल होने पर मरहम-पट्टी करवाना किसी भी मलिक के लिए घोर अपमान और निन्दा की बात होती! कभी किसी मलिक ने अपना घाव जर्राह को नहीं दिखाया, न टाँके लगवाए! घायल होने पर मलिक को पर्दे में डाल देते, जीना होता जी जाता, मरना होता मर जाता। मरने पर चार इष्ट-मित्र उसकी लाश को दफन कर आते और फिर कोई उसका नाम न लेता: वह सर्वथा भुला दिया जाता था।

अमीर लम्बी और ढीली-ढाली शलवार पहिनता, बदन उसका महीन मलमल का होता, उसके ऊपर रेशमी अँगरखा धारण किया जाता! गले में हीरा-मोती के दागीने पड़े होते, माथे पर रेशमी पाग बाँधी जाती। बगल

में एक तलवार लटकती होती। छोटी चुक्की दाढ़ी, आँखों में सुर्मा, कान में कुंडल, कमर में कटार हुई तो हुई नहीं तो केवल मूठ ही शोभा के लिए खोंस ली। पाँव में चमड़े की हलकी मोजड़ियाँ पहिनी जातीं—नीचे चमड़े का तल्ला और ऊपर चमड़े की एक या दो पट्टियाँ होतीं। कोई-कोई अमीर हाथ मे कड़े और पाँव में तोड़े भी पहिनते। घर सुरा और सुन्दरी होती, बाहर अँगरखे की जेब में अफीम की डिब्बी चलती—ऐसे होते थे अमीर और यह थे उनके अमीरी ठाठ। लूटकर मादरेवतन को चले जानेवाले नहीं, स्थायी लूट के लिए अड्डा जमाकर बैठ जानेवाले, टूटे हुए मन्दिरों पर मस्जिदें बनानेवाले, गुलाम रखनेवाले।

मलिक जीते हुए इलाकों के लिए टिड्डीदल की भाँति थे तो अमीर धरती के अन्दर बिल बनानेवाले चूहों की भाँति। दोनो की बातें अलग, रीति-भाँति अलग, रहन-सहन अलग, ठाठ-बाट अलग और जीवन का अन्तिम लक्ष्य भी दोनो का अलग-अलग। तुर्क सुल्तानों के शासन-काल में अमीरों और मलिकों में पारस्परिक वैमनस्य और आपसी झगड़े-टंटे इतने अधिक बढ़ गए थे, जितने जैनों और भागवतों में भी, उस काल में, नहीं रहे होंगे।

इसलिए होता यह था कि एक आदमी यदि मलिक है तो वह अमीर नहीं होगा और अमीर है तो मलिक नहीं होगा। एक गुलामों से घिरा होता था, दूसरा सिपाहियों से।

परन्तु यही एक ऐसा आदमी निकला, जो मलिक होने के साथ-साथ अमीर भी था। नाम भी उसने अपना दिल्ली के भूतपूर्व सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के नाम पर रखा था। अन्दरूनी बात जाननेवाले तो यहाँ तक कहते थे कि उसने अलाउद्दीन की पसन्द का तख़ल्लुस भी अपना लिया था। अलाउद्दीन अपने को सिकन्दर-सानी कहता था। अमीर मलिक ग़ाज़ी अलाउद्दीन हसन-गंगू बहमनी अपने को 'सिकन्दर-सानी' भी नहीं केवल 'सिकन्दर' ही कहता था। अपने भरोसे के लोगों के बीच उसका पूरा नाम था अमीर मलिक ग़ाज़ी अलाउद्दीन सिकन्दर हसन गंगू बहमनी।

और मज़े की बात यह कि किसी जमाने में वह गुलाम था—निरा गुलाम—देवगिरि की गुलाम हाट में खड़े बाजार बेचा गया था। कभी-कभी

निराश्रित विदेशी मुसलमानों को इस प्रकार गुलाम हाट में खड़े करके बेचना अलाउद्दीन खिलजी का परमप्रिय व्यसन था। यह हसन भी इसी प्रकार बेचा गया था। कोई भी नहीं जानता था कि यह हसन किस देश का रहनेवाला था। किसी का खयाल था कि ईरान का रहनेवाला है तो कोई इसे हब्शदेश का निवासी समझता था। बहुत-से इसे सीदी ही माने बैठे थे। अमीर और मलिक बन जाने के बाद इसके परिचित मीर, नामानिगार और कसाई बाजार के कुछ शायर तो यहाँ तक शोहरत करने लगे थे कि यह हसन ईरान के औलिया पीर बहमनशाह का वारिस है और तकदीर के फेर के कारण ठोकरें खाता हुआ, अकेला और बेसहारा, किसी वीरवणिगा के जहाज में, होरमुज़ के किसी अश्व-व्यापारी के साथ, उसके घोड़ों का खुर्रा-मालिश करता हुआ हिन्दुस्तान चला आया था।

बात जो भी रही हो, परन्तु इतना सत्य अवश्य है कि यह हसन होरमुज़ के घोड़ों के एक सौदागर के साथ ही भारतवर्ष आया था; और अलाउद्दीन खिलजी किसी कारणवश उस सौदागर से रुष्ट हो गया तो उसके साथ हसन को भी देवगिरि की गुलाम हाट में खड़ा करके बेच दिया गया।

आज तो वह बात पुरानी हो गई थी। अधिकांश लोग भूल ही गए थे कि किसी जमाने में यह हसन गुलाम था और सो भी एक हिन्दू ब्राह्मण का गुलाम। इसकी जिन्दगी में एक वक्त ऐसा भी आया था कि कांपिली की वधशिला पर रामभद्र हाथी के पाँव-तले कुचला जाने को था; परन्तु किस्मत ने इसका हाथ थामा और वहाँ से उठाकर अमीरात और मलिकगीरी के रुतबे पर पहुँचा दिया।

और आज वह सुल्तान मुहम्मद तुग़लक का क़ासिद था।

'आओ अमीर, पधारो!' दादैया सोमैया ने कहा, 'मैंने सुना है कि आप मेरे नाम कोई सन्देश लेकर आये हो।'

अपने पहाड़-जैसे ऊँचे-पूरे डील-डौल के कारण अमीर मलिक ग़ाज़ी हसन उस पर्णकुटि में जैसे समा नहीं पा रहा था। उसकी उपस्थिति-मात्र से वह कुटिया बहुत छोटी और नीची लगने लगी थी। थोड़ी देर वह खड़ा अपने चारों ओर देखता रहा। क्या वह कुटिया की साज-सज्जा को या साज-सज्जा

के अभाव को देख रहा था ? फिर उसने अपने जूते उतारे। वह धीमे-धीमे आगे बढ़ा। उसने रायराया बुक्काराय, सोमेश्वर दुर्गपाल और महाप्रधानी माधव विद्यारण्य को सिर झुकाकर नमस्कार किया और उनसे दस्तावस्ता हुआ (हाथ मिलाये)। इसके बाद दादैया सोमैया के चरण-स्पर्श कर वह उनके समीप नीचे बैठ गया। उसने एक खानदानी अमीर की अदा से सोना की ओर विजय-भरी दृष्टि से देखा और दूसरे ही क्षण अपने नेत्र हटा लिये।

'बैठो, अमीर मलिक ग़ाज़ी हसन ! अलाउद्दीन सिकन्दर हसन !'

हसन चौंक पड़ा ! थोड़ा संकुचित भी हुआ। अपने जिस सिकन्दर तखल्लुस को उसने इतना पोशीदा रखा था, जिसे उसके दो-चार अज़ीज़ और दोस्त ही जानते थे, महाकरणाधिप के सतर्क कानों ने उसे भी सुन ही लिया !

एक खिसियानी हँसी हँसकर उसने विनम्र स्वर में कहा—मैंने तो सुन रखा था कि जनाब दादैया सोमैया साहब बड़े मेहरबान हैं और उनका दिल दरिया के मानिन्द वसीह है; तो क्या दादा साहब मुझे इसी नाम से याद फ़रमायेंगे ?

इतना कहकर उसने रायराया की ओर देखा, माधव की ओर देखा और तब सोमेश्वर दुर्गपाल की ओर देखते हुए हँसकर बोला—मेरा अमीर मलिक ग़ाज़ी अलाउद्दीन हसन नाम तो देवगिरि के सुल्तान के दरबार में है, मगर यहाँ तो इस बन्दे का नाम हसन गंगू बहमनी ही है !

'अमीर बन जाने के बाद भी आपको गंगू ब्राह्मण की याद है ! उसे अभी तक भूले नहीं ?' दादा ने पूछा।

'दादा, गुस्ताखी माफ़ हो—मैं आपको दादा ही कहने की इजाज़त चाहता हूँ। क्योंकि गंगू महाराज भी आपको दादा ही कहते थे। इस दुनिया में मैं बहुत-सी बातें भूल गया हूँ, आगे और भी बहुत कुछ भूल जाऊँगा, मगर एक बात है जिसे मैं क़यामत तक भी नहीं भूल सकता। वह है गंगू महाराज की मुहब्बत, उनकी दरियादिली, उनकी भलमनसाहत और इन्सानियत। गंगू महाराज फ़रमाया करते थे कि किसी गुलाम के तुर्क अगरचे रायस आक़ा की बनिस्बत बिरहमन आक़ा में कुछ-न-कुछ फ़र्क़, कोई-न-कोई

खासियत तो होगी ही। वह फ़रमाते थे, हसन, मैं तेरा आक़ा हूँ। मगर विरहमन भी हूँ; मेरे घर जो भी आता है उसे या तो मेरे वालिद का दर्ज़ा हासिल होता है या फ़रज़न्द (बेटे) का। और दादा साहब, यक़ीन मानिए, गंगू महाराज ने मुझे अपने फ़रज़न्द की ही तरह रखा और मेरी परवरिश की। उस आला इन्सान को मैं कैसे भूल सकता हूँ?'

'मैंने सुना है हसन, कि सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने जब तुमसे अपने बहमनी तखल्लुस के बारे में पूछा तो तुमने यह कहा बताते हैं कि यह तुम्हारे किसी ईरानी पूर्वज* का नाम है। सच-झूठ तो भगवान विरूपाक्ष जानें, पर मैंने सुना यही है।'

'दादा साहब, सुल्तान मुहम्मद को क्या आप जानते नहीं? उसके दरबार में रहने के ख्वाहिशमन्दों को ज़िन्दा इन्सानों के शिकार से लेकर काशी और ईरान के आलिमों के साथ बहस-मुबाहसा (शास्त्रार्थ) करने तक के लिए तैयार रहना होता है। हक़ीक़त का बयान तो दादा साहब, आपके क़दमों में ही किया जा सकता है। यह आप के अल्लाह पाक परवरदिगार का मुक़ाम है, यहाँ आपके पैग़म्बर-सानी औलिया का मक़बरा है। यहाँ मैं झूठ नहीं कहूँगा। मेरे आक़ा और मेरे सिरताज़ गंगू महाराज ने मुझ पर इतनी मेहरबानी ज़रूर की है कि कहाँ और कब क्या बोलना चाहिए इसका इल्म मुझे हासिल है। जो हक़ीक़त है वह आज मैं आपके रूबरू बयान करता हूँ और अपनी इस तेग़े शमशेर और अपने मुक़द्दर की क़सम खाकर कहता हूँ कि मेरा गंगू बहमनी तखल्लुस मेरे मरहूम बिरहमन आक़ा

---

*बहमनी वंश के संस्थापक अमीर मलिक अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी के सम्बन्ध में फारसी के इतिहास-लेखक फ़रिश्ता ने साफ-साफ लिखा है कि बहमनी सुल्तान अलाउद्दीन हसन ने यह नाम अपने ब्राह्मण मालिक गंगू के नाम पर अपनाया था। फ़रिश्ता बहुत दिनों तक बीजापुर के बहमनी सुल्तान के पास रहा था। वह उसका वेतनभोगी इतिहास-लेखक भी था। यदि यह बात सच न होती तो सुल्तान के दरबार में रहते हुए फ़रिश्ता को ऐसा लिखने की कभी हिम्मत न पड़ती।

गंगू महाराज की ही यादगार है। दादा साहब, आप मेरे इस बयान पर एतबार कर सकें तो वह आपका मेरे ऊपर बड़ा एहसान होगा।'

'हसन, तुम्हारे ऊपर हमारा कोई अधिकार या दावा तो है नहीं; फिर इतनी कड़ी शपथ लेने की क्या आवश्यकता है? मैं तुम्हारे कथन की सत्यता का स्वीकार करता हूँ।'

'मेहरबानी आपकी दादा साहब, शुक्रगुज़ार हुआ।'

'अमीर साहब,' दादा ने कहा, 'हसन गंगू बहमनी की बात तो पूरी हुई, अब अमीर मलिक ग़ाज़ी अलाउद्दीन सिकन्दर हसन गंगू बहमनी की बात की जाये। आप मेरे नाम कोई सन्देशा लाये हैं?'

'जी हाँ, दादा साहब! फ़रमान लेकर मैं ज़रूर हाज़िर हुआ हूँ। अगर मैं हाज़िर न होता तो कोई दूसरा मलिक भेजा जाता और मुमकिन है वह अदब से पेश न आता।'

'ऐसा है आपके सुल्तान का सन्देश!'

'बन्दा तो सिर्फ़ एलची है, क़ासिद बनकर हाज़िर हुआ है: फ़रमान खुद सुल्तान सलामत का है।'

'तो अमीर मलिक साहब, एक बात सुनो। थोड़ी देर के लिए भूल जाओ कि आप अमीर मलिक हो और थोड़ी देर के लिए गंगू महाराज को याद करो तो आपके खयाल में आ जायेगा कि मैं अब वानप्रस्थ हूँ और यह कुटिया किसी महाकरणाधिप का वासस्थान नहीं। इसलिए अमीर साहब, मैं आपका यहाँ उपस्थित सज्जनों से परिचय करा दूँ। यह जो सामने बैठे हैं सकल-वर्णाश्रमधर्ममंगलपरिपालिसातु भगवान विरूपाक्षसान्निध्यात राजराजेश्वर महाराजाधिराज रायराया बुक्काराय हैं। ये विजयनगर-साम्राज्य के राज-राजेश्वर रायराया हैं। और महामंडलेश्वर राय हरिहर के सगे छोटे भाई होते हैं।

यह सुनकर अमीर मलिक हसन आँखें फाड़े रायराया की ओर देखता रह गया। विजयधर्म और शैव, भागवत, वीरशैव और जैन सम्प्रदायों का एकीकरण, रायरेखा और महासमिति और इस प्रकार की कितनी ही बातें दौलताबाद पहुँच चुकी थीं और दौलताबाद के अमीरों और मलिकों के

दीवानखानों में उपहास और परिहास का विषय बनी हुई थीं। किसी को विश्वास ही नहीं होता था कि विभिन्न हिन्दू सम्प्रदाय एक-दूसरे से हाथ मिला भी सकते हैं। यदि हिन्दुओं में यही हो जाता तो मजाल थी किसी तुर्क की कि वह सिन्धु के इस पार पाँव रख सकता? और रायरेखा? अल्लाह का नाम लो! आज तक किसी बादशाह, किसी सुल्तान ने खुद होकर अपने हकूकों पर पाबन्दी लगाई है—रायरेखा क़बूल की है? हिन्द के राजा-महाराजाओं ने यही किया होता तो उनके सिपाहियों के साथ दहक़ान (किसान), बिरहमन और बसवाया (वैश्य-व्यापारी) मिल न जाते और तब मक़दूर था तुर्कों का कि वे दिल्ली से देवगिरि तक, भौंकते कुत्तों की परवाह न करनेवाले हाथियों की तरह झूमते-झामते चले आते? सब गपोड़े हैं, सिरे से हवाई बातें हैं, ठीक वैसी ही जैसी सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक़ के आगे काशी के पंडत फाँक गए थे। हिन्दुओं की खुसूसियत तो यह है कि वह तुरुष्क के पाँव चाट लेगा, मगर अपने भाई से कभी हाथ नहीं मिलायेगा; तुरुष्क सुल्तान को पूरा कर देगा, लेकिन अपने कुरुबा के साथ एक जीतल की भी रियायत नहीं करेगा। और सिन्धु के किनारे से लेकर कृष्णा के किनारे तक फैले हुए हिन्दुओं की इस खुसूसीयत में पिछले ढाई सौ बरसों से कोई फर्क नहीं पड़ा था, जरा भी तब्दीली नहीं हुई थी। भागवत होता तो वह विजेता मुसलमान के आगे सिर ही नहीं झुकाता, नाक भी रगड़ लेता, लेकिन अपने पड़ोसी जैन के आगे तो तना ही रहता, तिल बराबर भी नहीं झुकता। शैव होता तो वह तुरुष्क सुल्तान को सात बार कोरनिश बजा लाता, परन्तु भागवतों के आचार्य के आगे नहीं झुकता सो नहीं ही झुकता। ऐसी थी हिन्दुओं की इज्जत या कहो कि बेइज्जती!

मगर यहाँ यह क्या जादू हो गया?

हिन्दुओं के पारस्परिक साम्प्रदायिक वैमनस्य की कई कहानियाँ हसन गंगू महाराज के मुँह से सुन चुका था। हिन्दुओं की यह आपसी फूट तुरुष्कों का सबसे बड़ा हथियार थी। हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध में तुरुष्क इस हथियार का खुलकर उपयोग करते थे। परन्तु यहाँ यह क्या जादू हो गया? यह नई बात क्या है? यह विजयधर्म क्या है और इसका साम्राज्य क्या बला है? फिर

एलची और अमीर मलिक ग़ाज़ी हसन अलाउद्दीन के नाते भी मेरी आपसे यही दरख़्वास्त है !'

'अमीर मलिक, हम जब देवगिरि आयेंगे तो वहाँ तुम्हारे सुल्तान के आचार-व्यवहार और रीति-रिवाज़ों का अवश्य पालन करेंगे; लेकिन यहाँ आने पर तो तुम्हे हमारे ही विधि-नियमों का पालन करना होगा। मैं तो वानप्रस्थ हूँ। अब मेरे लिए सुल्तान का कोई सन्देश हो नहीं सकता। दूसरे, हमारे यहाँ निजी और व्यक्तिगत नाम की कोई चीज़ नहीं होती। हम किसी भी सन्देश को व्यक्तिगत रूप से नहीं सुनते, न किसी प्रकरण पर व्यक्तिगत रूप से चर्चा या विचार ही करते हैं। सम्भवतः तुम्हे जानकारी न हो, परन्तु हमारे वहाँ तो राजकीय मंत्रणाओं में भी जिसका जी चाहे आकर बैठ और उनमें भाग भी ले सकता है।'

अमीर हसन को हँसी आ रही हो, परन्तु शिष्टाचार के कारण वह संयम किये हुए हो, इस प्रकार थोड़ी देर तक उसके गलमुच्छों और दाढ़ी के बाल थरथराते रहे, फिर उसने कहा—महाकरणाधिप, रायराया और महाप्रधानी सब एक बात भूल जाते हैं और मैं उसी को याद दिलाने की गुस्ताखी करता हूँ कि सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के सामने कोई बात भुलाने-जैसी नहीं होती।

'वह बात क्या है ?' महाप्रधानी माधव ने पूछा।

'मग़रिब से मशरिक़ तक और शुमाल से जनूब तक—पूरे हिन्दुस्तान पर सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की हुकूमत है, ऐसा उसके नाम से शाया किये गए खुत्बों (बयानों) मे कहा गया है।'

'आप तो मलिक भी हैं न ?' रायराया बुक्काराय ने पूछा।

'जी हाँ, इस ख़ादिम को सुल्तान सलामत ने यह रुतबा भी इनायत फ़रमाया है।'

'फिर तो आप हमारे उत्तर को बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं। मलिक, जहाँ सुल्तान का शासन होता है वहाँ सुल्तान को शासन करने के लिए जाना भी पड़ता है। हमारे यहाँ कभी एक मलिक मक़बूल आये थे, परन्तु अभी वह कहाँ हैं, इसके बारे में हमें कुछ भी मालूम नहीं; शायद आपको मालूम हो।'

अमीर हसन की आँखों में क्षण-भर के लिए अंगारे दहक उठे। मारे

गुस्से के उसका चेहरा तमतमा गया और दाढ़ी-मूछ के बाल तक लाल हो गए। मलिक मक़बूल को कांपिली के किले में से औरत के कपड़े पहिनकर भागना पड़ा था, भागते-भागते भी वह सोमेश्वर सोलंकी के हाथ पड़ गया था और सोमेश्वर ने यह कहकर कि मैं औरत पर हाथ नहीं उठाता, उसे चला जाने दिया था! सुल्तान मुहम्मद पहले तो उस पर बहुत रुष्ट हुआ और उसे हाथी के पाँवों-तले कुचले जाने का आदेश दे दिया। परन्तु उसी समय पंजाब और बंगाल के अमीरों ने बलवा कर दिया और गुजरात में अराजकता फैल गई। उस सिर-फिरे मनमौजी और झक्की सुल्तान ने अमीरों को अपमानित करने के लिए मलिक मक़बूल को देवगिरि का सूबा बना दिया!

हिन्दुओं ने औरत समझकर जिस पर हाथ नहीं उठाया वह बना दिया गया देवगिरि का सूबा! सुल्तान देवगिरि के अमीरों को समझता ही क्या है?

रायराया का स्वर जरा भी उत्तेजनापूर्ण नहीं था, परन्तु विनम्रता से भरे वे शब्द तीक्ष्ण धार की भाँति पैने और मर्मान्तक चोट करनेवाले थे। वार ठीक निशाने पर जाकर बैठा और अमीर हसन तिलमिला गया। मलिक मक़बूल का किस्सा उत्तर और दक्षिण में बच्चे-बच्चे की जबान पर था।

यह उत्तर सुनकर अमीर मलिक हसन को इतना विश्वास तो हो गया कि ये लोग मुकाबला करने को तैयार हैं और जब तैयार हैं तो साधन-सम्पन्न भी होंगे ही। यह तो उसने भी सुना था कि वीरवणिगा इन लोगों से मिल गए हैं।

अब उसने विषय-परिवर्तन करते हुए कहा—महाकरणाधिप, माफ़ कीजिए, आप लोगों ने मेरी बात को ग़लत समझ लिया। मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह अमीर मलिक हसन गंगू बहमनी के नाते नहीं कह रहा हूँ; सुल्तान सलामत के एलची के रूप में ही आपको सुल्तान का सन्देश सुना रहा हूँ। सुल्तान ने खासतौर पर हिदायत की है और फ़रमाया है कि मैं उनका

सन्देश सिर्फ महाकरणाधिप को ही सुनाऊँ। गर्ज़ यह कि सुल्तान सलामत का सन्देश सिर्फ आपके कानों के लिए है।

'इसका कारण तो यही हो सकता है कि तुम्हारे सुल्तान अपनी परेशानियों में फँसे रहे और उन्हें यहाँ के संवाद सुनने का अवकाश नहीं मिला। नहीं तो जिनके दोमार और गुप्तचर सर्वत्र घूमते रहते हैं उस सतर्क सुल्तान से यह बात कैसे छिपी रह सकती है कि यहाँ अब कोई महाकरणाधिप है ही नहीं। महाकरणाधिप तो उस समय होता है जब रायराया अन्यान्य महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक कार्यों में संलग्न रहने के कारण राज-काज की ओर ध्यान नहीं दे पाते। अभी तो रायराया उपस्थित हैं, उनके महाप्रधानी भी हाजिर हैं और तुम्हारा सन्देश सुनने से अधिक महत्त्वपूर्ण कोई कार्य भी उनके लिए नहीं है। और मैं तो, जैसा कि बता चुका हूँ, वानप्रस्थ हो गया।'

'दादा साहब, आप यह क्या फ़रमा रहे हैं? आप दरवेश हो गए, फ़क़ीर बन गए?'

'हाँ भाई, हमारे यहाँ यही प्रथा है। जब बेटे, अनुयायी और उत्तराधिकारी वयः प्राप्त कर लें तो समस्त उत्तरदायित्व उन्हें सौंपकर वानप्रस्थ बन जाना चाहिए।' दादैया सोमैया ने कहा, 'इसी लिए तो कह रहा हूँ कि तुम्हारा जो भी सन्देश हो उसे अब रायराया और उनके महाप्रधानी को ही सुनाओ।'

'दादा साहब,' अमीर हसन ने बड़े ही भावुकतापूर्ण स्वर में कहा, 'मेरा आज का रुतबा, वहबूदी और तरक़्क़ी एक हिन्दू की ही बदौलत है। आज मैं ग़ैरों के साथ हूँ, मेरा ईमान भी ग़ैरों का ईमान है, मगर इस हक़ीक़त को मैं कभी नहीं भूल सकता कि एक हिन्दू ने मुझे ज़िन्दा रखा, आज़ादी बख्शी और मेरे मुक़द्दर को सँवारने की राह मुझे दिखाई। यह सच है कि आज दिल्ली का सुल्तान मेरा मालिक है और इस समय मेरी क़िस्मत उसी की निगाहों की मुहताज़ है। उसी ने मुझे अलाउद्दीन का तखल्लुस बख्शा—एक ऐसा तखल्लुस जो हिन्दुओं के लिए क़हर की तरह है और फिर भी जिसे मैंने मंजूर किया है; मगर दादा साहब, आज भी सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के दरबार में मैं अपने बिरहमन मालिक के नाम पर हसन

१०

गंगू बहमनी ही पुकारा जाता हूँ और मैंने वसीयत कर दी है कि मेरी औलाद और वारिस भी आगे बहमनी के नाम से ही पुकारे जायें। लेकिन फिर भी दादा, यह बात मेरी समझ में नहीं आई कि ऐसा क्या ग़ज़ब गुज़रा कि महाकरणाधिप दादैया सोमैया को दरवेश बन जाना पड़ा ?'

'यह हमारी प्रथा है, तुम इसे समझ नहीं सकोगे; प्रयत्न करने पर भी बात तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी। दूसरे यहाँ कोई ऐसा गजब भी नहीं गुजरा। जो हुआ, मेरी इच्छा से ही हुआ। हम यही चाहते हैं कि देवगिरि का सूबा और देवगिरि का सुल्तान इस प्रसंग को लेकर मनगढ़न्त कल्पनाएँ न करने लगें; बात का बतंगड़ न बना लें।'

'तोबा....तोबा....' हसन ने शीघ्रतापूर्वक कहा, 'इस ख़ादिम का यह मन्शा कभी भी नहीं था। ग़ज़ब गुज़रने की बात खुद मैंने ही अपनी ओर से कही है।'

'अब यह सारी रामायण तो बन्द करो और सुल्तान का जो सन्देश लेकर आये हो उसे कह चलो, अपना एलची का कर्त्तव्य पूरा करो।'

'दादा साहब, फ़रमान सुल्तान का ही है, मैं तो सिर्फ उनका एलची हूँ।'

'हम भी यही मानते हैं कि सन्देश सुल्तान का ही है और आप केवल सन्देशवाहक हैं। क्योंकि गंगू कन्याली ने आपके सम्बन्ध में जो भविष्य-वाणी की है वह अभी तक पूरी नहीं हुई है। पता नहीं उनकी भविष्यवाणी का परिपाक देवगिरि में होगा या दिल्ली अथवा गुजरात में ? मगर जब तक वह भविष्यवाणी चरितार्थ नहीं हो जाती हम यही मानेंगे कि जो आप कह रहे हैं वह सुल्तान का ही सन्देश है।' महाप्रधानी माधव ने धीरे से कहा।

माधव का स्वर शान्त और स्वाभाविक था। लेकिन जिस प्रकार साँप की फुफकार सुनकर आदमी चौंक उठता है उसी प्रकार हसन मारे घबराहट के आधा उठ आया। जिस बात को उसने मन के अन्दर हजार तालों के पीछे बन्द करके रखा था वह इस महाप्रधानी को कैसे मालूम हो गई ? कहीं ग़ैब तो नहीं जानता ! अगर सुल्तान को इस बात का पता चल जाये.... मजाक में ही यह भेद उन पर रोशन हो जाये...जरूर यह आदमी खतरनाक है, बेहद खतरनाक है, इससे होशियार रहना होगा।

और अब हसन ने वास्तविक विषय पर आना ही ठीक समझा। अभी तक वह इधर-उधर की बातें करके, हिन्दुओं के प्रति अपना पक्षपात प्रदर्शित करके, भावुकता दिखलाकर, प्रलोभन देकर इन लोगों के मन की थाह पाना चाहता था। थाह तो उसे मिली नहीं, उलटे जाने किस ग़ैबी तिलस्म से स्वयं उसी के मन का रहस्य सबके सामने प्रकट हो गया !

कुछ निराश और कुछ झुँझलाये हुए बेसुरे स्वर में उसने कहा—तो जनाबेमन, सुल्तान सलामत का फ़रमान आप साहबान कान खोलकर सुन लीजिए। उन्होंने फ़रमाया है कि सुल्तान सलामत की बेगम साहिबा को पाँच कोहसारों (पहाड़ों) के बीच की यह जगह, यह वादी बहुत पसन्द आई है; इसलिए लाज़िम है कि आनेगुंडी का किला और पम्पापति का इबादतघर हमारे हवाले कर दिये जायें और बेगम साहिबा के यहाँ रहने के खर्चे का भी मुनासिब बन्दोबस्त आप लोग करें।

वहाँ उपस्थित सभी ने इस सन्देश को सुना। महाकरणाधिप का चेहरा निर्विकार था, यद्यपि इसके लिए उन्हें भगीरथ प्रयत्न करना पड़ा था। रायराया का हाथ तलवार की मूठ पर चला गया। सोमेश्वर का चेहरा उगते हुए सूर्य के समान लाल हो गया। सोना चीख उठी।

अपने सन्देश की यह प्रतिक्रिया देखकर अमीर मलिक हसन की बाछें खिल गईं। वह खुश था कि अन्त में उसने इन काफिरों को गुस्सा तो दिलाया। उनकी अभी तक की शान्ति और सहजता उसे विष के घूँट की तरह लग रही थी। सब-के-सब किस तरह चुप बैठे मेरी तौहीन कर रहे थे ! लेकिन वाह रे सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ! माना कि तू तेज़ मिज़ाज़ है, मनमौजी है, ज़रा भी एतबार के लायक नहीं है, मगर दुश्मनों के दिलों में कीलें ठोकना तुझे खूब अच्छी तरह आता है। आफ़रीं सुल्तान, आफ़रीं !

'तो आप क्या जवाब देते हैं ? सुल्तान की बेगम साहिबा मेहर सुल्ताना साहिबा तुंगभद्रा के किनारे पर अपने फ़ौज-फाटे के साथ खड़ी आपके जवाब का इन्तज़ार कर रही हैं। क्या जवाब देते हैं आप ? बेगम साहिबा जानना चाहती हैं।'

महाप्रधानी माधव ने बिलकुल साहजिक स्वर में कहा—उन्हें प्रसन्नता-

पूर्वक यहाँ ले आइए। हम सुल्तान की बेगम साहिबा के उपयुक्त ही उनका स्वागत करेंगे।

१२. बेगम साहिबा का स्वागत

अमीर मलिक हसन कोरनिश बजाकर चला गया। वह तो चला गया, परन्तु अपने पीछे रोष का ज्वालामुखी भी छोड़ता गया। क्रोध का वह प्रचंड दावानल जितना सुल्तान के प्रति था उतना ही, बल्कि उससे अधिक सुल्तान की बेगम को आदर-सहित ले आने की स्वीकृति देनेवाले माधव विद्यारण्य के प्रति भी था। रायराया बुक्काराय कुपित नेत्रों से माधव की ओर देखने लगे। सोमेश्वर सोलंकी तो तलवार खींचकर ही दौड़ पड़ा और सिंह के-से विकराल नेत्रों से उसकी ओर घूरता हुआ क्रोधोन्मत्त स्वर में बोला—जी चाहता है कि इस बम्मन को यहीं काटकर फेंक दूँ। इसका वध करने में कोई पाप नहीं लगेगा और यदि लगा भी तो तुरुष्क के रक्त-स्नान से धुल जायेगा। आदेश दीजिए रायराया! और यदि आपको आदेश प्रदान करते पंच महापातकों का भय लगता हो तो कृपया मुँह फेरकर आँख ओट पहाड़ ओट कर लीजिए, जिसमें मैं इस बम्मन की गरदन उतारकर उस अमीर का सिर भी काट लाऊँ और तब दोनो मस्तक एक साथ मुहम्मद तुग़लक को भेजकर उसके सन्देश का प्रत्युत्तर दे दिया जाये!

'शान्त हो जाओ दुर्गपाल!' सोमैया नायक ने कहा, 'शान्त हो जाओ!'

'शान्त हो जाऊँ? दादा, आप स्वयं मुझे शान्त हो जाने को कहते हैं! चार-चार पुत्रों की बलि चढ़ाकर मैंने आनेगुण्डी के दुर्ग की रक्षा की है। पाँचवें पुत्र को मैंने स्वयं अपने हाथों निर्वासित किया है—केवल इस दुर्ग के लिए। और आज मैं इस दुर्ग को सुल्तान के सिपुर्द कर दूँ? रायराया, आप मौन क्यों हैं? बोलते क्यों नहीं? राजराजेश्वर, मेरा अविनय क्षमा हो! ओह....मुझे शब्द नहीं मिलते....मेरी वाणी घुटी जा रही है....हृदय चिरा जाता है....रायराया, आदेश दीजिए, नहीं तो आँखें फेर लीजिए, अभी एक वार में दो टुकड़े किये देता हूँ!'

और रायराया बुक्काराय ने कहा—तुरुष्क बेगम के प्रति ऐसी सद्भावना प्रदर्शित करने वाले ब्राह्मण को हमने अपना गुरु माना ! भगवान कालमुख विद्याशंकर ने इसे अपनी विद्या का उत्तराधिकारी नियुक्त किया ! ऐसा व्यक्ति हमारा प्रधानी बन गया ! दादा, चाहे आसमान टूट गिरे, चाहे धरती फट जाये, लेकिन हम अपने शासन का प्रारम्भ ऐसी अपमानजनक घटना से कदापि नहीं होने देंगे। सोमेश्वर दुर्गपाल, हम रायराया तुम्हें अपने श्रीमुख से आदेश प्रदान करते हैं कि बेगम कही जानेवाली उस औरत को लाव-लश्कर सहित तुंगभद्रा के उस पार कर दो। परिणामस्वरूप भले ही हमें सुल्तान मुहम्मद के साथ युद्ध करना पड़े !

दादैया सोमैया ने पूछा—माधव, इन लोगों को इस प्रकार उत्तेजित होते देख तुम व्यग्र तो नहीं हो रहे हो ?

और माधव ने बिलकुल शान्तिपूर्वक निरुद्विग्न वाणी में कहा—नहीं दादा, इनकी दृष्टि छोटी और तलवारें लम्बी हैं। निस्सन्देह अब विजयनगर को लम्बी तलवारों की आवश्यकता होगी, परन्तु साथ ही दृष्टि भी लम्बी और दूरदर्शी होनी चाहिए।

दादैया सोमैया ने सोमेश्वर से कहा—दुर्गपाल, अपनी तलवार को म्यान में करो।

'परन्तु दादा, इस बम्मन को....इस गोभूरी को....'

'सोमेश्वर !' दादा ने कठोर स्वर में कहा, 'मैं वानप्रस्थ अवश्य हुआ हूँ, परन्तु महाकरणाधिप की मेरी मुद्रा अभी यहीं है ! मैं कहता हूँ, अपनी तलवार म्यान में करो !'

'रायराया....'

'बेटी सोना ! मेरी मुद्रा तो ले आ ! रायराया, आप भी शान्त हो जाइए। विजयनगर-साम्राज्य के मंत्रणागृह में क्या तुम लोग अपनी तलवारें तानकर ही अपने-अपने मतों का प्रतिपादन करोगे ? और क्या तुम ऐसा सोचते हो कि माधव को तलवार चलाना नहीं आता ?'

'दादा....परन्तु....' सोमेश्वर ने उस आदेशात्मक उग्र स्वर के आगे सिटपिटाकर कहना चाहा, परन्तु कह न सका। तलवार उसके लिए एक

भयंकर बोझ बन गई। उसने व्यथित नेत्रों से रायराया की ओर इस भाँति देखा मानो इस धर्म-संकट में से निकलने के लिए उनकी सहायता चाहता हो।

रायराया ने कहा—सोमेश्वर, कुछ समय के लिए हम अपने श्रीमुख से दिये गए आदेश को स्थगित करते हैं। दादा अप्रसन्न हैं, इसलिए तुम अपनी तलवार को, इनकी उपस्थिति में अविलम्ब म्यान में कर लो। दादा, आपका शासन कार्यान्वित हो गया।

'शाबाश रायराया! आपका इस समय का संयम उज्ज्वल भविष्य का सूचक है। आपका राज्य और शासनकाल सौभाग्यशाली होगा। लोकधर्म और राज्यधर्म परस्पर एक-दूसरे के सहायक, समर्थक और पूरक होंगे। सोमेश्वर, तुम्हारा आक्रोश और उत्तेजना सर्वथा निष्प्रयोजन तो नहीं, सहेतुक ही हैं—वे मूल्यवान होने के साथ ही उपयोगी भी हैं। परन्तु तुम्हें इस बात को कदापि नहीं भूलना चाहिए कि जो अपने क्रोध का विवेकपूर्वक संयम कर सकते हैं केवल उन्हीं को विजयनगर-साम्राज्य की धर्म-सभा में भाग लेने का अधिकार है।' दादा ने दृढ़तापूर्वक कहा।

'दादा, अपने अविनय के लिए क्षमा-याचना करता हूँ।' सोमेश्वर ने कहा। परन्तु यह बात केवल उसकी वाणी बोल रही थी, हृदय नहीं।

'रायराया, आपको भी यह नहीं भूलना चाहिए कि इस राज्य में धर्म, विवेक और राजनीति तथा लोकनीति का स्तम्भ बनने के लिए ही रायराया के रूप में आप उत्तराधिकारी नियुक्त किये गए हैं। आप शूरवीर हैं, साहसी हैं, परन्तु एक समय ऐसा भी आ सकता है जब राजनीति और लोकनीति के कारण आपको यह भरा-पूरा विजयनगर बिना युद्ध किये ही त्याग देना पड़े। आपको तो आज से ही ऐसी तैयारी करनी होगी और मन को इस भाँति प्रस्तुत करना होगा कि अपना सन्तुलन खोये बिना, जब आवश्यकता पड़े, आप देवगिरि में जाकर खड़े हो सकें, और जब आवश्यकता हो, विजयनगर का परित्याग कर सकें। आपको यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि विजयनगर का राजराजेश्वर-पद कर्नाटक का सामान्य राजसिंहासन नहीं और न वह दिल्ली का कलह, छल-प्रपंच और षड्यंत्रोंवाला तख्त ही है। यह तो राजयोग है। इस सिंहासन पर विराजमान होनेवाले को योगी की भाँति

भय-क्रोध-रहित और वीतराग होकर रहना होगा। आप समझ तो गए न रायराया, मेरी इस बात को ?'

'दादा, अविनय कर बैठा, आज क्षमा कीजिए। भविष्य में कभी मैं इस प्रकार उत्तेजित न हूँगा। दादा, आज आपके चरण छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ। इस समय तो दादा, अपने इस बालक को क्षमा और अपने क्रोध का निवारण कीजिए।'

'दादा,' सोमेश्वर ने कहा, 'आप तो स्वयं ही हमको समझाते हैं। फिर मैं आपसे क्या कहूँ ! मैं कोई योगी नहीं, तपस्वी नहीं, सिद्ध और साधक भी नहीं, एक निरा दुर्गपाल हूँ। दस वर्षों तक मैं अपने दुर्ग की रक्षा करता रहा और मेरी यही मनोकामना है कि इस दुर्ग की रक्षा करते हुए ही मेरे प्राणों की बलि चढ़े—ऐसी मनोभिलाषावाला मैं एक अति सामान्य मनुष्य हूँ। मेरे द्वारा जो भी अविनय हुआ वह सोमेश्वर सोलंकी का किया हुआ नहीं, आनेगुण्डी के दुर्गपाल का किया हुआ है।' वह और भी बहुत कुछ कहना चाहता था लेकिन मुँह तक आई हुई बातों को गले में ही घोंटकर अन्त में उसने केवल यही कहा, 'दादा, मेरे अविनय को भी क्षमा कीजिए।'

'जिसके हाथ में और जिसके सिर पर विजयधर्म की रक्षा का भार है, वह यदि अयोग्य और कुपात्र प्रतीत हुआ तो हम उसे पलक झपकते अपदस्थ कर सकते हैं। हमारा महाप्रधानी जब तक हम चाहें स्थविर है और जब हम चाहें दंडी-पथिक है। लेकिन जब तक वह अपने अधिकार पर आरूढ़ है तब तक तो हम सबके लिए—रायराया, दुर्गपाल, नायक, दंडनायक और इस वानप्रस्थ सौमैया के लिए भी शिरसा वन्दनीय है। तुरुष्क बेगम को उसने आदरपूर्वक ले आने को कहा है; उसकी इस बात का रहस्य हमें समझना होगा, मेरी भी समझ में अभी यह बात आई नहीं है। इतना मैं अवश्य कहूँगा कि यदि माधव हमें अपनी यह बात समझा न सका तो उसे दूसरा अवसर नहीं दिया जायेगा। हाँ महाप्रधानी, अब तुम अपनी बात हम सब को समझा-कर कहो।'

'दादा, रायराया, दुर्गपालजी, आप सब सुनिए। जिस प्रकार दादा ने कहा कि मुझे अपनी बात समझाने के लिए दुबारा अवसर नहीं दिया जायेगा

उसी प्रकार मैं भी दादा से, रायराया से, और सोमेश्वर सोलंकी के द्वारा सभी दुर्गपालों, नायकों, दंडनायकों, रायसों, बेसवागों, कुरुबों और पांचालों से कहता हूँ कि आज के बाद यदि मुझे आगे फिर कभी अपनी कही हुई बात को समझाना पड़ा तो मैं उस अवसर का उपयोग करने के बदले गंगा के किनारे—काशी—चला जाऊँगा। अब आप मेरी बात सुनिए।'

जिस प्रकार दादा ने धमकी दी थी उसी प्रकार माधव ने भी धमकी दे दी। यह सुनकर दादा सोमैया अपने ओठ चबाने लगे। सोमेश्वर की समझ में न आया कि क्या करे—बैठा रहे या खड़ा हो जाये, इसलिए वह कभी बैठ जाता था और कभी खड़ा हो जाता था। रायराया बुक्काराय कभी माधव की ओर, कभी दादा सोमैया की ओर, कभी सोमेश्वर और कभी सोना की ओर इस तरह देखने लगे, मानो उनसे कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया हो।

और उधर माधव महाप्रधानी ने एकदम शान्त, निराकुल, और निरुद्वेग स्वर में कहना आरम्भ किया—आप सब लोग केवल इतना ही जानते हैं कि भगवान कालमुख हमें शिक्षा देने ले गए थे, लेकिन उनके शिक्षा देने का ढंग क्या था, इसे आप नहीं जानते। अनेक दर्शनार्थी, यात्री, भाविक और भक्त प्रतिदिन भगवान के पास संवाद, समाचार और अफवाहें लेकर आते थे। हमारा काम था उन सब को सुनना, उन पर तर्क करना, अनुमान लगाना और बीच में जो कड़ियाँ टूटी हों उनका पता लगाकर उन्हें यथा-स्थान जोड़ना।

'और भगवान उन सबका वीतराग दृष्टि से अन्वेषण-अनुशीलन करते थे। हमारे तर्कों और अनुमानों को वह अपनी प्रज्ञा की कसौटी पर कसते थे। अन्त में भगवान इस निर्णय पर पहुँचे कि उनके सब शिष्यों में मैं माधव विजयधर्म की धुरा को वहन करने की क्षमता रखता हूँ, सामन्त में सेना के संचालन और सेनापतित्व की योग्यता है, भोलानाथ की पात्रता शास्त्रों का उद्धार और संकलन करने की है, उरुगप्पा दंडनायक बनने के योग्य है, कम्पनकुमार विजेता बन सकता है और मराप्पाकुमार के दुर्गपाल बनने की संभावना है। इस वर्गीकरण के अनुसार ही भगवान ने हमारी शिक्षा-दीक्षा की।'

लोग चकित होकर सुनते रहे। किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि कालमुख भगवान का शिक्षण-क्रम शास्त्राभ्यास के साथ-साथ इतना व्यावहारिक, व्यापक, और सीधे-सीधे विजयधर्म को स्पर्श करनेवाला भी होगा। उन दिनों शिक्षा का अर्थ होता था अष्टाध्यायी, न्यायशास्त्र और कपिल का सांख्य-दर्शन पढ़ना, खंडन-मंडल की कला में पारंगत होना, और बहुत हुआ तो आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर लेना। इसलिए लोगों का अनुमान था कि भगवान कालमुख के शिक्षण-क्रम में भी इन्हीं सब विषयों का समावेश होगा, वेद-वेदांग पढ़ाया और समझाया जाता होगा और जैनों तथा भागवतों के लुप्त शास्त्रों के उद्धार पर भी जोर दिया जाता होगा। भगवान ने अपने शिष्यों को व्यवहार-योग की भी शिक्षा दी है, यह जानकारी वहाँ उपस्थित सभी लोगों के लिए विस्मयकारक थी।

कुछ रुककर माधव ने आगे कहा—भगवान के आश्रम में समस्त भारतवर्ष से यात्री और भक्त आते थे। उनके द्वारा हमें ज्ञात हुआ कि दिल्ली का सुल्तान मुहम्मद तुग़लक देवगिरि में आ बसा है और भीषण अर्थ-संकट में है। उसके मलिक इस अर्थ-संकट के निवारण के लिए तुंगभद्रा के पार-वाले प्रदेशों की सम्पदा लूटने का उपाय सुझा रहे हैं। अमीर इससे सहमत नहीं। वे शासन-व्यय में कोर-कसर करने और प्रजा का उचित रीति से शासन करने के पक्ष में हैं; बाहर से सेना बुलाकर नये प्रदेशों पर आक्रमण करने के पक्ष में वे नहीं। इस मतभेद के कारण देवगिरि के दरबार में अमीरों और मलिकों के बीच गज-ग्राह-जैसा संघर्ष हो रहा है। मुहम्मद तुग़लक के सामने एक कठिनाई और भी है। अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुग़लक सदैव बाहर से प्रचुर वेतन और पुरस्कार देकर सैनिकों को बुलाते रहे; इस-लिए तातार और समरकन्द के मुगल अमीरों की यह धारणा बन गई कि भारतवर्ष में अपार सम्पदा है और उसे लूटा जा सकता है, तो लूटने के लिए किसी के किराये के सैनिक बनकर क्यों जाना चाहिए, स्वयं अपनी सेना लेकर ही क्यों नहीं पहुँच जाना चाहिए! इस परिस्थिति के कारण, इस समय, मुहम्मद तुग़लक किसी प्रकार की सैनिक हलचल करने की स्थिति में नहीं है।

उसके राज्य में कहीं भी अमीरों और मलिकों में सुलह और मेल नहीं है, इसलिए भी वह कहीं आक्रमण नहीं कर सकता।

'तो फिर उसके इस प्रकार के सन्देश का अभिप्राय क्या है? क्या वह हमें सीधे-सीधे युद्ध में उलझाना चाहता है या इस सन्देश का वास्तविक अभिप्राय कुछ और ही है?'

'दादा, इसका उत्तर पाने के लिए हमें सबसे पहले सन्देशवाहक अमीर मलिक ग़ाज़ी हसन अलाउद्दीन गंगू बहमनी को देखना और उसके सम्बन्ध में विचार करना होगा। उसकी बातें कुछ सच हैं, कुछ झूठ हैं। इस व्यक्ति के मन की बड़ी ही विचित्र स्थिति है। हिन्दुओं को कष्ट देने में उसका तनिक भी विश्वास नहीं। उसका स्वामी हिन्दू था, इसलिए हिन्दुओं के प्रति उसके मन में पक्षपात है। परन्तु साथ ही गंगू महाराज ने उसके सम्बध में राजयोग की जो भविष्यवाणी की थी वह उसे रात-दिन व्यग्र किये रहती है। हिन्दुओं की बदौलत यदि उसका राजयोग सफल हो जाये तो उसे कोई आपत्ति नहीं। तब हिन्दुओं पर तलवार सूँतकर चढ़ दौड़ने में भी उसे कोई असमंजस न होगा। परन्तु वह इस बात को भी जानता है कि समस्त तुर्क सल्तनत के मलिकों के मन फिरे हुए हैं; युद्ध से होनेवाली सैनिकों की हानि की पूर्ति पहले विदेशी तातारी, मुगलों, अफगानों और बलूचों को किराये के सैनिक बनाकर की जा सकती थी, वह अब नहीं की जा सकती! पहले तातार, समरकन्द और बुखारा के जो मलिक मुहम्मद तुग़लक के लिए लूट-मार करते थे वे अब मुहम्मद तुग़लक को ही लूटने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। आपको सम्भवतः ज्ञात नहीं कि तातार, समरकन्द और बुखारा के मलिकों ने मिलकर मुहम्मद तुग़लक पर आक्रमण कर दिया था और मुहम्मद को उन्हें एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ देकर सन्तुष्ट करना पड़ा था। अब मुहम्मद स्वयं उन पर आक्रमण करने की तैयारियाँ कर रहा है। इस कार्य के लिए उसने दिल्ली में एक विशाल सेना का संगठन किया है। उस सेना की सहायता से वह पहले तातार और खुरासान को और तत्पश्चात् चीन को विजय करना चाहता है। विदेशी मलिकों को भारत में बुलाकर बसाने की नीति का उसने सर्वथा परित्याग कर दिया है। यह स्थिति अमीर हसन को

अपने राजयोग की सिद्धि के लिए अनुकूल प्रतीत हो रही है। वह अपने मुक़द्दर की खोज में निकला है और भविष्य-निर्माण के लिए उसकी दृष्टि देवगिरि या गुजरात या मालवा के ऊपर लगी हुई है।'

'तुम्हारी इन स्थापनाओं का आधार क्या है—मात्र तर्क-परम्परा अथवा वास्तविक जानकारी?' दादा ने पूछा, 'ऐसा भी तो हो सकता है कि दिल्ली में संगठित की जा रही सेना हमारे लिए हो और यह सन्देश उसका प्रारम्भ।'

'नहीं दादा, ऐसी बात नहीं है। यदि ऐसी बात होती तो यह सन्देश लेकर अमीर हसन न आता और सन्देश का निमित्त सुल्तान की बेगम न होती।'

'यह तुम कैसे कह सकते हो।'

'दादा, सन्देश आपके ही लिए है, आपके ही नाम है, ऐसा अमीर हसन ने कहा और यह आपने भी सुना है।'

'हाँ, परन्तु....'

'दादा, आप जानते हैं, मुहम्मद की बेगम मेहेर सुल्ताना कौन है?'

'नाम तो कहीं सुना हुआ-सा लगता है।'

'दादा, यह मेहर सुल्ताना गुजरात के विद्रोही वीर और अलाउद्दीन खिलजी के सारे परिवार को मौत के घाट उतारकर छह महीने तक दिल्ली पर शासन करनेवाले खुशरूखान गुजराती की पुत्री है।'

'हाँ, अब याद आया।'

'खुशरूखान को आप जानते हैं और अब यह भी याद आ गया होगा कि मेहर सुल्ताना ब्राह्मण गंगू कन्याली की पोष्य-पुत्री थी।'

'हाँ, यह भी याद आया।'

'अमीर हसन गंगू बहमनी की बेगम कौन है, यह आप जानते हैं?'

'कौन है?' सोमेश्वर ने पूछा।

'इसका नाम है रैहाना। पहले उसका नाम वल्लरी था। वह गंगू कन्याली के मोची मित्र की पुत्री है। यह तग़ी मोची कौन है सो भी जानते हैं? आजकल का मलिक रहमान ही तग़ी मोची है। यह मलिक रहमान

देवगिरि का सुप्रसिद्ध मलिक और अमीर मलिक अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी का पालक एवं एक समय का सिपहसालार है।'

'कृष्णाजी ने बताया था कि एक मोची गुजरात से आकर गुजरात के राजा के साथ रहा था; वह यही तो नहीं है?' दादैया सोमैया ने पूछा।

'जी हाँ; वही है। गुजरात के राजा रायकरण के साहसिक कार्यों में—आप चाहें तो उन कार्यों को लूटमार का नाम दे सकते हैं, चाहें तो युद्ध का—साथ देने के लिए दो व्यक्ति गुजरात से आये थे; एक था गंगू कन्याली और दूसरा था तग़ी मोची। एक तीसरा व्यक्ति भी उस महासंहार में से बचा रह गया है, परन्तु उसका परिचय मैं आपको बाद में दूँगा। तग़ी मोची मुसलमान हो गया। उसकी पुत्री वल्लरी से गंगू महाराज ने विवाह किया। मरते समय गंगू महाराज ने हसन को तग़ी मोची के पास जाने का आदेश दिया। तग़ी मोची आगे चलकर मलिक रहमान बना। इसी मलिक रहमान को खुशरूखान पटवारी ने अपनी कन्या प्रदान की। वह लड़की पहले मुहम्मद के भांजे को ब्याही गई थी। इस समय वह मुहम्मद की बेगम है और मेहर सुल्ताना के नाम से पुकारी जाती है। तग़ी मोची की पुत्री वल्लरी पहले गंगू महाराज को ब्याही गई थी, बाद में मुसलमान बनकर उसने हसन गंगू के साथ विवाह कर लिया। जानते हैं यह विवाह किसने करवाया?'

नहीं।'

'भगवान कालमुख की आज्ञा से स्वयं कृष्णाजी नायक ने।'

यह सुनते ही सब-के-सब स्तब्ध रह गए; थोड़ी देर किसी के मुँह से शब्द भी नहीं निकला। फिर सोमेश्वर उठ खड़ा हुआ, उससे रहा न गया। वह बोला—महाप्रधानीजी, यह रही मेरी तलवार। अपने अविनय के प्रायश्चित-स्वरूप इसे आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। आप फिर से बँधवाएँगे तो बाँधूँगा, नहीं तो जो दंड देंगे उसे सहर्ष स्वीकार कर लूँगा।

'मैं जो दंड दूँगा उसे आप स्वीकार करेंगे?'

'जी, अवश्य।'

'तो इस तलवार को उठा लीजिए। यह आज तक जिस प्रकार विजयधर्म

की शोभा बढ़ाती रही उसी प्रकार आगे भी बढ़ाती रहे। अब जाइए, मेहर सुल्ताना को आदर-मान-सहित यहाँ दादा के पास ले आइए।'

'मेरे पास?'

'हाँ दादा, आपके पास। वह अभी मुझे नहीं जानती परन्तु आपको पहिचानती है। आपसे ही बातें करने के लिए वह यहाँ आई है।'

रायराया ने भारी स्वर में कहा—विद्यारण्य, आप सच ही विद्या और ज्ञान के अरण्य की भाँति हैं। भले ही भगवान विद्याशंकर के आप शिष्य हों, परन्तु हमारे तो गुरु ही हैं।

सहसा बलदेव सोलंकी वहाँ दौड़ा आया और भयंकर रोष से सबकी ओर घूरकर देखता हुआ खड़ा हो गया।

१३. राजन्, चिता रचाओ!

बलदेव को वहाँ, इस प्रकार, अकस्मात् आया देख सभी को विस्मय हुआ; सोमेश्वर तो क्रोधोन्मत्त ही हो गया।

सोना लपककर अपने भाई के पास पहुँची और बोली—भाई, तू लौट क्यों आया? तूने तो मुझे वचन दिया था।

'उस वचन को पालन करने का यह अवसर नहीं है सोना। और न निर्वासन-आज्ञा के उल्लंघन के परिणामों को ही सोचने का यह अवसर है।'

सोना को परे धकेलकर वह आगे बढ़ा और बोला—तुंगभद्रा के उस पार तक तुरुष्क बढ़ आये हैं, और तुम सब यहाँ बैठे एक अन्धे की ठकुरसुहाती कर रहे हो!

'बलदेव, चला जा यहाँ से!' सोमेश्वर ने आज्ञा दी।

'आज्ञा-पालन करने का यह समय नहीं। पिता और पुत्र के पारस्परिक शिष्टाचारों पर विचार करने और उन्हें निबाहने का भी यह समय नहीं। किसी का कुशल-क्षेम पूछने और नमस्कार-अभिवादन की प्रथाओं को निबाहने का भी यह समय नहीं। मैं तुम्हें यह बताने आया हूँ कि तुंगभद्रा के उस पार तक तुरुष्क आ पहुँचे हैं। तुम लोग कुछ समझते भी हो या नहीं?'

'हमें सब-कुछ मालूम है।'

'और फिर भी तुम हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हो?'

'हाँ। लेकिन तुझे इन सब बातों से क्या मतलब?' सोमेश्वर ने कहा, 'तुझे तो निर्वासित किया गया था, तू फिर लौटकर क्यों चला आया?'

'दुर्गपालजी!' विद्यारण्य ने कहा, 'आप जाइए और जो आदेश दिया गया है उसका पालन कीजिए। बलदेव से हम निपट लेंगे।'

'आदेश? कैसा आदेश? तुरुष्कों का सामना करने का आदेश दिया गया हो, तो पिताजी, मैं भी आपके साथ चलता हूँ।'

'दुर्गपालजी! आप जाइए और तुरुष्कों के उस लाव-लश्कर को आदर-मान के साथ यहाँ ले आइए।'

'तुरुष्कों को आदर-मान के साथ यहाँ ले आओ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ?' बलदेव ने कुछ उत्तेजित और कुछ व्यग्र होकर कहा।

विद्यारण्य माधव उठकर खड़े हो गए और बोले—बलदेव, तुम्हें राजाज्ञा के द्वारा निर्वासित किया गया है, परन्तु फिर भी तुम नहीं जा रहे, इसलिए हमीं यहाँ से चले जाते हैं। पता नहीं, क्यों तुम्हें अपने पिता की कठिनाइयों को बढ़ाने में आनन्द आता है! अस्तु, राज-आज्ञा का पालन करवाने का काम और दायित्व दुर्गपाल का, तुम्हारे पिता का है। चलिए दादा, चलिए! अन्दर पधारिए रायराया! सोना, दादा का हाथ थामो।

सोना किंकर्त्तव्यविमूढ़ खड़ी रही। वह उद्विग्नतापूर्वक कभी महामात्य की ओर देखती थी और कभी अपने भाई की ओर। उसने माधव को अपना हाथ दादा को थमाते देखा! अन्त में उसने दाँत पीसकर अपने भाई से कहा—तुझे सोना की शपथ है भाई, यदि तू यहाँ से चला न गया। मुझ पर दयाकर और यहाँ से चला जा। तेरे कारण पिताजी को कितना कष्ट हो रहा है, कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है! रायराया और महामात्य नहीं चाहते कि पिताजी की तलवार तेरे रक्त से रंजित हो। क्या तू पिताजी को जानता नहीं? कुल की मर्यादा उन्हें तुझसे किसी भी प्रकार कम प्यारी नहीं। क्या तू उनके हाथों पुत्र-हत्या करवाकर ही रहेगा? मान जा,

क्यों मेरे और अम्माँजी के जीवन को दुःखी बनाना चाहता है? और कुछ नहीं तो मा-बेटी पर ही दया करके चला जा! भगवान तेरा भला करेंगे!

यह कहकर सोना मुड़ी और रायराया तथा महाप्रधानी के पीछे कुटिया के अन्तर्भाग में अदृश्य हो गई, उसने मुड़कर भी नहीं देखा।

बलदेव वहाँ अकेला रह गया—नितान्त अकेला और उपेक्षित। जैसे किसी को उसकी आवश्यकता ही नहीं थी। कोई उसकी बात भी सुनने को तैयार नहीं था। तुरुष्कों से किये जानेवाले युद्ध मे भी उसका कोई उपयोग नहीं था। युद्ध यहाँ करता ही कौन! एक गड़रिये को राजा और एक लँगोट-धारी साधु के शिष्य को महाप्रधानी बनाकर सारा कारोबार इन लोगो ने उन दो मूर्खों के हाथ मे सौंप दिया। परिणाम यह हुआ कि तुरुष्कों को आदरपूर्वक बुलावा भेजा गया। आज तक सोलंकियों की यहाँ ऐसी धाक रही कि किसी तुरुष्क का साहस तुंगभद्रा के इस पार आने का न हुआ। आज वह धाक जाती रही, सारा प्रभाव ही समाप्त हो गया। अब तो आनेगुण्डी के दुर्ग में और पम्पापति के इस धाम मे भी तुरुष्क मूछों पर बल देकर, छाती पर मूँग दलते हुए घूमेंगे और सो भी हमसे ही निमंत्रण पाकर!

'अच्छा है....अच्छा ही है....यह अच्छा है कि मैं गोभूरी हूँ....' उसने दाँत पीसते हुए कहा। रोष की ज्वाला उसकी छाती में धधक उठी—अच्छा ....है....अ....च्छा...ही....है....

थोड़ी देर वह वहाँ उसी प्रकार खड़ा रहा। फिर चार दोरंगी अन्दर आये। उन्होंने बलदेव से उसकी तलवार माँगी। बलदेव ने दाँत किटकिटा-कर तलवार म्यान से खींच निकाली। यह देख चारों दोरंगी सिर झुकाकर बाहर चले गए।

बलदेव मारे तिरस्कार के ठठाकर हँस पड़ा—जिसके दोरंगी इतने कायर हों वे नायक कैसे होंगे? और जिनके नायक ऐसे हों वे तुरुष्कों के फौज-फाटे को देखकर डरें नहीं तो क्या करें?

परन्तु उसकी हँसी मुँह की मुँह में रह गई। इस बार चार के बदले आठ दोरंगी अन्दर आये। सभी के हाथों में नंगी तलवारें थीं। वे आकर दिवालों से टिककर खड़े हो गए। न उन्होंने बलदेव से उसकी तलवार माँगी, न उसे

नमस्कार किया, न मुँह से एक शब्द ही बोले । इस प्रकार खड़े हो गए मानो मिट्टी के पुतले खड़े हों ।

बलदेव बारी-बारी से उनकी ओर देखने लगा । क्या ये मेरा वध करने तो नहीं आये हैं ? मृत्यु से बलदेव डरता नहीं था । वह डरता था प्रवंचना से । उसने भाट-चारणों के मुँह सुन रखा था कि किसी जमाने में दक्षिणापथ में, रामसेतु से लेकर तुंगभद्रा के किनारे अघोरनाथ के धाम तक, सोलंकियों का ही राज्य था; लेकिन लोगों ने छल-कपट और प्रवंचना करके सारा राज्य छीन किया और केवल कल्याणी और वातापी ही सोलंकियों के अधिकार में रह गए । इन प्रशस्तियों ने बलदेव के मन में यह धारणा बद्धमूल कर दी थी कि वह स्वयं तो वीर है और शेष सभी प्रवंचक हैं । इसी लिए वह मौत से नहीं डरता था, डरता था छल-कपट और प्रवंचना से ।

अवश्य ये लोग छल-कपट से मेरा वध करना चाहते हैं । इन्होंने देख लिया कि आमने-सामने मुकाबला करके तो मुझ-जैसे वीर नर को परास्त नहीं किया जा सकता, इसलिए अब छल का सहारा ले रहे हैं । अगर इन्होंने कपट करके मुझको मार डाला, तो ?

वह तेजी से घूम-घूमकर प्रत्येक दोरंगी की ओर देखने लगा । डर रहा था कि कहीं कोई छिपकर वार न कर दे ! वह इतनी फुर्ती से घूम रहा था कि चकरघिन्नी ही बन गया । तभी उसने दूसरे आठ दोरंगियों को नंगी तलवार लिये वहाँ आकर चुपचाप खड़े होते देखा ।

'मेरा खून करना चाहते हो ?' बलदेव ने ललकारकर पूछा । लेकिन किसी ने जवाब न दिया ।

'मैं सरलता से, बलि के बकरे की भाँति, मारा नहीं जाऊँगा, हाँ !'

फिर भी किसी ने जवाब नहीं दिया ।

'तुम सबको मारकर मरूँगा ।' बलदेव ने चीखकर कहा । परन्तु फिर भी मिट्टी के पुतले मौन ही बने रहे ।

बलदेव ने देखा कि इतने सारे दोरंगियों से सामना करना पड़ गया तो यह स्थान एकदम घिरा हुआ होने के कारण छोटा पड़ेगा ।

'मैदान में आओ जरा, तो मजा बताऊँ । इधर....मैदान में....' बलदेव

अपनी तलवार को म्यान में डालकर बाहर निकल गया। दोरंगियों में से कोई हिला-डुला भी नहीं। थोड़ी देर तक बलदेव बाहर और दोरंगी कुटिया के अन्दर खड़े रहे। फिर दोरंगी बाहर निकले। उन्होंने अपने पीछे कुटिया का द्वार बन्द किया और एक कतार में खड़े हो गए।

दोरंगियों को अपने पीछे आते न देख बलदेव झुँझला उठा। हूँ, तो यह उसे कुटिया से बाहर निकालने की चाल थी! मरने के लिए प्रस्तुत और महँगे मूल्यों पर प्राण बेचने का निश्चय करनेवाले योद्धा को जब यह पता चला कि युद्ध होने को ही नहीं था तो मारे क्रोध के उसकी देह फुँक गई। अन्दर के उबलते क्रोध को उसने तिरस्कार और लापरवाही के नीचे छिपाया और म्यान से तलवार निकालकर आस-पास के पड़े-पौधों पर प्रहार करता हुआ वहाँ से चल दिया। अब भी किसी ने उसका पीछा नहीं किया, इसलिए उसका क्रोध, तिरस्कार और अभिमान बढ़ता जाता था।

सहसा एक स्वर उसे सुनाई दिया और वह चलते-चलते रुक गया। स्वर सोना का था। वह कह रही थी :

'मुझे और क्या चाहिए? किस लिए चाहिए? लेकिन एक बात अवश्य चाहती हूँ : मेरे भाई को निर्वासित किया; अच्छा ही किया, परन्तु अब उसे सकुशल चला जाने दीजिए।'

बलदेव ठिठककर टोह लेने लगा। कहाँ से आ रहा है यह स्वर? बेल-वृक्षों और कनेर के पेड़ों की बाड़ से घिरे हुए मन्दिर के उद्यान में से यह स्वर सुनाई दे रहा था। वह सतर्क होकर सुनने लगा।

दूसरा स्वर सुनते ही वह इस प्रकार उछल पड़ा मानो किसी कुरुबा (किसान) ने अपने खेत में विषैला साँप देख लिया हो! उस स्वर को पहि-चानकर उसने अपने-आपसे कहा—रायराया गड़रिया राजा मेरी बहिन के साथ क्या मिटकौस कर रहा है?

बात सच थी। वह दूसरा स्वर रायराया का ही था।

'सुन्दरी, सोलंकी राजकुमारी!' रायराया बुक्काराय ने कहा, 'तुमने स्वयं देखा कि उसे किसी भी प्रकार का आघात पहुँचाये बिना ही बाहर निकाला गया।'

'आपका आदेश था, इसी लिए आपके दोरंगियों ने उसे इस प्रकार चला जाने दिया।'

'तुमने मेरी सेवा की, सच पूछा जाये तो मेरे प्राण बचाये, बदले में प्राण-दान न दूँ तो मेरी कृतज्ञता ही क्या हुई?'

'रायराया, आपने बड़ी कृपा की; आभार मानती हूँ।'

सोना पाँवों में गिरने जा रही थी, रायराया ने हाथ पकड़कर उसे रोक लिया।

रायराया और सोना की दृष्टि मिली। सोना ने नेत्र झुका लिये और मुँह फेर लिया।

'मैं दादा के पास जाती हूँ। वह अकेले हैं और नये स्थान में घबरा रहे होंगे।' सोना ने लाज-मधुर स्वर में कहा।

बुक्काराय हँस दिये—वह क्यों घबराने लगे? मजे से महाप्रधानी के साथ बातें कर रहे हैं। हाँ, उस छोटी-सी जगह में मैं अवश्य घबरा रहा था, इसी लिए उठकर बाहर चला आया। तुम भी अन्दर गई तो घबरा जाओगी। प्राणायाम करनेवालों और समाधि के अभ्यस्तों के लिए वह स्थान अच्छा है; तुम और हम तो ऐसे स्थान में अवश्य ही घबरा जायें।

'रायराया, आपकी बड़ी कृपा हुई; बहुत-बहुत आभार मानती हूँ। आपने मुझ पर, मेरे पिता पर, मेरी माता पर, हमारे कुटुम्ब पर बड़ा उपकार....'

बलदेव झुँझला उठा। एक अकेले उसको छोड़कर सोलंकी कुल के गौरव की आज किसी को भी रंचमात्र चिन्ता नहीं रह गई है!

वह आगे बढ़ आया और कठोर स्वर में बोला—सोना, मैं तो जाता हूँ, अब बिलकुल चला ही जाऊँगा, रुकूँगा नहीं, परन्तु जाने से पहले इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि तुझे अपने कुल-गौरव और वंशाभिमान का कोई विचार भी है या नहीं? तेरा और तेरे बाप का—सभी का पतन हो गया है! सोलंकियों के उत्तराधिकारी आज गड़रिए और जोगीड़े की खुशामद कर रहे हैं! हद हो गई!

'भाई!'

'मुझे तेरा भाई कहलाते लाज लगती है। इस नाते को सदा के लिए

तोड़ फेंकूँ उसके पहले एक बात अवश्य कहना चाहता हूँ। तू इस गड़रिए का आभार मान रही है, पाँवों पड़ रही है, हाथ जोड़ रही है, चोरी-छिपे मिल रही है, इतने से जी न भरता हो तो इससे विवाह भी कर ले ! विवाह करने से यह तो होगा कि आज तू इसके चरण चूमती है तो कल यह तेरे चरण चूमेगा ।'

और सोना की चीख तथा बुक्काराय के क्रोध की परवाह न कर बलदेव वहाँ से चलता हुआ !

'खड़ा रह !' रायराया ने चिल्लाकर कहा, 'इस अपमान के लिए....'

'ओ-हो....गड़रिये के बेटे को मानापमान का इतना खयाल ?'

'खड़ा रह, दुष्ट ! पापी ! नराधम ! इस अपमान के लिए.....'

बलदेव रुक गया। धीरे-धीरे चलता हुआ वह रायराया के सामने आ खड़ा हुआ—अपमान ? फिर अपमान शब्द का उच्चारण किया ! और वह भी तुमने ? सोलंकी कुल की कन्या के साथ विवाह करने की बात तुमको अपमानजनक लगती है ? सुन ले सोना ! सुन अपने इस रायराया की बात ! अब तुझे इसकी पतुरिया (रखैल) बनकर रहना होगा, पत्नी बनकर नहीं।

और बलदेव फिर मुड़कर चल दिया। जाते-जाते विषैले साँप की फुफकार के-से स्वर में उसने कहा—यह तुम्हारा अपमान नहीं, सोना का अपमान भी नहीं, वास्तव में मेरा अपमान है। और एक दिन रायराया.... रा....य....रा....या....मैं इसका बदला अवश्य लूँगा।

और वह आगे बढ़ गया। उसने मुड़कर यह भी न देखा कि उसकी इस बात की सोना और रायराया पर क्या प्रतिक्रिया हुई; और वे क्या करने जा रहे हैं। बाहर रायराया का सफेद घोड़ा बँधा था। उसने उसे खोला और बड़ी उद्दंडता से बोला—रायराया, तुमने अपना राज्य छोड़ने की आज्ञा तो मुझे दी, लेकिन मेरे जाने के लिए किसी वाहन का प्रबन्ध नहीं किया। मैं तुम्हारी भूल को सुधारे लेता हूँ। और इस अश्व को लौटाने के लिए भी मैं स्वयं ही आऊँगा।

वह कूदकर घोड़े पर सवार हो गया और उसे जोर से एड़ लगाई। घोड़ा एड़ और लगाम की खींच-तान का अभ्यस्त नहीं था। बलदेव के इस

व्यवहार से वह बौखला उठा और हिरन की भाँति चौकड़ी भरकर भाग चला।

'क्या हुआ? क्या हुआ?' कहते हुए दोरंगी चारों ओर से दौड़ पड़े। रायराया ने चुपचाप भागे जाते बलदेव की ओर इशारा किया। दोरंगी अपने-अपने घोड़ों की खोज में जाने लगे।

रायराया ने कहा—जाने दो। वह घोड़ा आसानी से काबू में आने-वाला नहीं। और उसने कहा भी है कि देर-अबेर वह स्वयं घोड़े को लौटाने आयेगा। तुम लोग अपना काम करो।

विस्मित होते हुए दोरंगी अपने-अपने स्थान पर लौट गए।

रायराया सोना के पास आये। सोना के नेत्रों से क्रोध और अपमान के आँसू बह रहे थे। चेहरा उसका लाल सुर्ख हो गया था। मारूँ या मरूँ—यह थी उसकी मनःस्थिति।

रायराया ने कहा—शान्त और स्वस्थ हो जाओ सोलंकी कुमारी। यदि कोई क्रोध में आकर कुछ कह दे तो हमें उसका बुरा नहीं मानना चाहिए।

सोना कुछ बोली नहीं, ओठ चबाती खड़ी रही।

रायराया उसके सामने आकर खड़े हो गए। बलदेव ने सोना का भयंकर अपमान किया था! कोई सज्जन किसी नारी के सम्बन्ध में सोच भी नहीं सकता ऐसी बात उसने अपनी सगी बहिन के बारे में कह डाली थी। और उसी बहिन ने उसके प्राण बचाये थे, अपमानजनक क्रूरतापूर्ण मृत्यु से उसकी रक्षा की थी; वह बहिन उसे प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी और उसी बहिन के बारे में उसने ऐसी बात कही!

'मुझे उसने क्या कहा, आपने सुना नहीं? उसने कहा पतुरिया.... रखैल....'

'क्रोध में आकर आदमी कुछ भी कह बैठता है—उसका हर्ष-शोक कैसा? क्या करूँ, मैं विवश था, मैंने स्वयं उसे क्षमा किया था, तुम्हारे कहने पर ही उसे क्षमादान देकर अभय किया था, इसी लिए वह अवध्य था....यदि किसी दूसरे ने ऐसी बात कही होती, तो....'

'आप कुछ नहीं समझते रायराया!' सोना ने झुँझलाकर आवेशपूर्ण

स्वर में कहा। क्षण-भर के लिए वह राजरीति और राजोचित शिष्टाचार को भूल गई थी। 'आप नहीं समझते, न समझ सकते हैं। वैसे शब्द बोलने-वाला मेरा सगा भाई था....सोलंकियों की कन्या के बारे में और कोई भले ही ऐसी बात कहे....परन्तु मेरा भाई....रायराया! मैं अब यहाँ से हिलूँगी नहीं। सगी माता को भी अपना मुँह दिखा न सकूँगी। मेरे लिए यहीं चिता चुनाओ राजन्!'

'सोना कुमारी ...'

'रायराया! क्वाँरी कन्या की बात किसी पुरुष की समझ में आ नहीं सकती, फिर मैं तो सोलंकियों की कन्या हूँ। मेरे लिए चिता तैयार करवाइए।'

रायराया ने कहा—सोना कुमारी, तुम्हारा ऐसा ही आग्रह है तो चिता भी तैयार करवा दी जायेगी। और उस चिता में तुम और हम दोनो साथ ही प्रवेश करेंगे।* विजयनगर के राजराजेश्वर भगवान विरूपाक्षदेवसान्निध्यात् का तुम्हें यह वचन है—यह निश्चय है। अब शान्त होकर मेरी बात सुनो :

'कुल-गौरव की रक्षा के लिए मरकर जीना और जीकर मरना—इन दोनों मार्गों में सनातनकाल से मतभेद चला आता है। तुरुष्कों के साथ संग्राम में उत्तर भारत की वीर नारियों और नरों ने भी पहले मार्ग का अवलम्बन कर देखा; पर यह मार्ग व्यक्तिगत वीरता और महत्व का होते हुए भी सामुदायिक श्रेय का नहीं, जन-समुदाय के लिए अनुपयुक्त ही प्रमाणित हुआ है। और जो मार्ग सामुदायिक श्रेय का नहीं होता समझदारों को उससे दूर ही रहना चाहिए। यह भी एक त्याग है—त्याग ही नहीं महात्याग है। आज हमें ऐसा ही त्याग करने की आवश्यकता है। अपने हाथों मृत्यु को निमंत्रित कर अमरत्व प्राप्त करनेवाले सदा-सर्वदा वन्दनीय हैं; परन्तु वीरता-पूर्वक जीवित रहकर मरनेवाले उनसे भी महान हैं; क्योंकि वह मार्ग जीवन का मार्ग है। कौन है जो सोलंकियों की कुल-मर्यादा को नहीं जानता! तुम्हारे सदेह चिता पर चढ़ जाने से उसमें किसी प्रकार की अभिवृद्धि नहीं

* 'सोनायाः परिणय'—पंडित राजनाथ कृत।

होगी। हाँ, जीवित रहकर तुम उसके गौरव को बढ़ाने के लिए अवश्य परिश्रम कर सकोगी।'

'परन्तु...राजन्....

'सुनो मेरी प्रतिज्ञा : इस जन्म में मैं विवाह करूँगा तो केवल तुम्हारे साथ, और किसी के साथ नहीं—तुम्हारे जीते-जी और तुम्हारे मरणोपरान्त भी....'

'राजन्....

'सोना देवी, महान निर्णय करने के लिए अभी हम बहुत छोटे, अपूर्ण, अपरिपक्व और अयोग्य भी हैं। धर्मशास्त्र के अनुरूप निर्णय करना हो तो आओ चलें विद्यारण्य माधव के पास; लोकनीति के अनुरूप निर्णय करना हो तो चलो चलें दादा सोमैया के पास; राजनीति और लोकनीति के समन्वय के अनुरूप निर्णय करना हो तो चलना होगा राजगुरु के पास। आओ चलें।'

१४. दारुल्सल्तनत

मेहर सुल्ताना के साथ आये हुए खुरासानी तुरुष्क सैनिक दिखने में बड़े ही विकराल थे। उन सब का आनेगुण्डी दुर्ग में जोरदार स्वागत किया गया। सैनिकों के स्वागत और मनोविनोद का भार सोमेश्वर सोलंकी के सहायक अमरनायक पर था। उसका एक उत्तरदायित्व यह भी था कि तुरुष्क सैनिकों को स्वागत-समारोह और आमोद-प्रमोद से एक पल का भी अवकाश न मिलने पाये। अमरनायक का वास्तविक नाम नागर नायक था। उस नागर नायक ने अपने कर्त्तव्य का पूरी तरह पालन किया। तुरुष्क सैनिकों के स्वागत और मनोरंजन में कोई त्रुटि नहीं रहने पाई और न उन्हें दम मारने की फुर्सत मिली।

बेगम साहिबा मेहर सुल्ताना और अपनी बेगम रैहाना को साथ लेकर अमीर मलिक हसन पम्पापति के धाम में गया।

वहाँ उनका स्वागत करने के लिए दादा सोमैया और विद्यारण्य माधव उपस्थित थे।

'पधारिए बेगम साहिबा !' माधव ने कहा, 'आप इस देवस्थान को देखना चाहती थीं, प्रसन्नतापूर्वक देखिए। अन्दर एक अन्धे वृद्ध सज्जन हैं, जो संन्यासी हैं। दूसरा मैं ब्राह्मण हूँ। पर्दे की इसलिए यहाँ कोई विशेष आवश्यकता नहीं। रहे अमीर साहब, सो वह आपके भाई के समान हैं। आप भी अन्दर पधारिए अमीर साहब !'

मेहर सुल्ताना ने अन्दर प्रवेश किया। उसके पीछे-पीछे रैहाना और अमीर मलिक ग़ाज़ी हसन ने भी प्रवेश किया।

रंगमंडप में आकर मेहर थोड़ी देर तक इधर-उधर देखती रही। उसने दादा सोमैया की ओर ध्यान से देखा, विद्यारण्य माधव को भी ध्यानपूर्वक देखा और फिर अपनी जेब से वाराह की स्वर्णमुद्रा निकाली। यह मुद्रा बराबर आधे भाग में भोंडेपन से कटी हुई थी। काटते अथवा तोड़ते समय जो अंश खुरदुरे और निकले हुए रह गए थे उन्हें वैसा ही छोड़ दिया गया था।

अपने हाथ की खुली हुई गोरी हथेली में, उस स्वर्णमुद्रा को लिये हुए मेहर सुल्ताना खड़ी रही। मलिक अमीर हसन के तो कुछ भी समझ में नहीं आया। वह मुँह बाये कभी माधव की ओर तो कभी दादैया सोमैया और कभी मेहर सुल्ताना की ओर देखता रहा।

इतने में माधव ने अपने पास से उस सिक्के का आधा भाग निकाला और ऊपर से मेहर सुल्ताना की हथेली पर गिरा दिया। मेहर ने बिना कुछ कहे उस अर्द्धवाराह * को ले लिया। अपनी हथेली पर रखे हुए अर्द्ध-वाराह के साथ उसे जोड़कर देखा। दोनो अर्द्धवाराहों के खुरदुरे और निकले हुए किनारे आपस में ठीक-ठीक बैठ गए। थोड़ी देर तक वह भय-चकिता हरिणी-जैसे अपने विशाल और कमनीय नेत्रों से माधव की ओर

---

* अर्द्धवाराह—आधा वाराह : दोमारों (गुप्तचरों) के पारस्परिक परिचय और जिसे कभी प्रत्यक्ष न देखा हो उससे मिलने पर वार्त्तालाप करने के लिए अर्द्धवाराह का उपयोग किया जाता था।

देखती रही। फिर उसने कहा—मुझे तो किसी ज़ईफ़ आदमी से मिलने की उम्मीद थी।

और उसने उस जुड़े हुए सिक्के को बार-बार देखा और तब वल्लरी (रैहाना) को दे दिया। वल्लरी ने भी उसे ध्यान से देखा।

'लेकिन यह सुनार की दुकान की तरह का माजरा क्या है?' हसन कुतूहल से प्रेरित होकर अन्त में पूछ ही बैठा।

वल्लरी को हँसी आ गई। उसने कहा—खाविन्द, तुम्हारे और मेरे एक बार के आक़ा ने तुम्हारे मुक़द्दर के बारे में यह पेशगोई की थी कि तुम्हारी क़िस्मत में कहीं की सल्तनत लिखी है और वह तुम्हें कभी हासिल होगी।

'हाँ, कहा तो था, मगर उससे अभी क्या मतलब है?'

'वह सल्तनत तुम्हें अनक़रीब और यहीं दस्तयाब हो—इस माजरे की यही कैफ़ियत है।'

'माशा अल्लाह बेगम! तुम्हारे मुँह में क़ोरमा और कबाब! कितनी प्यारी बात कही है तुमने! वाक़ई तुम बड़ी सयानी हो।'

'यह बेगम सयानी न होती तो मियाँ, तुम न जाने कहाँ-कहाँ की ठोकरें खाते फिरते और क़यामत तक अपने पाँव तोड़ते ही रह जाते। अब बराये मेहरबानी चुपके बैठो—हम औरतों की बातों में दखलन्दाज़ी मत करो!'

'मगर यह जो सुल्तान सलामत की बेगम साहिबा हैं....और सुल्तान को क्या तुम नहीं जानती? एक बार हाथी का पाँव देख चुका हूँ, अब दुबारा...'

'ख़ामोश ख़ाविन्द, ख़ामोश! खून का प्यासा खूँख्वार शेर भी शेरनी के आगे भेड़ा बन जाता है और हमारी बेगम साहिबा भी शेरनी हैं; अब ख़ामोश, एक भी लफ़्ज़ नहीं।

'मगर मुझे...बेगम....तूने मुझको...यह तूने क्या ग़ज़ब किया?'

'अब मियाँ, चुपके भी रहो! चुपचाप सुनते चलो! हमारी तजवीज़ नापसन्द हो तो इनकार कर देना। इतना यक़ीन मानो कि तुम्हारे इनकार करने पर कोई एक क़दम भी इधर-उधर न होगा। ले अब बस, अल्लाह का नाम लो और चुपके हो जाओ!'

'अच्छी बात है। खामोश हो जाता हूँ। चुपचाप सुनता रहूँगा। मगर खयाल रहे, मेरे इनकार करने पर कोई एक क़दम भी नहीं उठायेगा। नहीं तो तुम जानती हो कि मैं सुल्तान सलामत का वफ़ादार नौकर हूँ और मेरा गुस्सा भी बहुत तेज़ और बहुत बुरा है!'

'जानती हूँ मियाँ,जानती हूँ। तुम्हारे गुस्से की बाबत मैं ही नही जानूँगी तो कौन जानेगा। ले अब तो खामोश हो जाओ।'

मलिक और उसकी बेगम के बीच हुए उपर्युक्त वार्तालाप को मेहर सुल्ताना चुपचाप सुनती रही। वह इस प्रकार निर्विकार भाव से सुन रही थी कि उसे देखकर हसन को यह आशंका हो आई मानो सामने खड़ी नारी मुहम्मद तुग़लक की बेगम नहीं जिब्रईल के आक़ा की मरियम हो।

'क्यों रैहाना, तुम्हारी गुफ़्तगू खत्म हुई?'

'जी मलिका।'

'तो अब हम अपनी बातचीत की इब्तिदा करें।'

'जी!'

मेहर सुल्ताना ने अमीर की ओर देखा।

रैहाना ने मन्द मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—हुजूर इनकी ओर से कोई अन्देशा नहीं। यह सुल्तान सलामत के जाँनिसार अमीर और मेरे शौहर हैं।

इस आश्वासन के बाद मेहर सुल्ताना धीरे-धीरे माधव की ओर बढ़ी, जो अभी तक चुपचाप खड़ा था। उसके सामने पहुँचकर मेहर ने कहा—आप दादा सोमैया के साथ—उनके बाजू में हैं? मेरा तो खयाल था कि कोई बूढ़ा आदमी होगा।

'इस बात की चिन्ता न करो। मेरा माधव दंडकारण्य जितना बूढ़ा है। विद्या का अरण्य ही है यह।' दादा ने कहा।

'बैठिए।' मेहर सुल्ताना ने माधव से कहा।

माधव एक दर्भासन पर बैठ गया। उसके सामने मेहर बैठी। मेहर के पीछे रैहाना बैठी। उसके बाद झुँझलाया हुआ हसन आगे बढ़ा और रंग-मंडप के खम्भे से टिककर स्वयं भी खम्भा बनकर बैठ गया। उसके चलकर

आने और बैठने के ढंग से ऐसा लगता था, मानो कह रहा हो, यहाँ मेरी आवश्यकता नहीं है, फिर भी मेरे यहाँ होने की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता और यही जतलाने के लिए मैं बैठा हूँ।

सब के बैठ जाने के बाद मेहर सुल्ताना ने सोने की एक डिबियाँ निकाली और बड़ी ही रहस्यपूर्ण मुस्कराहट के साथ बोली—यह हमारी दारुल्-सल्तनत है।

माधव ने डिबिया हाथ में लेकर उसे खोला। अन्दर मखमल मढ़ी हुई थी। और एक दाँत रखा था!

'बेगम साहिबा, यदि मैं भूलता नहीं तो दारुल्सल्तनत कहते हैं राजधानी को। यह बात समझ में नहीं आई कि गिरा हुआ दाँत दारुल्सल्तनत कैसे हुआ?'

'ओह, आप विद्यारण्य होकर भी इसका मतलब नहीं समझे! यह दाँत सड़ गया है, गिर पड़ा है, मगर है तो सुल्तान मुहम्मद का ही।'

'आपका यह अभिप्राय तो नहीं कि सिंह वीर हो, केसरी और जवाँमर्द हो, परन्तु एक भी दाँत गिर जाये तो वह अपनी वीरता और जवाँमर्दी को छोड़कर, अपने केहरि-व्रत को भूलकर दूसरों के किये हुए शिकार को चुराने लगता हैं, मुर्दा-मांस खाना आरम्भ कर देता है और नर-संहारक बन जाता है—वह जीवितों पर नहीं, लाशों पर टूटता है; सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के भी आज ठीक यही हाल हैं—वह लाशों को झिझोड़ने और दूसरों के किये हुए शिकार को चुराने लगा है!'

'मैंने चार सुल्तान, आठ वज़ीर और दो ग़ाज़ी देखे हैं, और आप भी एक ग़ाज़ी (धर्मवीर) ही हैं; समझदार ज़रूर हैं, मगर कुछ कचाई रह गई है। दादा ने कहा, आप विद्यारण्य हैं, ज़रूर होंगे, मगर आपके ख़यालों की दौड़ आपकी तालीम के पीछे रह जाती है। आप विद्यारण्य तो हैं, मगर कल्पनारण्य नहीं।'

'बेगम साहिबा का उलहना यथास्थान हो सकता है, परन्तु आपकी बात अभी भी मेरी समझ में नहीं आई।'

'आपने शेर की नज़ीर दी। कहा कि एक दाँत टूट जाने से शेर

जवाँमर्द होते हुए भी मुर्दे चुरानेवाला, लाशों को झिंझोड़नेवाला और आदमियों को मारनेवाला बन जाता है।'

'जी, यह तो पशु-विद्या की अति सामान्य बात है।'

'यह पशु-विद्या आपने सुल्तान पर लागू की। आपने कहा कि एक दाँत गिर जाने से वह भी लाशों को झिंझोड़ने और दूसरों के किये शिकार को चुरानेवाला हो गया है; मगर आदमियों को मारनेवाली बात आप सफ़ा भूल गए। हमारे सुल्तान इन्सानों को मारते ही नहीं उनका शिकार भी करते हैं।'

माधव चुपचाप सुनता रहा।

'माधवजी, मैं बिलकुल सच कह रही हूँ। हमारे सुल्तान का एक दाँत गिर पड़ा तो उसने दौलताबाद में उस दाँत पर एक शानदार मक़बरा बनवाया। और उस दाँत का जनाज़ा तो इतनी धूमधाम से निकाला गया कि मैं बयान नहीं कर सकती। जनाज़ा निकालते समय सुल्तान ने क्या कहा, यह जानते हैं? उसने कहा कि मैं अपना जनाज़ा तो देख नहीं सकूँगा, इसलिए अपने दाँत का जनाज़ा ही देख लूँ। अब उसका दूसरा दाँत भी गिर गया है। वह दाँत दारुल्सल्तनत बना और सुल्तान आदममार बन गया।

'सुल्तान के ख़याल मे यह बात जम गई कि दिल्ली सलामत नहीं। वहाँ आसपास लूटमार के लिए कुछ भी बाक़ी नहीं रहा, उल्टे दिल्ली के ही लूटे जाने का खतरा पैदा हो गया—मुगल और तातार और खुरासान के मलिक दिल्ली को लूटने के इरादे कर रहे हैं और बढ़े चले आ रहे हैं। यह देख सुल्तान सलामत ने हुक़्म फ़र्माया कि हमारी सल्तनत का दारुल्सल्तनत वहीं हो सकता है जहाँ हमारे दाँत का मक़बरा है। लिहाज़ा दिल्ली के बाशिन्दों के नाम शाही फ़रमान ज़ारी किया गया कि सब-के-सब दौलताबाद यानी देवगिरि चले जायें, क्योंकि दारुल्सल्तनत वहीं है। और इस हुक़्म की पाबन्दी के लिए आप जानते हैं क्या-क्या किया गया?'

मेहर ने दाँत पीसकर कहा—नहीं, आप कैसे जान सकते हैं? लोगों ने फ़रियाद की कि—'रास्ते में पानी नहीं है।' तो हुक़्म दिया गया कि 'जमुना नदी को भी साथ उठाते चलो!' लोगों ने फ़रियाद की कि 'रास्ते में धूप

लगती है।' तो हुक्म दिया गया कि 'दिल्ली के इर्द-गिर्द के इलाक़े में जितने भी दरख़्त हैं उन्हें जड़ से उखाड़कर दिल्ली-दौलताबादवाले रास्ते पर बो दिया जाये।' लोगों ने फिर फ़रियाद की कि 'रास्ते में खाना नहीं है' तो हुक्म दिया गया कि 'सारी सल्तनत में जहाँ-जहाँ भी अनाज और जानवर हों उन्हें वहाँ से बरामद करके रास्ते पर लंगरखाने खोल दिये जायें।'

'जानते हैं, इन बातों में उसके सलाहकार कौन थे? न कोई मलिक था, न अमीर, न कोई वज़ीर था, न कोई फ़क़ीर। दारुल्सल्तनत को दिल्ली से उठाकर दौलताबाद ले जाने के सलाहकारों में अव्वल सलाहकार था सुल्तान का तबलची लिच्छना, दोयम सलाहकार था सुल्तान का माली पीरा, सोयम सलाहकार था सुल्तान की मालिश करनेवाला गुलाम मुक़बिल, और पीरा माली का बेटा मंगू और सुल्तान का मुँहलगा पहलवान बाबू! ये सब हमारे आज के दौर के नये अमीर मलिक हैं। सभी को अमीरे सद्र के रुतबे इनायत किये गए हैं और सभी अमीरे हाजरीं के मनसबहार बनाये गए हैं।

'और जब सारी दिल्ली खाली हो गई तो सुल्तान सलामत घोड़े पर सवार होकर मुआयने को निकले। देखते क्या हैं कि एक खस्ताहाल बूढ़ा फ़क़ीर कमज़ोरी, बुढ़ापे और बीमारी की वजह से दिल्ली में रुका रह गया। बेचारा एक पाँव से लँगड़ा भी था! जानते हैं उसे हुक्म-उदूली की क्या सजा दी गई? खुद सुल्तान सलामत ने उसके साबित पाँव को अपने घोड़े की टाँग से बाँधा और घसीटते हुए ले चले। रास्ते में जितने भी भूले-भटके, लँगड़े-लूले और पिछड़े हुए लोग मिले सुल्तान ने उन सबको खदेड़-खदेड़कर आगे बढ़ाया, गर्ज़ यह कि सबका शिकार किया गया। इस तरह दिल्ली की सिर्फ एक चौथाई आबादी दौलताबाद पहुँच सकी। वहाँ पहुँचते ही सुल्तान को याद आया कि अरे, इल्मेरमन का, जिसके सुल्तान बेहद शौकीन हैं, कुतुबखाना तो दिल्ली ही रह गया! सुल्तान ने इसे इन्तहा दर्जे का बदशगून समझा और लोग अभी दम भी नहीं ले पाये थे कि सबको दिल्ली लौटने का हुक्म सुना दिया गया। थके-माँदे और पस्तःहाल लोग दौलताबाद के दरवाज़े ही देख पाये थे कि उन्हें लौटना पड़ा।'

'यह बात तो हम भी जानते थे, परन्तु विगतवार विवरण हमें ज्ञात नहीं था।'

'तफ़सील की अहमियत होती भी है और नहीं भी होती। इस मामले में इसलिए नहीं है कि जो वाक़या होना था वह हो चुका और लोगों पर जो क़हर बरपा होना था वह हो चुका; है इसलिए कि इन तकलीफ़ों से सुल्तान के मिज़ाज का आपको पता चलता है। एक वाक़या और बयान करके तब मैं असल मसले पर आऊँगी।'

थोड़ी देर रुककर मेहर सुल्ताना कहने लगी—एक बार ख़लीफ़ा का एक वकील हमारे यहाँ दिल्ली में आया। ख़लीफ़ा की मुराद यह थी कि एक पाक मुसलमान के नाते मुहम्मद तुग़लक ख़लीफ़ा की दुआ हासिल करे और एवज़ में ख़लीफ़ा को मोटी रक़म की भेंट चढ़ाये। उन दिनों सुल्तान सलामत के मिज़ाज का पारा चढ़ा हुआ था। खुरानी मुग़लों का हमला हो चुका था और काफ़ी दीनार देकर उन्हें लौटाया गया था। नतीजे में सुल्तान का हाथ बेहद तंग था। ख़लीफ़ा का पैग़ाम सुनकर सुल्तान गुस्से से आगबबूला हो उठा। शाही महल के दीवानेआम में करीब सौ मन लकड़ियों की आग जलाने का हुक्म दिया गया। जब आग धू-धू कर जल उठी तो सुल्तान ने ख़लीफ़ा के वकील से कहा, 'तू ख़लीफ़ा का वकील है, मैं तुझे इस आग में फेंके देता हूँ। अगर ख़लीफ़ा की दुआ से तू इस आग में से ज़िन्दा निकल आया तो मैं ज़रूर तेरे ख़लीफ़ा से दुआ माँगूँगा। और बदले में मोटी रक़म भी पेश करूँगा।' ख़लीफ़ा का वकील आग में झोंक दिया गया। वह बेचारा वहीं जलकर खाक़ हो गया। तुरन्त बाद ही बंगाल के अमीरों ने बलवा कर दिया। सुल्तान ने समझा कि यह ख़लीफ़ा की बददुआ का ही नतीजा है। अब तो सुल्तान ने ख़लीफ़ा से दुआ पर दुआ माँगी, कई माफ़ीनामे भेजे और भेंट-ईनाम का तो ताँता ही लगा दिया।

'ये सब वाक़ये मैंने आपको इसलिए सुनाये कि आपको हमारे सुल्तान के मिज़ाज का पता लग सके। इल्म के वह बेहद शौक़ीन हैं यह आपको इल्मेरमन के कुतुबखानेवाली बात से मालूम होगा। उनके सयासी खयालों के अजूबियात का पता दारूल्सल्तनत को दौलताबाद तब्दील करने के वाक़ये

से लगेगा। और खलीफ़ा के वकीलवाला चुटकुला उनकी मौक़ापरस्ती का इज़हार करता है। वह इन्सानों को हलाक करते हैं और आदमियों का शिकार करते हैं, यह बात तो घर-घर की जानी हुई है।

'अब मैं वह बात कहती हूँ जिसे कहने के लिए यहाँ आई हूँ :

'आप शायद यह नहीं जानते कि मेरे वालिद गुजरात के परमार-मेघवाल थे। अलाउद्दीन खिलजी की फौज़ ने गुजरात को तहस-नहस कर डाला। उसका बदला लेने के लिए मेरे वालिद ने अलाउद्दीन खिलजी के सारे खानदान को मौत के घाट उतारा और खुद इस्लाम को क़बूल कर मुसलमान बन गए। फिर वह सुल्तान बने। सुल्तान बनने के बाद उन्होंने गुजरात और दक्खिन के लोगों से कहा कि सब मिलकर अगर मेरा साथ दो, मेरी मदद करो तो मैं हिन्दुस्तान की सरज़मीन से मुसलमानों को मार भगाऊँ। लोगों ने उन्हें यह जवाब दिया कि हम तो खानदानी बिरहमन, खानदानी राजपूत और खानदानी बनिया हैं, जब कि तू ठेठ चमार है; हम तेरा साथ दे ही कैसे सकते हैं! गुजरातियों ने उनका साथ नहीं दिया और मेरे वालिद मज़हबी भेदभाव और फ़िरकापरस्ती के शिकार हुए। आप इस बात को तो जानते ही होंगे माधवजी?'

'जी हाँ, जानता हूँ।'

'तो मैं आपसे पूछती हूँ कि यहाँ दक्खिन में, आपके दक्षिणापथ में गुजरातवाली बात दुहराई न जाये, इसका क्या एतबार? कहीं दुहराई गई, तो? क्या आप मज़हबी फ़िरकापरस्ती को क़ाबू में कर सके हैं? ऊँच-नीच, बापदादों की खानदानियत, मज़हब, मठ-मन्दिर, जागीर और रियासत के पुराने खयालों को नेस्तनाबूद कर सके हैं?'

'इस सम्बन्ध में, बेगम साहिबा, आप निश्चिन्त रहिए। गुजरात का पुनरावर्तन हमारे यहाँ कदापि नहीं हो सकता। गुजरात का महामात्य माधव था। यहाँ का महाप्रधानी भी माधव ही है; परन्तु इन दोनो माधवों में बड़ा अन्तर है; गुजरात का माधव धर्मारण्य कहलाता था, यहाँ का माधव विद्यारण्य कहा जाता है—और यही दोनो में सबसे बड़ा अन्तर है।'

'क्या आप जानते हैं कि मेरे वालिद के साथ कैसी दग़ा की गई?

दिल्ली की बादशाहत पर क़ाबिज़ होने के बाद मेरे वालिद ने अपने यहाँ काम करने के लिए खुरासान-तातार से एक बाप और उसके दो बेटों को बुलाया। बाप का नाम मलिक ग़ाज़ी गयासुद्दीन; लड़कों में एक का नाम मलिक रुकनुद्दीन और दूसरे का नाम मलिक रुकनुद्दीन फ़ीरोज़। इन लोगों ने मिलकर मेरे वालिद को ज़िबह किया, उनकी माल-मिल्कियत को लूट लिया और खुद दिल्ली के सुल्तान बन बैठे। बाप मलिक ग़ाज़ी गयासुद्दीन तुग़लक के नाम से दिल्ली के तख़्त पर बैठा और उसके बाद उसका लड़का मुहम्मद तुग़लक के नाम से। यह मुहम्मद तुग़लक वही मेरे वालिद का क़ातिल है। अब मज़ा देखिए कि जिसके बाप को क़त्ल किया उसी की दुख़्तर (बेटी) से मुहब्बत !'

कहते-कहते मेहर का चेहरा मारे क्रोध के तमतमा उठा। कड़वी घूँट की तरह ज़िन्दगी की कड़वी याद को निगलते हुए उसने आगे कहा—मैं आपको सिर्फ़ यह बताने आई हूँ कि मुहम्मद तुग़लक आप पर हमला करना चाहता है। उसका इरादा तो कई दिनों से था और उसने अपने इस इरादे को कभी छिपाया भी नहीं, पर अब वह इसको अमली जामा पहिनाने जा रहा है, क्योंकि उसके पास पैसा नहीं है और वह चीन पर हमला करना चाहता है।

'चीन पर चढ़ाई ? सुल्ताना, आप यह क्या कह रही हैं ? यह तो कहता भी दीवाना और सुनता भी दीवाना-जैसी बात हुई ! चीन ने भला उसका क्या बिगाड़ा है ?'

'हमारे सुल्तान का मिज़ाज ही कुछ अजीब क़िस्म का है। उनका अक़ीदा (विश्वास) है कि जो खुद होकर उनका काम बनाने नहीं आते वे सब बिगाड़ करनेवाले ही हैं। बात यों है कि चीन के बादशाह के दरबार में हमारे सुल्तान ने अपना एलची भेजा था। वह एलची चीन के बादशाह के नाम यह पैग़ाम लेकर गया था कि एक बादशाह को दूसरे बादशाह की मदद करने का खुदा का हुक्म है, लिहाज़ा चीन के बादशाह का यह फ़र्ज़ है कि वह अपनी फ़ौज भेजकर खुरासान, समरकन्द और बुखारा के मुगलों को शिकस्त दे और उनके आगेवानों को गिरफ़्तार करके और उनके मुल्क को

जीतकर सुल्तान मुहम्मद के हवाले करे, ऐसा न करना खुदा के हुक्म की ताहीन करना है।'

'फिर क्या हुआ?'

'फिर हुआ यह कि चीन के बादशाह ने काफ़ी भेंट-सौगातें देकर उस एलची को यह-कहकर लौटा दिया कि अगर सुल्तान मुहम्मद की बात सच है तो फिर उनका खुदा अलग और हमारा खुदा अलग है, क्योंकि हमारे खुदा का तो यह फ़रमान है कि पड़ोसियों के साथ मुहब्बत और मेल-जोल से रहना चाहिए और अपनी रियाया को आराम से रखना चाहिए।'

'यह उत्तर सुल्तान मुहम्मद को काहे को अच्छा लगा होगा!'

'जी हाँ, बिलकुल अच्छा नहीं लगा। इस जवाब को सुल्तान ने अपनी तौहीन समझा, तौहीन ही नहीं चीन के बादशाह की ओर से अपने मामलों में बेजा मदाखलत भी समझा, इसलिए उन्होंने चीन पर हमला करके वहाँ के बादशाह को शाही तौर-तरीक़े सिखाने का फैसला किया है।'

'बात तो बढ़िया है।'

'जी हाँ, बात तो ज़रूर बढ़िया है, लेकिन जिस तरह हर बढ़िया बात अपने आखिरी नतीजे में कड़वाहट लिये रहती है, उसी तरह यह बात भी कुछ कड़वी घूँट की तरह हो गई है। तातार, समरकन्द और बुखारा को शिकस्त देने के लिए चीन से इमदाद नहीं मिली, इसलिए अब सुल्तान सलामत ने चीन को पामाल करने के लिए उनसे मदद माँगी है! वे लोग कोई भी बात करने से पहले दीनार चाहते हैं। और सुल्तान के पास दीनार नहीं है, यह बात सभी को मालूम है।'

'लेकिन अलाउद्दीन का कोष क्या हुआ? कहते हैं कि वह तो कुबेर का कोष था।'

'था, यह सच है; परन्तु वह कहाँ है, इसे कोई नहीं जानता। खुशरूखान पटवारी के साथ ही वह खज़ाना भी खत्म हो गया, लापता हो गया! और इधर सुल्तान सलामत दीनारों के बिना परेशानहाल हैं। वह बल्ख, बुखारा और समरकन्द के मुगलों और मलिकों को गालियाँ देते और बेदीन कहते हैं, क्योंकि वे काफ़िर अहले इस्लाम का झंडा चीन-जैसे मुल्क में फहराने की

खुदाई खिदमत के एवज़ में दीनार माँगने का कुफ़्र करते हैं। लेकिन गाली देने और कोसने से तो बात बनती नहीं, इसलिए दीनारों का इन्तज़ाम करना ज़रूरी है; और सुल्तान का जाने क्यों और जाने कैसे यह ख़याल बन गया है कि दक्खिन में बेशुमार दौलत है और उसे लूटा जा सकता है, लिहाज़ा वह दक्खिन पर हमला करने की ज़ोर-शोर से तैयारियाँ कर रहा है।'

'और इसी लिए आप हमें सचेत करने के लिए यहाँ आई हैं।'

'जी हाँ ! हमारा सुल्तान झक्की और मग़रूर तो है ही। मैंने उससे दरख़्वास्त की—वही दरख़्वास्त जिसे आपके रूबरू सुल्तान का एलची अमीर मलिक ग़ाज़ी अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी मुहम्मद तुग़लक के पैग़ाम की शक्ल में पेश कर चुका है। मेरे यहाँ आने का और कोई बहाना तो हो नहीं सकता था। सुल्तान की बेगम भला और किस बहाने से यहाँ आ सकती थी ? सुल्तान ने मेरी दरख़्वास्त को तुरत मंजूर कर लिया और मेरे यहाँ आने का रास्ता खुल गया। मैं आई हूँ आपको होशियार करने। तैयार हो जाइए; जल्दी से जंग की तैयारियों में लग जाइए। गोभूरियों और दोमारों पर कड़ी पाबन्दियाँ लगा दीजिए। जुल्म और सितम में शैतान को भी मात करनेवाला झक्की, मग़रूर और बददिमाग़ सुल्तान मुहम्मद तुग़लक अपने दोज़खी सिपाहियों के साथ आप पर चढ़ा आ रहा है, तैयार हो जाइए !'

'बेगम साहिबा, सतर्क करने के लिए हम आपके अतीव आभारी हैं। हमें सतर्क और सचेत करने के पीछे आपका जो हेतु है उसे भी हम समझते और उसका आदर करते हैं। पिता से विश्वासघात कर उसका वध करने-वाले के साथ जब एक नारी को अपने पहले पति की वीभत्स और क्रूर हत्या के उपरान्त....'

'वालिद और ख़ाविन्द का हत्यारा एक ही आदमी है, महाप्रधानी, इस बात को आप भूलिएगा नहीं।'

'जी नहीं, भूलता नहीं हूँ ! अपने दो-दो प्रियजनों के साथ विश्वासघात कर उनकी हत्या करनेवाले के साथ एक नारी को विवाह करने के लिए विवश होना पड़े तो उस नारी के कर्म-अकर्म का निर्णय करने से पहले

साक्षात् धर्मराज को भी दो घड़ी रुक जाना पड़ेगा, तो वहाँ हम सामान्य जनों की क्या बिसात ! फिर भी मुझे एक शंका हो रही है !'

'बताइए आपका शुबहा क्या है ?'

'मलिक अमीर या कहिए कि अमीर मलिक हसन को आपने अपने साथ रखा....'

'उसकी ओर से आप बेफिक्र रहिए ! यह सुल्तान का खास भरोसे का आदमी है और सुल्तान के नये सलाहकारों, खानखानों और वज़ीरों के साथ भी इसकी दाँत काटी रोटी है; मगर साथ ही यह अपने-आपकी खिदमत मे भी मशगूल है। फ़तह के लिए जी तोड़ कोशिश करने के बाद भी सुल्तान को क्या मिलेगा, इसे तो सुल्तान ही जाने; मगर अमीर हसन के लिए तो हर कोशिश उसके मुक़द्दर के बारे में की गई पेशगोई को हक़ीक़त में बदलनेवाला फैसलाकुन क़दम ही होगा।'

'हाँ, उसके सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणी की कुछ उपयोगिता तो अवश्य है।'

'कुछ नहीं, बहुत है। इसी लिए मैं उसे अपने साथ लायी हूँ। मैंने आपका काम अपना फ़र्ज़ समझकर किया और आगे मौक़ा आने पर और भी करूँगी। हालाँकि यह मैं अपने मन की तसल्ली के लिए कर रही हूँ, मगर मेरी इस ख़िदमत की, आपकी निगाहों में, कुछ कीमत है या नहीं ?'

'है क्यों नहीं, अवश्य है।'

'तो मेरी इस खिदमत के एवज़ में आप अमीर हसन को यक़ीन दिलाइए। दादा सोमैया दरवेश हैं और दरवेश बड़ा पाक माना जाता है ! आप खुद ब्राह्मण हैं और ब्राह्मण की कही हुई बात हिन्दुओं में खुदा के इलहाम की तरह पाक समझी जाती है। आप दोनो साहबान अमीर हसन को यक़ीन दिलाइए।'

माधव मेहर सुल्ताना के अभिप्राय को समझ गया और उसने कहा—मैं विश्वास दिलाता हूँ अमीर हसन को कि यदि सुल्तान मुहम्मद के स्थान पर या मुहम्मद के पश्चात् अमीर हसन दौलताबाद का सुल्तान हुआ तो हम अपने साम्राज्य को तुंगभद्रा के उस पार बढ़ाने और फैलाने का प्रयत्न

नहीं करेंगे ! बहमनी सुल्तान को यह मुझ ब्राह्मण महाप्रधानी का अभिवचन है। जब तक बहमनी सुल्तान तुंगभद्रा की सीमा का आदर करता रहेगा हम भी अपने वचन का पालन करेंगे।

मेहर सुल्ताना ने इशारे से अमीर हसन को पास बुलाकर कहा—सुना हसन ? मुसलमानों में सैयद जितने पाक समझे जाते हैं हिन्दुओं में ब्राह्मण भी उतने ही, बल्कि उससे ज्यादा पाक होते हैं। इन्होंने तुम्हें यक़ीन दिलाया है; और क़ौल किया है; तुमने सुन तो लिया ?

'जी, मैंने सुना। मगर दौलताबाद की सल्तनत आम का दरख़्त तो नहीं कि ऊपर से पका-पकाया फल टपक पड़े।'

'पका-पकाया आम तोड़ने के लिए भी पुरुषार्थ करना होता है अमीर साहब।'

'असल बात तो यही है।' अमीर ने कहा, 'मुझे तो सुल्तान सलामत की ख़िदमत और वफ़ादारी के अलावा और कोई तरीक़ा कामयाबी का समझ में नहीं आता। अगर सुल्तान सलामत मेरी वफ़ादारी और ख़िदमत से खुश होकर मुझे दौलताबाद का सूबा बना दें तो....तो....उसके बाद....'

'उसके बाद मेरे पहले ख़ाविन्द गैरसप्पा को ढूँढ़ने के लिए वह तुम्हें जहन्नुम भी पहुँचा देगा, या हो सकता है कि मलिक मक़बूल और मलिक साबू की तरह हाथी के पाँव के वज़न का अन्दाज़ करने को भेज दे ! बताओ, क्यों नहीं भेज सकता ?'

अमीर ने कहा—अफ़सोस की बात है कि आज मेरे आक़ा गंगू महाराज ज़िन्दा नहीं। अगर वह ज़िन्दा होते तो मुझे ज़रूर सही-सही रास्ता बताते !

माधव को हँसी आ गई। अमीर को यह हँसी कुछ अर्थपूर्ण लगी, कुछ उपहासजनक भी लगी। वह एकदम सीना तानकर खड़ा हो गया और कुछ उत्तेजनापूर्ण तथा कुछ उद्विग्नतापूर्ण स्वर में कहने लगा :

'आप बड़े तक़दीरवाले हैं, क्योंकि आपकी जंग तो आपके सामने है। तक़दीर का खोटा तो मैं हूँ, क्योंकि मेरी जंग मेरे दिल के अन्दर है; सारी कशमकश वहीं होती रहती है। और मैं यह भी नहीं जानता कि वह जंग दो फ़रिश्तों के बीच है या फ़रिश्ता और शैतान के बीच या दो शैतानों के

बीच ! मगर इतना ज़रूर जानता हूँ कि जंग बड़ी ज़बर्दस्त है। महाप्रधानी, आप शुक्र कीजिए खुदा का, एहसान मानिए मालिक का कि आपके खून में दो नमक, दो फ़रायज़, दो वफ़ादारियाँ आपस में टकराती नहीं मगर मेरी नसों में दुतरफ़ा हलाली का खून बहता और आपस में टकराता और एक-दूसरे की काट करता रहता है। दिल के गोशे से खून की एक गर्दिश बड़े ज़ोर के साथ मेरे मालिक गंगू महराज की ओर को होती है—खुदा उन्हे नजात दे, जन्नत में उन्हें ऊँचा दर्ज़ा और रुतबा हासिल हो ! आज की मेरी सारी तरक़्क़ी और बहबूदी उन्हीं की बदौलत है ! हज़ार शुक्र उनके, लाख शुक्र उनके ! उन्होंने मुझ यतीम और गुलाम को अपने फ़रज़न्द की तरह रखा, पाला-पोसा और मेरी तालीम की। हाथी के पाँव-तले दिया जा रहा था तो उस सख्री इन्सान ने मेरी फ़िक्र और हिफ़ाज़त की। मैं तहे दिल से उनका शुक्रगुज़ार हूँ और मेरे खून के क़तरे-क़तरे में उनका नमक भिदा हुआ है। दूसरा एहसान मुझ पर है मेरे सुल्तान का। मैं उसका भी उतना ही शुक्रगुज़ार हूँ। हालाँकि उसका एक भी काम मुझे पसन्द नहीं। मगर उसने मेरा हाथ थामा और मुझे ग़ाज़ी बनाया; मुझे बरक़त अता की, और तरक़्क़ी की राह पर लगाया। पिछला जमाना गंगू महाराज की बदौलत था; आज का दिन सुल्तान की बदौलत है। कल किसकी बदौलत होगा यह मैं खुद नहीं जानता, जानने का कोई जरिया भी मेरे पास नहीं है। आज तो सिर्फ इतना जानता हूँ कि मेरा सुल्तान बड़ा भोला और भरोसा करनेवाला इन्सान है। वह भरोसा और एतबार करने पर आ जाये तो अपना सिर भी आपके हवाले कर दे। मगर साथ ही वह इन्तहा दर्जे का शक्की भी है। अगर उसको शुबहा हो जाये, या उसके मन की मौज हो तो वह उतनी ही असानी से आपका सिर भी कलम कर देगा। उसके साथ रहना जहरीले काले साँप से खेलना है ! खुश हो जाये तो माथे की मणि निकालकर दे दे और नाराज़ हो जाये तो डस ले कि एक घूँट पानी भी न माँगा जा सके ! फिर मुश्किल तो यह है कि वह कब नाराज़ होगा और कब खुश, इसका पहले से कभी पता नहीं चल पाता। सब-कुछ उसके मन की मौज पर मुनस्सर है। मैलिक साबू को उसने भरे दरबार में खिलअत

बख़्शी और जब वह घर पहुँचा तो जल्लाद वहाँ उसका रास्ता देख रहे थे! समझदार इन्सान तो कभी ऐसे सुल्तान का साया भी अपने ऊपर न पड़ने देगा और समझदारी भी इसी में है कि ऐसे शख्स से हज़ार कोस दूर रहा जाये। मगर मुझे मेरी मौत......मौत....या मेरा मुक़द्दर....मेरी खुलनेवाली तक़दीर उसके क़रीब और अनक़रीब खींचे लिये जाती है....'

वह खामोश हो गया। थोड़ी देर सन्नाटा छाया रहा। फिर उसने कहा—आप ऐसा हर्गिज़ मत समझ बैठना कि मैं यहाँ की बातें जाकर सुल्तान को बता दूँगा। मगर ऐसा भी मत समझ लेना कि सुल्तान को इन बातों का पता चलेगा ही नहीं। उसने तो पहले से ही क़यास कर लिया होगा। हमारे सुल्तान की खूबी तो यह है कि वह ज़रूरत से ज्यादा भोला और ज़रूरत से ज्यादा चालाक भी है। एक बार मशहूर अरबी मुसाफ़िर, शायर और नामानिगार इब्नबतूता सुल्तान के दरबार में आया। सुल्तान ने उससे पूछा—ऐ मुसाफ़िर! हमने तेरे इल्म, तेरी शायरी और तेरी नामानिगारी की बड़ी तारीफ़ सुनी है। हमने तेरी मेहमानवाज़ी की, तुझे इनाम-इक़राम भी अता किये। अब तू यह बता कि खुदा-न-खास्ता कल को तुझे यह खबर मिले कि सुल्तान मुहम्मद बहिश्तनशीन हो गया है तो तू अपने रोज़नामचे और तवारीख़ में क्या बयान दर्ज करेगा? माबदौलत जानना चाहते हैं।

'अच्छा! तो उस अरबी यात्री ने क्या उत्तर दिया?'

'अरबी मुसाफ़िर ने जवाब दिया—जहाँपनाह, मैं तो सिर्फ एक कलाम लिखूँगा और वह यह कि सुल्तान मुहम्मद बहिश्तनशीन हुए, यह बहिश्त की खुशकिस्मती है या बदकिस्मती इसे तो एक अल्लाह ताला ही जानता है, मगर यहाँ के लिए इतना ज़रूर हुआ कि सुल्तान इस दुनियावालों से छुटकारा पा गए और दुनियावालों ने भी उनसे नजात हासिल की।'

'बात तो उस यात्री ने यथातथ्य ही कही। एक ही वाक्य में सुल्तान का वर्णन कर दिया। बड़ा ही सत्यवक्ता था वह यात्री!'

'जी हाँ! लेकिन वह मुसाफ़िर तो अब नहीं रहा। अल्बत्तः सुल्तान अब भी मौजूद है और इस दुनियावालों को अभी तक उससे नजात हासिल नहीं हुई है। और खुद मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ?'

अमीर हसन ने असमंजस से भरे स्वर में कहा और तब लम्बी साँस लेकर बोले, 'काश आज के दिन गंगू महराज होते !'

'गंगू महाराज तो नहीं रहे, परन्तु उनकी दुहिता तुम्हारे सामने ही है।' माधव ने वल्लरी की ओर देखकर कहा।

वल्लरी बोली—मैं तो रोज़ इससे कहती हूँ कि सब सब की सँभालियो, मैं तो अपनी फोड़ती हूँ; ज़माने के दरिया में कोई जा गिरे तो उसे अपने ही तुम्बे के सहारे तैरना होता है।

'सच है, बिलकुल सच है, तो बताओ मैं क्या करूँ ?'

माधव ने कहा—मियाँ साहब, आप ऐसा कीजिए कि बेगम साहिबा को दौलताबाद लौटा ले जाइए; और जाकर सुल्तान से कहिए कि वहाँ के जंगल देखकर बेगम साहिबा का दिल खुश नहीं हुआ और अब मेरी बीबी अपने वालिद के पास गुजरात जाने की रज़ामन्दी चाहती है।

'ठीक.... उसके बाद ?'

'उसके बाद आपकी बेगम और आपकी तक़दीर, जो पड़ेगी उसे सँभाल लेगी।'

'अच्छी बात है, चलिए हुजूर बेगम साहिबा ! मैं नहीं जानता कि यहाँ से लौटकर हाथी के पाँव-तले दिये जाने को या हाथी की पीठ पर सवार होने को जा रहा हूँ !'

'घबराइए मत अमीर साहब ! अपने तक़दीर को भूलिए मत, उसमें अपना विश्वास बनाये रहिए। विश्वासोफलदायकः।'

'सवाल तो यह है कि दौलताबाद पहुँचने पर, मुझे लौट आया देख सुल्तान मेरे साथ बात करने तक रास्ता भी देखेगा ? मुझे बात करने का मौक़ा भी देगा ?'

'घबराइए नहीं अमीर साहब ! आपके दौलताबाद पहुँचने के पहले ही आपकी वीरता और साहस की कहानियाँ वहाँ पहुँच जायेंगी और दरबार में आपकी प्रशंसा हो रही होगी। शेष बातों को बेगम मेहर सुल्ताना साहिबा सँभाल लेंगी।' माधव ने अमीर हसन की पीठ पर हाथ रखते हुए उसे आश्वस्त किया।

१५. सम्प्रदाय और धर्म

बलदेव के मन को न चैन था, न शान्ति। उसे प्रतिक्षण यह बात कष्ट पहुँचाती रहती थी कि लोग उसे भुलाये दे रहे हैं, कोई उसकी बात नहीं सुनता और सभी उसकी सीधी बात का उल्टा ही अर्थ लगाते हैं। यह स्थिति उसके लिए अत्यन्त कष्टप्रद और असहनीय हो गई थी।

वैसे बात उसकी बिलकुल सीधी-सादी थी। इस देश में सोलंकी आज-कल के या कहीं बाहर से आये हुए तो थे नहीं। पुराणकाल से भी पहले के युग में इनका उल्लेख मिलता है। उस समय इन्हें चालुक्य कहा जाता था। चालुक्यों ने ही इस देश की जय-पताका को गुजरात तक फैलाया। स्वयं उसके अपने पूर्वजों ने गुजरात में राज्य किया और मालवा ही नहीं, ठेठ दिल्ली तक अपनी जीत के डंके बजाये! छह महीने तक तो वे दिल्ली को भी अपने अधिकार में किये रहे और वहाँ शासन भी किया। यदि भीमदेव भोला और मूर्ख न होता तो आज एक भी तुर्क इस देश में देखने को न मिलता।

यह था सोलंकियों का, उसके अपने पूर्वजों का पराक्रम। पूर्वजों के पूर्वजों ने तो ज़ीलन में भी अपना राज्य स्थापित किया था। यहाँ तक कि मलाया और स्याम देश में विजयराज्य के संस्थापक भी सोलंकी ही थे।

यह सब सोलंकियों ने किया और आज उन्हीं के घर में उनकी कोई पूछ नहीं! यह भी भला कोई बात हुई! स्वयं उसके पिता ने क्या कम पराक्रम किये? सोमेश्वर सोलंकी की वीरता और पराक्रम के तो आज घर-घर गीत गाये जा रहे हैं। उसका नाम सुनते ही देवगिरि के सूबा की नींद उड़ जाती है! शम्बूर और किरात, बीदर और गोंड आदि वनवासी तो उसका नाम निकलते ही दुम दबाकर भाग जाते हैं। दुष्टों ने पिछले पाँच सौ वर्षों से इस प्रदेश को संत्रस्त कर रखा था। कभी तुरुष्कों के साथ जा मिलते तो कभी इधर—दोनों ओर का ढोल पीटते रहते थे। आज दुआ देते हैं दाक्षिणात्य या—बलदेव ने दाँत पीस लिये—विजयधर्मी सोमेश्वर सोलंकी को कि उसने इन जंगली दस्युओं को तुंगभद्रा पार करना भुला दिया। आज तुंगभद्रा के

किनारे ठेठ सागर-तट तक कोई शत्रु ही नहीं रहने पाया। किसके प्रताप से? सोमेश्वर सोलंकी के प्रताप से। कलिंग का गजपति भी सोमेश्वर से काँपता है। पूर्वी समुद्र का सामुराय कपाय नायक भी, जिसके आतंक से डरकर तुरुष्कों ने समुद्री यातायात ही छोड़ दिया, सोमेश्वर से ही पूछकर पानी पीता है। यहाँ तक कि दाक्षिणात्यों का परमप्रिय वीर कृष्णाजी नायक, जो एक ओर गजपति, दूसरी ओर तुरुष्क और तीसरी ओर बीदरों-किरातों से घिरा हुआ होने पर भी वारंगल के राज्य में सिर ऊँचा किये शान से बैठा है, स्वयं कहता है कि उसकी यह शान सोमेश्वर के प्रताप के कारण है, स्वयं अपने कारण नहीं।

परन्तु....और इस परन्तु पर आकर तो बलदेव की गाड़ी ही रुक जाती थी और मुँह का स्वाद कड़वा हो जाता था। क्योंकि, बलदेव के खयाल में, सोमेश्वर के हाथ जितने लम्बे थे उसकी अकल उतनी ही छोटी थी! और इधर तो पंपापति के कालमुखे-कलमुँहे जोगीड़े के बहकावे में आकर उसने विजयधर्म की दुम को कुछ इस तरह पकड़ लिया कि सोलंकियों के वंश-गौरव की रक्षा का उसे रंच-मात्र भी ध्यान नहीं रह गया। क्या तो विजयधर्म और क्या उस जोगीड़े का राज्य? और फिर नीम चढ़ी गिलोय की भाँति ब्राह्मण मंत्री और गड़रिया राजा! बाप जिसका हल जोतते मरा और बेटा उम्र-भर भेड़ें चराता रहा—वह गड़रिया नहीं तो और क्या है? किसी ने दुर्गपाल बना ही दिया तो ऐसा कहाँ का योद्धा और शूरमा हो गया? दो-चार खुशामदी साधुओं, मँगते ब्राह्मणों और कायर नायकों ने रायराया कह दिया तो क्या इतने से वह रायराया हो गया? अजी, राम का नाम लो! हो चुके रायराया!

और पदवी भी कैसी? 'भगवान् विरूपाक्षदेवेशसान्निध्यात्!' पाखंड की हद हो गई! जो श्मशान में रहता, भभूत मलता और आक-धतूरे के फूलों की माला धारण करता है वह जगत् का पालक हो ही कैसे सकता है? जगत् के पालक हैं भगवान विष्णु....भगवान राम....भगवान कृष्ण....और जो इनके भागवत हैं वही। भागवतों के अतिरिक्त इस पृथ्वी पर शासन करने

का अधिकार और किसी का हो ही कैसे सकता है ? दूसरों की बात भगवान विष्णु मानेंगे ही क्यों ?

परन्तु कितने खेद की बात है कि आज सारी गंगा ही उलटी बहने लगी है। लोग भागवतों और सोलंकियों का परित्याग कर एक निगंठ साधु को राजगुरु, एक शैव मतावलम्बी ब्राह्मण को महामात्य और एक नास्तिक गड़रिये को रायराया बनाकर सिर-आँखों पर लिये फिर रहे हैं !

लेकिन रोऊँ तो किसके आगे और फरियाद करूँ तो किससे ? रोकर भी केवल अपने दीदे खोना है। किससे पूछूँ कि रसातल को चली जाती इस धरती को कैसे बचाया जाये ? यहाँ तो मनुष्य-मात्र पाप का भागी है और इस जघन्य स्थिति को सहनेवाला भागवत नरक का अधिकारी बन रहा है।

परन्तु फरियाद कहाँ की जाये ? और मजा देखो कि मुझे इस प्रदेश से निर्वासित ही कर दिया। निर्वासन की आज्ञा दी गड़रिए ने, व्यवस्था दी निगंठ ने और कार्यान्वित की शैव ने। लिंगायत टुकुर-टुकुर देखते रहे। और इस धरती का वास्तविक पुत्र, सच्चा भागवत निर्वासित कर दिया गया ! ओ भगवान कृष्ण, कथाकार तुम्हारी अनेक कपट-लीलाओं का वर्णन करते हैं, मुझे तुमने दो-चार ही कपट-लीलाएँ दी होतीं, फिर तो....फिर तो....

सहसा उसे घंटियों का स्वर सुनाई दिया। चौंककर देखा तो एक बारात जाती हुई दिखाई दी। मूर्ख ! माथे पर तुरुष्क मँडरा रहे हैं और इन्हें ब्याह की सूझी है ! अपना तो ठिकाना नहीं है और सन्तति बढ़ाने की फिक्र पड़ी है। गधे कहीं के !

बारात में एक पालकी थी। आगे-पीछे कहार उसे उठाये हुए थे। पालकी एकदम शुद्ध चाँदी की थी। विमान की आकृतिवाली वह पालकी नीचे से चौरस थी। अन्दर रेशम की पीली गादी बिछी हुई थी। गादी पर संगमरमर की एक मूर्ति पधराई गई थी। आगे-आगे भेरी और तूर्य, शंख और घंटियाँ बज रही थीं। दोनो ओर छोटे-छोटे बालक-बालिकाएँ चमर डुला रहे थे। वह मूर्ति पद्मासन में बैठे तीर्थंकर भगवान की थी। पालकी के पीछे-पीछे श्वेत वस्त्रधारी दो साधु चल रहे थे। वे निगंठ जैन साधु थे।

उनके पीछे आनेगुण्डी के वणिगा—वणिगों का पूरा वणिग्ग्राम ही था।

सब के अन्त में सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये वणिक् नारियाँ गीत गाती चली आ रही थीं।

धत् तेरे की ! यह बारात नहीं, जैनियों की शोभा-यात्रा है। आनेगुण्डी के वणिगा प्रतिवर्ष इसी प्रकार अपनी शोभा-यात्रा निकालते हैं। ससुरे कितने ठाठ-बाट से चलते हैं ! आदमी क्या हैं हीरा, पन्ना और मोतियों के ढेर हैं ! और इन्हें औरतें कौन कहेगा ? सोना-हीरा के आभूषणोंवाली पुतलियाँ ही हैं।

तुरुष्क तुंगभद्रा के परले पार तक आ पहुँचे हैं और इन्हें अभी शोभा-यात्रा की ही पड़ी है !....तुरुष्क....!

बलदेव का भागवत-प्रकोप सजग हो उठा। तुरुष्क आयेंगे क्यों नहीं ? जैन तो चाहते ही हैं कि वे आयें ? ये निगंठ तो उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे हैं। वणिगों को तुरुष्कों की भीति ही क्या ? तुरुष्कों ने उन्हें सताया ही कब है ? तुरुष्कों का तो सारा क्रोध, समस्त अत्याचार भागवतों के लिए ही सुरक्षित है। वे भागवतों के मन्दिर तोड़ते हैं, मूर्तियाँ खंडित करते हैं और देव-द्रव्य को लूट ले जाते हैं। कुछ शैवों को भी भुगतना पड़ा है, लेकिन सबसे अधिक मार भागवतों पर ही पड़ती रही है और आगे भी पड़ेगी। जैनियों को तुरुष्कों से क्या डर ? उनके आने की सुनेंगे तो एक छोड़ दो गाड़ी सोना पहुँचाकर छुट्टी पा जायेंगे। तुरुष्क मूर्ति-तोड़क अवश्य है, परन्तु आता है वह पेट लेकर ही, सोना भर दो। खुश होकर चला जायेगा। मार खायेंगे भागवत, केवल भागवत....

बलदेव दाँत पीसने लगा; ये मूर्ख समझते नहीं और समझना चाहते भी नहीं। इतनी बात भी नहीं जानते कि आज नहीं तो कल भागवतों और तुरुष्कों में समझौता हो जायेगा और दोनों यहाँ हिल-मिलकर रहने लगेंगे; परन्तु जैनों और भागवतों के बीच न कभी बनी है और न आगे कभी बनेगी। भागवतों के देव-द्रव्य—देवता को चढ़ाये हुए द्रव्य में से किसी को एक जीतल भी छूने का अधिकार नहीं और इसी लिए तुरुष्कों ने भागवतों के मन्दिरों को तोड़ना आरम्भ किया।....इसके विपरीत निगंठों के मन्दिर का समस्त द्रव्य

शासन अथवा संघ का होता है और इसी लिए वे अपने मन्दिरों के रक्षणार्थ तुरुष्कों को गाड़ियों सोना दे देते हैं....

कठिनाई यही है कि सोलंकियों का राज्य नहीं। यदि सोलंकियों का राज्य होता....परन्तु उस कालमुखे ने सब की मति फेर दी है, सभी को अन्धा बना रखा है, कोई सुनने को भी तैयार नहीं....

इतने में नगर के भागवत शेटी सिदाप्पा सामने से आते दिखाई दिये। उन्हें पता चल गया था कि बलदेव को निर्वासित किया है, इसलिए उन्होंने मुँह मोड़ लिया।

यह देख बलदेव ने कहा—अरे शेटी, मुँह क्यों मोड़ते हो ? मैं तुम्हें खा तो नहीं जाऊँगा ! मुझे निर्वासित किया है तुम्हारे सर्वधर्मप्रेमी विजयधर्मी रायराया ने। तुम मुँह भले ही मोड़ो, पर यह तो बताते जाओ कि मैं अब जाऊँ कहाँ ?

'नदी को पार करके चले जाओ सोलंकी।' परमभागवत सिदाप्पा शेटी ने इस तरह कहा, मानो बोलने में बड़ा कष्ट हो रहा हो, 'नदी पार करके चले जाओ। तुम्हारे निर्वासन के सम्बन्ध में राजाज्ञा के साथ-साथ धर्माज्ञा भी तो है !'

अत्यधिक व्यथा का अनुभव कर रहा हो, इस भाँति बलदेव सोलंकी ने कहा—हाँ, पार तो हो जाऊँ, और घोड़ा भी रायराया का है; परन्तु...

'इसमें किन्तु-परन्तु क्या ? यह घोड़ा और वह नदी। कूद पड़ो और निकल जाओ परले पार ! क्यों व्यर्थ अपने पिता की मुसीबतें बढ़ा रहे हो ? नदी पार करके छुट्टी पा जाओ !'

'यही तो मुश्किल है शेटी ! नदी के परले पार तुरुष्क डेरा डाले पड़े हैं।'

'तुरुष्क ! नदी के परले पार ? यह तुम क्या कह रहे हो ? डेरा डाले पड़े हैं ? अरे, नहीं भावजी, ऐसा भी कहीं हुआ है ? यह सब तुम्हारे बहाने हैं। तुम जाना नहीं चाहते। कैसा जमाना आया है ! राजकुमार कायर होने लगे हैं ! एक पहले का जमाना था कि किसी राजकुमार को निर्वासित किया जाता तो काले कपड़े पहिन, काले घोड़े पर सवार होकर चल ही देता था, पानी पीने के लिए भी नहीं रुकता था। और एक आज का जमाना है !'

'बात तो आपकी सोलहो आने सच है शेटी। मैं नदी-पार उतर जाऊँ तो आपके शैव राजा, शैव मंत्री और निगंठ राजगुरु सभी खुश हो जायें; और मैं चला भी जाऊँ, परन्तु उस पार एकदम किनारे पर ही तुरुष्क सैनिक डेरा डाले पड़े हैं। उनसे मैं अकेला तो लड़ नहीं सकता।'

'अरे, रहने भी दो भावजी! तुरुष्क यहाँ कहाँ?'

'नहीं मानना चाहते तो मत मानो। मुझे तो अब इस नगर में रहना नहीं है। निर्वासित कर ही दिया गया हूँ। लेकिन वह देखो....'

दूर पर अमीर हसन अपने कुछ मलिक गरुड़ों और सोमेश्वर अपने दोरंगियों के साथ जाते हुए दिखाई दिये।

'देखा शेटीजी? आप सब भागवत ऊँघते ही रह गए और उधर तुरुष्कों के साथ सन्धि-चर्चा और समझौता-वार्ता भी होने लगी।'

'समझौता-वार्ता? तो क्या तुरुष्क यहाँ आयेंगे? सोमेश्वर दुर्गपाल के रहते वे यहाँ आने पायेंगे?'

'सोमेश्वर बेचारे क्या करें? उनके हाथ तो विजयधर्म ने पहले ही काट रखे हैं। अब राजा और मंत्री दोनो ही शैव हैं।'

'तुरुष्क यहाँ आयेंगे?' सिदाप्पा बेचारे इतना घबरा उठे थे कि रह-रहकर इस एक ही प्रश्न को बार-बार पूछने लगे।

'तुरुष्क क्या, उनकी बेगमें भी आयेंगी; आ ही गई हैं। क्या आपने देखा नहीं?'

'लेकिन वे रहेंगे कहाँ?'

'यह मुझसे पूछते हैं? शैव राजा, शैव मंत्री और निगंठ राजगुरु से जाकर पूछिए, वही बतायेंगे! मदुरा का सूबा कहाँ रहता है? भागवत के मन्दिर में ही तो रहता है। तो ये तुरुष्क भी यहाँ, तुम्हारे मन्दिर में ही रहेंगे। और कहाँ रहेंगे? रहेंगे भी क्यों? शैवों के मन्दिर में भभूत के सिवा होता ही क्या है! निगंठ पहले ही सोने की गाड़ियाँ भरकर पहुँचा देंगे। अब रह गए भागवतों के मन्दिर और भागवतों के घर। जरा देखिए तो सही, तुरुष्क आ रहे हैं और भागवतों की पिटाई होगी, इस खुशी में निगंठों ने शोभा-यात्रा निकालना आरम्भ कर दिया है! लेकिन मुझे इन सबसे क्या

प्रयोजन ? निर्वासित कर दिया गया हूँ, चला जाऊँगा, न देखूँगा न पीर होगी।'

और कड़वी घूँट गले के नीचे उतार रहा हो इस प्रकार मुँह बिगाड़कर बलदेव वहाँ से चलता हुआ।

बलदेव तो चला गया, परन्तु परमभागवत सिद्दाप्पा शेटी-जैसे वहीं गड़कर रह गया। तुरुष्क आ पहुँचे, शैव उनसे समझौता कर रहे हैं। करेंगे क्यों नहीं ? श्मशानवासी महादेव की गाँठ में धतूरे के सिवा धरा ही क्या है ! निगंठ पहले ही सोने की गाड़ियाँ भरकर पहुँचा देंगे। फिर तो भागवतों के ही धाम तोड़े जायेंगे और भागवतों के ही घर में आकर तुरुष्क रहेंगे।

बलदेव जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, मार्ग में मिलनेवाले भागवतों को इसी प्रकार चिन्तातुर करता गया।

'मुझे क्या ? लेकिन मैं यह सब देख नहीं सकता, सह नहीं सकता, इसी-लिए मुझे निर्वासित कर दिया। जहाँ निगंठ राजगुरु हो वहाँ भागवत राजकुमार को भला कौन रहने देगा, उसे तो फूटी आँखों भी नहीं देखा जायेगा। तुम कहते क्या हो ? मैंने रायराया की हत्या करने का प्रयत्न किया ! हाँ, करूँगा क्यों नहीं ? भागवतों के धाम में तुरुष्कों को प्रवेश करने देनेवाले मुंड़ियों को मैं नमस्कार करूँगा ? कैसी बातें करते हो ? मेरी शिराओं में सात पीढ़ियों से सोलंकियो का शुद्ध रक्त प्रवाहित हो रहा है !....मेरे पिता...परन्तु जाने दो भावजी, जाने दो, मैं उनकी बात नहीं ही कहूँगा।...क्या मेरी बहिन के सम्बन्ध मे कुछ कह रहे हो ?...रहने दो भावजी, उसकी बात भी रहने दो ! मत पूछो भाई से बहिन की बात। क्या तुमने सुना नहीं ? वह अब रायराया की रानी बनेगी !...बस, इतने से ही समझ जाओ सब-कुछ...'

दो भागवत, चार भागवत, आठ, सोलह, बत्तीस...देखते-देखते भागवतों की अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गई।

बलदेव अपना राग अलापता रहा : विठोबा का मन्दिर, एक बार स्वयं सन्त ज्ञानेश्वर ने उसे पावन किया था...जाने दो भाई, आजकल सन्त ज्ञानेश्वर को कौन पूछता है ? आलवार तो सब मर मिटे...अब तो आयेंगे

तुरुष्क...और उनकी छत्र-छाया में जीने-पनपनेवाले महाम्लेच्छ शैव और निगंठ ! हमारे पूर्वज मूर्ख नहीं थे जो यह लिखकर रख गए कि भाव, सँकरी गली में पगला हाथी मिल जाये तो भी प्राण बचाने के लिए जिन-मन्दिर का आश्रय नहीं लेना चाहिए ! हमारे पूर्वजों ने तो यह भी कहा है कि दर्जी से कपड़ा सिलवाते समय भी 'सिवो' (सीयो और शिवः का अपभ्रंश) शब्द का उच्चारण नहीं करना चाहिए ।

'जरा इन निगंठों को तो देखो ! कितने आनन्द से भेरी और तुरही बजाकर ठाठ-बाट से शोभा-यात्रा निकाल रहे हैं...आज के जमाने में लोग हीरा-मोती और सोना-रूपा तो दूर काँसा भी जमीन में गाड़कर रखते हैं । और इन निगंठों की ओर देखो—किस तरह सज-धजकर और गहने-गाँठे पहिनकर निकले हैं ! इन्हें चिन्ता ही क्या है भावजी ? तुरुष्क आयेंगे तो गाड़ियाँ भर-भरकर सोना उलीच देंगे । कौन उनके घर से जाता है ? हमीं से कमाया था और आगे भी हमीं से कमा लेंगे...

'अरे मूर्खो ! तुमने अजयाली आलवार का वह भजन नहीं सुना ? कितनी सच्ची भविष्यवाणी की है उसने ! कावेरी-तट का वह भक्त तो डंके की चोट कह गया है कि जिस दिन निगंठ और भूतिया (भूतपति शंकर के अनुयायी—शैव) एक हो जायेंगे, भागवतों के परम कष्ट का दिन आया जानना...बस, आज वही दिन आ पहुँचा है...'

फिर तो जिस प्रकार बाँस-वन आग लगने से चटचट कर जल उठता है उसी प्रकार आनेगुण्डी के उस हासपटन में दावानल सुलग उठा ।

और तभी निगंठों की शोभा-यात्रा ने वहाँ प्रवेश किया ।

'देखते क्या हो ? मार भगाओ इन निगंठों को ! क्या तुम्हारी भुजाओं में बल नहीं ? पहले मारे वह सवा लाख का ! अवसर चूके वार करने से क्या लाभ ? और बाद में वार करने का अवसर भी कहीं मिला है ?' बलदेव ने भागवतों को उत्तेजित करते हुए कहा, 'वैसे तो मैं निर्वासित हूँ, परन्तु धर्म के काम में सोलंकी कभी पीछे नहीं रहता...'

और पहला वार बलदेव ने ही किया ! उसने एक भेरीवाले को उठाकर फेंक दिया ।

'हो...हो...हो...' कहते हुए पाँच-दस निगंठ उससे लिपट गए। कुछ खींचा-तानी हुई, कुछ कहा-सुनी हुई और आसन्न भय की आशंका के कारण जिनका मन कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान खो चुका था ऐसे वे भागवत निगंठों पर टूट पड़े !

'तुरुष्क भले ही आयें, पर तुम तो प्रसादी लेते जाओ...दुष्ट मुंडियो, मजा चखते जाओ...हमारे देवता को बेचकर अपने देवता की शोभा-यात्रा निकालना चाहते हो, क्यों ? लो, लेते जाओ, तुम भी क्या याद करोगे ?...'

और मार-पीट शुरू हो गई ! चीख-पुकार मच गई। कुछ हाथो के जौहर दिखाने लगे, कुछ डंडे लेकर पिल पड़े। जरा-सी देर में अच्छा-खासा संग्राम ठन गया। कोई किसी की बात सुनने को तैयार न था। सारा वातावरण भागवतों की ललकारों, निगंठ पुरुषों की व्यग्रता-भरी पुकारों, नारियों और शिशुओं की भय-विह्वल चीत्कारों से विक्षुब्ध हो उठा।

'शाबाश भागवतो, शाबाश ! यह एक बार ब्राह्मण मंत्री की ओर से, यह एक बार मुंडिया राजगुरु की ओर से। शाबाश...भरो, भरो सोने की गाड़ियाँ !...और लुटाओ हमारे मन्दिर...ठोको, ऐसी कुटम्मस कर दो कि जीवन-भर याद रहे !...भागवतों के माथे पर चढ़कर ढोल बजाना चाहते हो, क्यों ? तुम्हारे बाप का ही तो राज है ! मारो...मारो तुरुष्कों के इन दुमछल्लों को...मेरा बस चले तो...'

अपने घोड़े पर सवार बलदेव तमाशबीन की तरह, मौका मिलने पर, दो हाथ जमा देता था और भागवतों की भीड़ को बराबर उकसाता जा रहा था।

दुर्गपाल का अमरनायक नागर नायक वहाँ दौड़ा आया। वह मूल-निवासी तो गुजरात के बड़नगर का था। यहाँ आने पर बासव मत से प्रभावित होकर उसने वीरशैव सम्प्रदाय को अपना लिया था। वीरशैव के साम्प्रदायिक रीत्यानुसार वह सिर पर सफेद पगड़ी बाँधे था, कपाल पर लम्बा तिलक लगाये था। गले में सोने की जंजीर और उसमें शिवलिंग का प्रतीक टँका था। उसके हाथ की मुद्रिका में भी शिवलिंग था।

'बन्द करो ! बन्द करो !' उसने उच्च स्वर में ललकारकर कहा, 'बन्द करो यह झगड़ा टंटा और मार-पीट ।'

वह भागवतों और भाव्यों के बीच में जा कूदा और भाव्यों की जमीन पर पड़ी हुई पालकी की ओर बढ़ते हुए भागवतों को रोकने का प्रयत्न करने लगा ।

बलदेव ने उसे देखा और चिल्ला उठा—आया, टीलवा* आया ! क्यों रे अमरनायक, तू तो तुरुष्कों का सामना करने गया था न ?

'कौन बलदेवकुमार ?' नागरनायक ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा और कहा, 'आप यहाँ क्या कर रहे हैं ?'

'भावजी, मैं जो कर रहा हूँ वह जानने से तुझे क्या लाभ होगा ? यह बता कि तू क्या कर रहा है ?' और बलदेव ने भागवतों को सम्बोधित किया, 'यह नागर नायक तुम्हारे दुर्गपाल का दाहिना हाथ है । इस समय दुर्गपाल तुरुष्कों की सेवा और अभ्यर्थना में लगे हुए हैं, नहीं तो तुम पर जोर आजमाने के लिए स्वयं ही पधारते । अब उनके बदले यह नायक आया है । भागवतो, इसका उचित सत्कार करो !'

भागवतों के प्रहारों से अपने सिर को बचाने के लिए दोनो हाथ आगे की ओर को किये हुए नागर नायक ने कहा—बलदेवकुमार, तुम निर्वासित हो, निर्वासित किये गए हो, और तुम यहाँ लोगों को उकसाकर झगड़ा करवा रहे हो । तुम्हें इसके लिए पछताना होगा ।

'अच्छा भावजी, बहुत अच्छा ! पछताने का अवसर आने पर पछता भी लेंगे । ऐसी क्या जल्दी है ! मगर अभी तो हम तुम्हारे—मुंडिया, भूतिया और टीलवों के राज्य से निर्वासित हैं न ?'

कोलाहल खूब बढ़ गया था ! चीख-पुकार और शोर-गुल के कारण कान पड़ा शब्द सुनाई नहीं देता था । चारों ओर से लोग दौड़े चले आ रहे थे । जिसे जो हथियार मिला वही लेकर भागा आया ।

---

* वीरशैव अथवा लिंगायत धर्मावलम्बियों के लिए अन्य सम्प्रदायवाले इस प्रकार का अपमानसूचक सम्बोधन प्रयुक्त करते थे ।

'भागवतों को भाव्य पीट रहे हैं....'

'नहीं, भाव्यों को भागवत मार रहे हैं....'

'भाव्यों की शोभा-यात्रा को लेकर झगड़ा हुआ है....'

जितने मुँह उतनी बात थी।

और इसका परिणाम यह हुआ कि हासपटन में जहाँ भी भाव्य और भागवत ने एक-दूसरे को देखा वहीं दोनो आपस में गुँथ गए। कोई किसी की बात सुनने को तैयार नहीं था। सदियों पुरानी साम्प्रदायिक द्वेषाग्नि भभककर फूट निकली थी; विजयधर्म का झीना आवरण एक ही झटके में फटकर तहस-नहस हो गया था।

बात उड़ती-उड़ती निगंठ वणिगों के मणिग्रामों में पहुँची और सारे मणिग्रामों में स्यापा पड़ गया। भाव्यों की दुकानों और मकानों के दरवाजे फटाफट बन्द हो गए। बन्द द्वारों के पीछे नर, नारी और बच्चे थर-थर काँपने लगे।

कहीं आग लगी, कहीं सिर-फुटौव्वल हुआ!

किसी ने जाकर किले में खबर की। आनेगुण्डी के द्वार बन्द कर लिये गए कि कहीं विप्लव दुर्ग में न घुस आये। और दरवाजे-दरवाजे पर दोरंगी नियुक्त कर दिये गए।

किसी ने अफवाह उड़ा दी कि किले के दरवाजे बन्द करके अन्दर भाव्य, भूतिया और टीलवा मिलकर भागवतों की पिटाई कर रहे हैं; मुर्दों के ढेर लग गए हैं; भागवत नारियों की लाज लूटी जा रही है; भागवत शिशुओं का संहार किया जा रहा है; भागवतों की पूरी बस्ती साफ कर दी गई है!

बाहर उत्तेजना बढ़ती गई। पालकी के चारों ओर भयंकर युद्ध होने लगा। गली के युद्ध में हथियार के नाम पर तो पत्थर ही होते हैं, परन्तु राग-द्वेष, गाली-गलौज और सब प्रकार का मानसिक आक्रोश अपने उद्दाम रूप में उभरकर ऊपर आ जाता है। यहाँ भी उस सबका विकराल तांडव हो रहा था।

'ओ हो, भागवतों के इस गाँव और भागवतों के इस धाम में मुंडिया हमीं को मार जायेंगे!' बलदेव ने दाँत किटकिटा कर कहा। कभी वह लड़ाई

के बीच में जा कूदता, कहीं उत्साह की कमी दिखाई देती तो लोगों को ललकारकर जोश बँधाता। जहाँ आवश्यकता देखता आग में तेल डालता वह घूम रहा था। उसके एक हाथ में कहीं से लकड़ी आ गई थी। कभी-कभी वह उस लकड़ी से भाव्यों की पीठ, हाथ और सिर को गरमा भी देता था। भाव्य लड़ना नहीं चाहते थे। वे अपने देवता की पालकी को बचाने के लिए प्राणों की बाजी लगाये खड़े थे। चारों ओर से घिर गए थे। लकड़ियाँ बरस रही थीं। सिर फूट रहे थे। अधिकांश बस्ती भागवतों की थी और कोई समझदारी की बात करनेवाला नहीं था। यदि होता, तो कोई उसे सुननेवाला भी वहाँ नहीं था। 'मारो....मारो....मारो के अतिरिक्त और कोई आवाज ही नहीं सुनाई देती थी। दूर भाव्यों के जलते हुए मकानों का प्रकाश लड़ाई के इस मैदान पर फैल गया था और सारा दृश्य रक्त से आरक्त हुआ-सा प्रतीत हो रहा था।

'अरे, वह इरुगप्पा तो नहीं है?' बलदेव ने हाथ की लकड़ी से भाव्यों के बीच, घास की ढेरी में अंगारे की भाँति, मार्ग बनाते हुए कहा।

हाँ, वह इरुगप्पा ही था। पालकी के पास खड़ा था। चारों ओर से घिर गया था। सिर पर डंडे बरस रहे थे। बलदेव ने भी उसके सिर का निशाना साधकर लकड़ी उठाई। लेकिन किसी ने पीछे से उसकी लकड़ी को पकड़ लिया। बलदेव ने तेजी से मुड़कर पीछे देखा।

'कौन, बुक्काराय?' बलदेव ने दो डग पीछे हटकर कहा, 'तुम?.... तुम?'

'यदि यह मालूम होता कि तुम हमारी दया का इस तरह दुरुपयोग करोगे तो तुम्हें बाँधकर तुंगभद्रा के पार छुड़वाया होता।' बुक्काराय ने कहा और बलदेव को जोर से धक्का देकर आस-पास खड़े चार-छह भागवतों की कमर में हाथ डालकर किसी को पटका और किसी को परे उछाल दिया। फिर वह पालकी के सामने जा खड़े हुए।

'रायराया! रायराया!! रायराया!!!' समीप खड़े लोगों ने पहिचान लिया। और पुकार उठे, 'रायराया!'

पहली कतार में खड़े भागवतों के उठे हुए डण्डे अपने-आप नीचे झुक गए।

रायराया ने उच्च स्वर में गर्जना की—भागवतो, शान्त हो जाओ!

पीछे से एक पत्थर आया और सन्नाता हुआ रायराया के कान के पास से निकल गया और उनके पीछे खड़े किसी भाव्य के सिर में जाकर भचाक्-से लगा। वह चीखकर वहीं बैठ गया।

राय बुक्काराय ने चीखनेवाले की ओर देखा। पत्थर ठीक उसकी नाक पर जाकर लगा था; और नाक तथा मुँह से खून बह रहा था।

लपककर उन्होंने एक भागवत के हाथ से लकड़ी छीन ली और बड़ी तेजी से, बिजली की तरह, उसे घुमाने लगे। बात-की-बात में वहाँ चौगान हो गया, लोग पीछे हट गए।

'भागवतो, शान्त हो जाओ! भाव्यो, शान्त हो जाओ!' बुक्काराय ने कहा, 'नागर नायक यहाँ आओ!

दो भागवतों के बुक्काराय ने हाथ पकड़े। दो भाव्यों की बाहें दूसरे हाथ में थामीं। चारों को अपने सामने खड़ा करके उन्होंने कहा—नागर नायक, इन चारों विजयधर्मियों को अपने साथ लो और लोगों को शान्त करो।

भीड़ के बीच एक गली-सी बन गई। किन्हीं के हाथ में लाठियाँ थीं। किसी-किसी के हाथ में कुल्हाड़े थे। कोई अपने हाथों में गली के बड़े-बड़े पत्थर लिये हुए थे। सहसा भीमकाय रायराया को अपने बीच में पाकर किसी की समझ में न आया कि हाथ के हथियारों को क्या करे!

लेकिन रायराया ने किसी की ओर देखा भी नहीं। वह सीधे बढ़ गए बलदेव की ओर। उसके चेहरे पर तिरस्कार, रोष और किंकर्त्तव्यविमूढ़ता के मिश्रित भाव छाये हुए थे। इन मिश्र भावों ने उसके चेहरे को जहाँ घिनौना बना दिया था, वहीं भयंकरता भी प्रदान कर रखी थी।

एक भागवत के हाथ में से पुनः दूसरा डंडा खींचते हुए बुक्काराय ने कहा—दूर खिसक जाओ सब लोग!

लोग पीछे हटने लगे। बुक्काराय अपनी लकड़ी घुमाने लगे। लोग जल्दी-जल्दी पीछे हटते गए। जब काफी चौगान हो गया तो बुक्काराय

अपने हाथ की दूसरी लकड़ी बलदेव के पाँवों में फेंकते हुए गरजे—उठा !

बलदेव नासमझ की तरह टुकुर-टुकुर देखता रहा ।

बुक्काराय ने भूखे सिंह की भाँति पुनः दहाड़कर कहा—चल, उठा लकड़ी !

बलदेव ने यंत्रवत् लकड़ी को उठा लिया ।

'बलदेव, आज तेरी और मेरी शक्ति को परीक्षा हो जाने दे ! चला लकड़ी ! तेरे दिल में दया तो है नहीं, हो तो उसे परे रख दे । विजयधर्म के लिए तेरे मन में आदर नहीं है, यदि हो तो अभी विजयधर्म के रायराया के प्रति उसे प्रदर्शित करने की कोई आवश्यकता नहीं । चला लकड़ी, देखता क्या है ? पहला वार तू कर ! जितनी शक्ति हो, जितना कौशल हो सब का उपयोग कर लेना । जरा भी संकोच, जरा भी ढिलाई मत करना, कि कहीं बाद में पछताना पड़े !'

उसी समय नागर नायक वहाँ दौड़ा आया ।

'राजन् ! राजन् ! एक दोमार और विश्वासघाती बखेड़िये के लिए आप...राजन्, राजगुरु मुझे क्या कहेंगे ? मैं महाप्रधानी को क्या मुँह दिखाऊँगा ?' उसने विह्वल स्वर में कहा ।

'कोई आपसे कुछ नहीं कहेगा, भावजी !' बुक्काराय ने उसे आश्वस्त किया, 'और कहे तो आप उत्तर दे सकते हैं कि रायराया के शासन के समक्ष मैं विवश था ।'

'प्रभु, राजन् ! मुझे आदेश दीजिए ! मैं अभी...'

'नहीं, विजयधर्म का रायराया मैं हूँ, यह कार्य मेरा है । यदि मैं विजयधर्म का सच्चा रायराया हूँ तो मेरे शासनकाल में कोई भी—चाहे वह भागवत हो या भाव्य, शैव हो या वीरशैव—इस प्रकार लड़ाई-झगड़ा नहीं करेगा, न कोई विजयधर्मी इस प्रकार साम्प्रदायिक वैमनस्य का शिकार होगा । सभी सम्प्रदायों की मर्यादा की रक्षा करना, सभी सम्प्रदायों का आदर करना ही राजधर्म है । इस राजधर्म के अन्तर्गत यह पालकी मेरे इष्टदेवता की पालकी है और इस पालकी को उठानेवाले मेरे संरक्षण में हैं ।'

'राजन्....'

'बस करो नागर नायक। तुम्हें जो कार्य सौंपा गया है उसे पूरा करो! बलदेव, सुन : मैं रायराया हूँ, तू निर्वासित है; मैं शासक हूँ, तू अपराधी है। लेकिन इस समय, एक क्षण के लिए हम दोनो इस बात को भूल जायें। चला लकड़ी और कर पहला वार!'

'तुरुष्कों से मिलने की इतनी जल्दी पड़ी हुई है!' बलदेव ने तिरस्कार-पूर्वक कहा।

'तुरुष्क? कहाँ के तुरुष्क और कैसे तुरुष्क?'

'ये भाव्य तुरुष्कों का स्वागत करने जा रहे थे, जैसे तुमने उनका स्वागत किया!'

'कौन, तू, विजयधर्म का अपराधी, विजयधर्मराज्य से निर्वासित यह कहता है? और ये भागवत तेरी बात को सुनते और मानते हैं? अरे भागवतो, जरा तो अपनी बुद्धि को ठिकाने रखो! दोमार और गोभूरी तो इस प्रकार असत्य भाषण कर हमारे बीच भ्रम और भ्रान्तियाँ फैलाकर झगड़ा करवाने की प्रतीक्षा करते ही रहते हैं। इन्होंने तो अपनी देशभक्ति बेच खाई है, तुम अपनी बुद्धि और समझ को क्यों बेचते हो?'

'सारे ग्राम ने तुरुष्कों को देखा है; और तुरुष्क तुंगभद्रा के परले पार डेरा डाले पड़े हैं, इस बात को भी सारा गाँव जानता है। एक तो हमें धोखे में रखना चाहते हो और उपर से दोमारों, गोभूरियों और राजधर्म की बातें फाँकते हो!'

'भागवतो, जानते हो, वह तुरुष्क कौन था?'

'नहीं जानते...बताइए, कौन था?'

'वह था अमीर...मलिक ग़ाज़ी अलाउद्दीन हसन...पहले वह गंगू कन्याली का दास था...और तुंगभद्रा के उस पार कोई तुरुष्क डेरा डाले नहीं पड़ा है, न कभी डेरा डालने पायेगा। उनके आने की बात सर्वथा निराधार है।'

अपनी लकड़ी पर दोनो हाथ टिकाकर बलदेव तिरस्कारपूर्वक हँस पड़ा—रायराया, सकलवर्णाश्रमधर्ममंगलपरिपालिसातु भगवानविरूपाक्ष...धत्तेरे की! तुम्हारा यह विशेषण ही इतना लम्बा है कि बोलते-बोलते दम भर आता है; पर राजरीति और राज-मर्यादा है इसलिए बोलना ही पड़ेगा, तो

मैं आदि-इत्यादि लगाकर काम चला लेता हूँ और फिर कहता हूँ कि बलदेव ने जो कहा उसका अक्षर-अक्षर सत्य है। बलदेव को यदि तुम चुप नहीं कर सकोगे तो तुम्हारे दोरंगियाँ का दल कुछ समय के लिए अवश्य चुप कर देगा। लेकिन मूल बात यह है कि बलदेव को तुम भले ही निर्वासित कर दो, तुरुष्कों को अपनी सीमा में आने से रोक नहीं सकते। वे आ गए हैं।

'मैं कहता हूँ कि उस पार एक भी तुरुष्क नहीं है।'

'परन्तु मैं कहता हूँ कि है।'

'मैं जाकर देख आता हूँ।'

'और तुम्हारे देख आने का हम विश्वास कर लें, क्यों? तुम तो लौट आकर यही कहोगे कि वहाँ कोई तुरुष्क नहीं है। और कल ही भागवतों के मन्दिर टूटने लगेंगे और भाव्य अपने देवता की शोभा-यात्राएँ निकालना आरम्भ कर देंगे—यहीं, भागवतों के इसी धाम में।'

'तो तुम स्वयं जाकर देख आओ!'

'जी हाँ, बलदेव ऐसा दूध पीता बच्चा ही तो है कि स्वयं होकर निर्वासित हो जायेगा। तुम तो यह चाहते ही हो। तो सुन लो कि बलदेव इतनी आसानी से जाने का नहीं।'

'भागवतो, आपमें से कोई तैयार है जाने को?' रायराया ने पूछा।

'कौन वहाँ जाकर अपने प्राण संकट में डालेगा?' बलदेव ने कहा, 'यह बलदेव के साथ लड़ने जितना सरल थोड़े ही है!'

नागर नायक ने अधीर होकर कहा—राजन्, न आपके धैर्य की सीमा है और न आपकी क्षमा की। परन्तु आखिर कब तक? आज्ञा दीजिए रायराया, और मैं इस गोभूरी को अभी बन्दी बनाता हूँ।

बलदेव ने लकड़ी घुमाते हुए कहा—नागर नायक, मुझसे दूर ही रहना। जितना तुम समझते हो उतना नरम चारा मैं नहीं हूँ।

तभी भीड़ को चीरती हुई सोना वहाँ आई और उच्च स्वर में बोली—भागवतो, भाव्यो, उस पार पता लगाने-जैसा कुछ भी नहीं है; और हुआ तो मैं आप सबकी ओर से पता लगाने के लिए जाऊँगी।

'जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।' भीड़ को धकेलते हुए

भागवत आचार्य वहाँ आये और बोले, 'कौन कहता है कि तुरुष्क आये हैं? और मान लो कि आये भी हैं तो हमें उनका क्या डर? रायराया, भागवत सम्प्रदाय का आचार्य, मैं—भागवतश्रेष्ठ परम भागवत हरिप्रपन्न रामानुज आत्रेय—भागवतों की ओर से आपसे क्षमा माँगता हूँ। भागवत आपके हाथ में सदैव निर्विघ्न और निरापद हैं और निरापद रहें, ऐसा आशीर्वाद देता हूँ।'

फिर बलदेव की ओर मुड़कर भागवत आचार्य ने कहा—गोभूरी और दोमार अपना निन्द्य, जघन्य कृत्य करें, इसकी तो हमें कोई चिन्ता नहीं; परन्तु अपने दुष्कृत्यों में हमारे सम्प्रदाय को किस लिए समोते हो, क्यों उसे निन्दास्पद स्थिति में रखते हो?

'भागवतो, भूलो मत, मैं भागवतश्रेष्ठ, भागवत-धर्म के नाम पर, तुमसे कहता हूँ कि आपस में लड़नेवाला, पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और मात्सर्य में पड़ा हुआ कभी भागवत नहीं रह सकता! इस बात को भूलो मत।'

यह कहकर भागवतश्रेष्ठ आगे बढ़े और पालकी के समीप खड़े हो गए। फिर उन्होंने उसकी एक धुरा को उठाकर अपने कन्धे पर ले लिया और बोले—चलो भागवतो, चलो! सब साथ चलो! मनुष्य मूर्ख हो सकता है, पर देवता कभी मूर्ख नहीं होता। मनुष्य विभक्त हो सकते हैं, परन्तु परमात्मा कभी विभक्त नहीं होता, वह सदा-सर्वदा एक ही रहता है। उसी प्रकार सम्प्रदाय अलग-अलग हो सकते हैं, परन्तु धर्म तो सदा-सर्वदा एक ही रहता है। चलो, सब साथ चलो और सब एक स्वर में बोलो: भगवान महावीर की जय हो! शासनदेव की जय हो! निर्ग्रन्थ नाथ पार्श्वनाथ देव की जय हो!

लोगों के जयजयकार करने के पश्चात् भागवतश्रेष्ठ ने रायराया से कहा—राजन्, संकट-ग्रस्तों की व्यवस्था आप कीजिए, हम जाते हैं।

थोड़ी ही देर में मैदान साफ़ हो गया। रह गए अकेले रायराया बुक्काराय और बलदेव। नागर नायक और कुछ भागवत तथा भाव्य मिलकर आहतों की सेवा-शुश्रूषा कर रहे थे।

दोरंगी आये।

बलदेव कुछ देर देखता रहा! फिर उसने लाठी को घुटने पर दबाकर दो टुकड़े कर डाले और उन्हें रायराया की ओर फेंकता हुए बोला—राजन्, यह

मेरा और तुम्हारा दुर्भाग्य ही है कि जब भी हमारा सामना होता है कोई तीसरा व्यक्ति बीच में आ कूदता है। फिर भी हम एक बार मिलेंगे अवश्य....

और वह मुड़कर चल दिया।

सोना भी वहीं समीप खड़ी थी। बुक्काराय ने लकड़ी नीचे रखते हुए कपाल से पसीना पोंछा और कहा—देवी! मैंने आपसे एक बार कहा है कि आपका भाई अभय है...परन्तु...परन्तु...नहीं कोई बात नहीं देवी! वह अभय है...

'राजन्, मैं आपकी द्विधा को समझती हूँ। अपने पिता की विषम स्थिति की कल्पना भी कर सकती हूँ। एकाकी पुत्र का परित्याग कर उन्होंने विजय-धर्म को स्वीकार किया है। उनका वह त्याग रक्त-रंजित न हो, केवल इतना ही मैं चाहती हूँ। राजन्, अपने अन्तःपुर की सशस्त्र दासियों को मैंने आदेश दिया है कि वे बलदेव को पकड़कर नदी के पार उतार आयें।'

'अन्तःपुर की दासियों को आपने ऐसा आदेश दिया है?'

'हाँ, राजन्! अपने भाई को मैं जानती हूँ। किसी दोरंगी, किसी आभट के वह बस का नहीं। यहाँ तक कि पिताजी को भी वह कुछ गिनता नहीं है। परन्तु किसी नारी के ऊपर वह हाथ उठा नहीं सकता। वह देखिए, उधर...

रायराया ने देखा तो सच ही नंगी तलवारें लिये सशस्त्र दासियों ने बलदेव को घेर लिया था।

बलदेव ने वहीं से चिल्लाकर कहा—सोना, सोना, यह तेरा कृत्य है, तेरा! तूने सशस्त्र दासियाँ भेजी हैं मेरे विरुद्ध! क्यों सोना....

सोना ने बलदेव के समीप जाकर कहा—जाओ भाई, चले जाओ! तुम्हारे यहाँ से जाने में ही हम सब का कल्याण है। प्रार्थना करती हूँ कि इसमें तुम्हारा भी कल्याण हो। न तुम यहाँ रह सकते हो, न हम तुम्हें यहाँ रख सकते हैं। तुम्हें पितृ-हत्या का अथवा पिताजी को पुत्र-हत्या का पाप लगे, उसके पहले ही तुम यहाँ से चले जाओ! मेरी दासियाँ तुम्हें तुंगभद्रा के उस पार उतारकर ही मानेंगी। भाग्य हमारे पथ को अलग-अलग करता है। भगवान तुम्हारे पथ को निर्विघ्न और तुम्हारी बुद्धि को निर्मल करे!

'रायराया मर गए, महाप्रधानी भी मर मिटे, सब दुर्गपाल तुरुष्कों की

अभ्यर्थना करने चले गए। किसी से कुछ न हुआ और सोना, तू ने ही, मेरी सहोदरा होकर मेरे साथ यह भद्दी चाल चली! बलदेव ने अपने को घेरकर खड़ी दासियों की ओर अँगुली दिखाते हुए कहा, 'अच्छी बात है सोना, लेकिन इतना अवश्य याद रखना कि जानेवाला बलदेव नहीं सोलंकियों का स्वाभिमान है। आज से वह सदा के लिए चला जा रहा है। अच्छा, नमस्कार!'

और बलदेव ने मुड़कर दासियों से कहा—चलो, जहाँ ले चलना चाहती हो, ले चलो! जल्दी करो जिसमें तुम्हें छुट्टी मिले और मेरी भी छुट्टी हो जाये!

१६. श्रद्धा की कसौटी

पम्पापति के धाम में, भगवान विरूपाक्ष के सान्निध्य में, विजयनगर-साम्राज्य की सबसे पहली महासमिति की बैठक हुई। रायरेखा ने इस सभा का निर्माण किया था। यदि कोई राज्यव्यापी प्रश्न होता, राजनीति अथवा लोकनीति की कोई समस्या होती तो इस महासमिति की बैठक की जाती थी।

इदांगी और वालांगी विजयनगर-राज्य के बायें और दायें पक्ष समझे जाते थे। उन्हें बायें और दायें अर्थजीवी भी कहा जाता था। इदांगी समुद्र के द्वारा जीविकोपार्जन करते थे और वालांगी धरती के द्वारा। परम्परा यह थी कि जब भी कोई धार्मिक उत्सव होता, महाजन की बैठक होती, राजसभा का अधिवेशन होता तो इदांगी बाईं ओर बैठते थे और वालांगी दाहिनी ओर; इसी लिए उन्हें बायाँ पक्ष और दाहिना पक्ष कहा जाता था।

भगवान शंकर के विशालकाय नन्दी से टिककर रायराया बुक्काराय बैठे थे। उनके दाहिनी ओर राजगुरु और बाईं ओर महाप्रधानी माधव बैठे थे। उस समय विजयनगर में जितने भी दंडनायक थे वे सब पीछे बैठे हुए थे। जितने नायक और रायसा थे वे दाहिनी ओर पंक्तिबद्ध बैठे थे। दुर्गपाल सोमेश्वर, गोपभट्टी, विनय चालुक्य, उदयादित्य आदि बाईं ओर की पंक्ति में बैठे थे।

धर्माचार्यों में से केवल दो ही वहाँ उपस्थित थे। एक थे राजगुरु पंडित

आर्यभद्रदेव, वह राजगुरु के आसन पर विराजमान थे। दूसरे थे परम भागवत आचार्य हरिप्रपन्न रामानुजेय आत्रेय। वह राजगुरु की बगल में बैठे थे।

वायीजन शेटी—वीरवणिगा वायीजन पृथ्वीशेटी का आसन सदैव महा-प्रधानी की बगल में रहता था। परन्तु भागवतों और जैनों के पारस्परिक कलह में एक तो उन्हें यों ही मानसिक सन्ताप हुआ था और दूसरे जब कलहप्रियों ने जैन-मन्दिर पर आक्रमण किया तो उसमें उन्हें भी चोट आ गई, इसलिए इस समय उनका आसन रिक्त था।

कल जो साम्प्रदायिक कलह हुआ उसे एक रात बीत चुकी थी और सारी रात आहतों की सेवा-सुश्रूषा और वैद्यों को लाने-ले जाने में व्यतीत हुई थी। विद्यारण्य माधव, रायराया, राजगुरु और परम भागवत साथ-साथ और अलग-अलग भी घूमते रहे थे।

आज वातावरण यद्यपि शान्त था, फिर भी विक्षुब्ध तो था ही और इसी प्रश्न पर विचार करने के लिए महासमिति की बैठक आयोजित की गई थी। प्रातःकाल होते ही रायराया के मन में महासमिति की बैठक करने का विचार स्फुरित हुआ था; विद्यारण्य को भी विचार अच्छा लगा और उन्होंने समर्थन किया। सबेरे से ही दुर्गपाल सोमेश्वर, उनके दोरंगी और अमर-नायकों ने जहाँ-जहाँ निमंत्रण पहुँचाना था, घूम-घूमकर पहुँचाया।

सवेरा होते ही गली-गली, प्रत्येक मणिग्राम में, राजवीथि और पथ पर दुर्गपाल के ढोलिये ने डौंड़ी पीटकर यह घोषणा कर दी :

'आज के दिन, एक प्रहर दिन चढ़े, भगवान पम्पापति के देवस्थान में, रायराया ने महासमिति की बैठक आयोजित की है। इदांगी और वालांगी, ब्राह्मण और बेसवागा—सभी को रायराया आमंत्रित करते हैं। कुम्हार शेटी को विशेष रूप से आमंत्रित किया जाता है। आज के दिन, एक प्रहर दिन चढ़े महासमिति की बैठक होगी....सब इस घोषणा को सुनें और जो आ सकें अवश्य आकर सम्मिलित हों....सब सुनें....घोषणा सुनें....'

महासमिति की बैठक के प्रयोजन के सम्बन्ध में लोग भाँति-भाँति के अनुमान लगाने लगे। अधिकांश की यही राय थी कि आज के दिन महा-

समिति का आयोजन कल की घटनाओं पर विचार करने के ही लिए हो सकता है। जैनों और भागवतों में—भाव्यों और भावों में जो झगड़ा हुआ उसी पर विचार किया जायेगा। किसी ने उस झगड़े को भावी का दिशा-निर्देश समझा तो किसी को वह झगड़ा अपने मन के भले-बुरे का प्रतिबिम्ब प्रतीत हुआ।

और एक बात सारे विजयनगर में, क्या तो हासपेट और क्या आनेगुण्डी, क्या दुर्ग और क्या दुर्ग के बाहर सर्वत्र बिजली की तरह फैल गई थी। वह यह कि वायीजन शेटी ने, श्रवणबेलगोला के संघ की ओर से, समस्त भाव्यों को यह निमंत्रण दिया है कि जो भी भाव्य विजयनगर छोड़ना चाहे, जिस किसी को भी विजयनगर में रहना निरापद नहीं प्रतीत होता हो, वे सब बेलगोला जाकर रह सकते हैं। बेलगोला के संघ ने सभी को आमंत्रित किया है।

बात यहाँ तक पहुँच गई थी!

अधिकांश भाव्यों के दिल खट्टे हो गए थे। झगड़े के वास्तविक कारण की तो इस समय किसी को याद नहीं रह गई थी। याद केवल यह थी कि इतने भाव्य आहत हुए, इतने शय्याशायी हुए और इतने मरण को प्राप्त हो गए और अभी इतने मरणोन्मुख हैं; और इतने भाव्यों के घर लूटे गए और भाव्यों के महामन्दिर को इतनी हानि और क्षति पहुँचाई गई!

'अरे, दुर्गपाल सोलंकी उपस्थित नहीं थे, वह होते तो स्थिति इतनी विषम और अराजकतापूर्ण कदापि न होने पाती!'

'नहीं थे तो कहाँ चले गए थे?'

'अरे, तुम्हें नहीं मालूम? कोई तुरुष्क महाप्रधानी से मिलने आया था, उसे पहुँचाने गए थे।'

'अर्थात् तुरुष्कों के आने की बात सर्वथा असत्य और मनगढ़न्त तो नहीं थी।'

'अरे भावजी, आप भी बड़े भोले हैं! हमारा नया-नया राज्य है, नये राजा और नये महाप्रधानी हैं और सिर पर महाकाल-जैसे तुरुष्क शासक की

तलवार तनी हुई है तो क्या कोई तुरुष्क मिलने के लिए भी नहीं आयेगा ? कैसी बात करते हो ?'

'यह तो दुआ दीजिए दुर्गपाल की पुत्री सोना को। भाव्यों के मुहल्लों में अपने प्राणों का मोह त्याग लड़नेवालों के बीच जा खड़ी हुई, नहीं तो आज एक भी भाव्य देखने को न मिलता।'

'और रायराया को क्यों भुलाये देते हो ? भाव्यों के मन्दिर के द्वार के मध्य खड़े होकर उन्होंने तो ललकारा था कि मन्दिर को जलाने से पहले मुझे जलाना होगा !'

'और महाप्रधानी तो बेचारे रात-भर दौड़ते रहे ! झगड़े के समाचार सुनते ही परम भागवत आचार्य को साथ लेकर भागे आये !'

'भागे न आते तो क्या करते ? झगड़ा कोई साधारण तो था नहीं। खासा ज्वालामुखी ही फूट निकला था।'

'लेकिन सहसा यह सब हो कैसे गया ? न बात, न बात का नाम और एकदम आग भड़क उठी ! कुछ पता हो तो बताओ कि कारण क्या था ?'

'कारण बलदेव मिले तो उससे पूछा जाये। वही सब को उत्तेजित करता हुआ घूम रहा था।'

'लेकिन उसने ऐसा क्यों किया ?'

'यह वही जाने ! राजमहल के राजरहस्य हम कैसे जान सकते हैं और हमें बतायेगा ही कौन ?'

'इसमें रहस्य-जैसा है ही क्या ? बात बिलकुल सीधी और साफ है। उसका बाप विजयधर्म का इतना बड़ा और अप्रतिम योद्धा है और यही उसे नहीं सुहाता।'

'इसी को तो कहते हैं दीप-तले अँधेरा।'

'हाँ, ऐसा ही समझ लो। बलदेव सोलंकियों का साम्राज्य चाहता है।'

'सोलंकियों का साम्राज्य नहीं चाहता है जी ! वह तो अपने आनेगुण्डी का सतसामन्तचक्रचूडामणि बनना चाहता है। छोटे राज्य के आधिपत्य को छोड़ वह विशाल विजयनगर-साम्राज्य का दुर्गपाल बनने के पक्ष में नहीं।'

'खूब, मेंढक अपने कुएँ में ही मगन रहना चाहता है।'

'मगन क्यों न रहे; कुएँ का वह एकछत्र अधिपति जो है और मस्त बैठा टर्राता रह सकता है। कुएँ के सरोवर अथवा समुद्र में मिल जाने पर उसे कौन पूछेगा ?'

'मेंढक को भले ही न पूछे, परन्तु पानी का क्या बिगड़ता है ! उसके लिए कुआँ क्या और सरोवर-सागर क्या ? पानी सब जगह एक है और शक्ति हो तो वह खारे समुद्र में भी मीठी कुइया बनकर रह सकता है।'

'अरे, छोड़ो भी इन बातों को। आओ, चलें महासमिति में। वहाँ जो भी होगा डंके की चोट सामने आ जायेगा। मैं तो जा रहा हूँ। तुम भी चलो।'

'तुम जा रहे हो ?'

'हम सब जा रहे हैं; तुम भी चलो। घबराते क्यों हो भावजी ? वहाँ तो बड़ा आनन्द रहेगा ! राजगुरु भाव्य हैं, रायराया बुक्काराय विरूपाक्षदेवेश-सान्निध्यात् हैं, महाप्रधानी शैव हैं। बड़ा आनन्द रहेगा; सकलवर्णाश्रमधर्म-मंगलपरिपालिसातु विरूपाक्षदेवेशसान्निध्यात् को हम देखेंगे !'

रंगमंडप विशाल था। लेकिन आज इतने लोग आ उपस्थित हुए कि उसकी विशालता भी छोटी पड़ गई। अपार जनसमूह महासमिति में एकत्रित हो गया था। सभा के अन्तिम छोर पर खड़े होने से भगवान का नन्दी साफ-साफ दिखाई दे जाता था। उसके आगे, गर्भगृह में, पम्पापति का महालिंग मानो ऊँचा होकर सभाजनों को देख रहा था। दोनो ओर इदांगी और वालांगी अपनी-अपनी पाँतों में बैठे हुए थे।

रायराया ने विद्यारण्य माधव के कान में कुछ कहा, अत्यन्त गम्भीर और विषण्ण वदन राजगुरु के कान में कुछ कहा और तब अमरनायक नागर नायक को संकेत से अपने समीप बुलाया।

नागर-नायक आया और दोनो हाथ जोड़ अभिवादन कर खड़ा हो गया।

रायराया ने उससे कहा—महासमिति का कार्यारम्भ अब होता है।

प्रणामकर नागर नायक बीच में छूटे हुए रास्ते से जल्दी-जल्दी सभा

के छोर पर पहुँच गया। वहाँ ठिठककर उसने एक दृष्टि समस्त सभाजनों पर डाली और ढोलिये को इशारा किया।

ढोलिये ने अपने गले से लटक रहे ढोल पर दो डंकियाँ मारीं और आगे बढ़ आया। वह अपने खड़े रहने के स्थान से भगवान पम्पापति को ठीक सीध में देख सकता था।

ढोलपर डंकियाँ मारकर उसने उद्घोषणा की :

'जय हो! जय हो! त्रिभुवन के नाथ की जय हो! जय हो त्रिलोकी के नाथ की! जय हो विजयनगर के नाथ भगवान पम्पापति विरूपाक्षदेव की! जय हो! जय हो...'

उसने ढोल पर पुनः डंकियाँ मारीं और थोड़ी देर तक लगातार डंकियाँ पीटता रहा। उसके बाद ढोल सहित दोनो हाथ जोड़कर भगवान पम्पापति को प्रणामकर उसने आगे कहा :

'जय हो! अधमोद्धारण, पतितपावन, पंचद्रोह से तारनहार, पंच महापातक शमावनहार, जगत् का जहर सकल पीवनहार, नीलकंठ की जय हो! भगवान भूत भावन की जय हो! जय हो!'

और वह जहाँ खड़ा था वहाँ से बिना मुड़े चार कदम पीछे हट आया।

उसने फिर ढोल पर डंकियाँ मारीं और थोड़ी देर तक लगातार ढोल पीटता रहा और उसके बाद बोला :

'श्रीमान् राजराजेश्वर, सकलवर्णाश्रमधर्ममंगलपरिपालिसातु असह्यवीर्य चतुर्वर्ण-चतुःसमयआश्रय रायराया भगवान पम्पापतिविरूपाक्षदेवेशसान्निध्यात् राजराजेश्वर महाराजाधिराज रायराया बुक्काराय की जय हो!'

जहाँ खड़ा था वहीं से उसने झुककर दूर बैठे हुए बुक्काराय को प्रणाम किया—जय हो! अन्नदाता, धर्मदाता, अर्थदाता रायराया की जय हो!

और उसके बाद फिर ढोल पर डंकियाँ मारकर उसने उच्च स्वर में सब को सुनाते हुए घोषणा की :

'सुनें...सब लोग घोषणा सुनें। सुनें सब दुर्गपाल, नायक, रायस, देश्य, नगरनिवासी, दुर्गवासी, वन-पर्वत और सीमा के वासी, नर और नारी, ब्राह्मण और वैश्य, गृहस्थ, भिक्षुक, साधु, श्रमण—सबजन सुनें...यह घोषणा

सुनें : त्रिलोकीनाथ भगवान विरूपाक्षदेवेशसान्निध्यात् राजराजेश्वर राय-राया बुक्काराय की महासमिति का आयोजन हुआ है। इस महासमिति में इडागी हैं और वालांगी भी हैं, नायक हैं और रायस हैं, वैश्य हैं, देश्य हैं—सब सुनें...घोषणा सुनें : रायराया बुक्काराय की समिति का कार्यारम्भ होता है। इसमें जिसे भी कुछ कहना हो धर्मपूर्वक, नीतिपूर्वक, न्यायपूर्वक कहे; कोई बात मन में न रखे, रखे तो बाद में निन्दापरक वाणी का उच्चारण न करे...सुनें....सब जन घोषणा सुनें....जय हो अन्नदाता की ! जय हो प्रधानी की ! जय हो आचार्यों की ! जय हो नगरनिवासियों की ! जय हो त्रिलोकेश्वर भगवान पम्पापति विरूपाक्षदेव की। जय हो...जय हो...जय....'

'जय हो ! जय हो !' का उच्चारण करता हुआ वह ढोलिया धीरे-धीरे दाहिनी ओर चला गया। क्योंकि वह भी वालांगी जो था।

अब रायराया ने कहा—राजगुरु, आप महासमिति को अपने आशीर्वाद प्रदान करें।

राजगुरु ने रायराया से कहा—रायराया, आप भगवान विरूपाक्ष के सान्निध्य में विराजते हैं। आपको यह समिति पूर्ण लगती है ? आप इस समिति को पूर्ण समझते हैं ?

रायराया उत्तर न दे सके। उन्होंने विद्यारण्य की ओर देखा। रायराया का अभिप्राय समझकर विद्यारण्य ने दोनों हाथ जोड़कर राजगुरु के समक्ष निवेदन किया—गुरुदेव, समय, स्थान और शासन के आप इस समय अधिष्ठाता हैं। यदि आपको कुछ भी अपूर्ण लगता हो तो उसे पूर्ण करने के आप अधिकारी हैं। आप राजगुरु है।

राजगुरु ने अपने कपाल पर हाथ फिराया, अपनी डाढ़ी सहलाई और किसी की ओर देखे बिना एकदम सीधी दृष्टि रखे हुए बोले—मैं राजगुरु हूँ, इस बात को यहाँ उपस्थित भागवत स्वीकार करते हैं ?

महाप्रधानी विद्यारण्य ने कहा—गुरुदेव, इस महासमिति में कोई भागवत नहीं, कोई भाव्य नहीं, कोई कुछ नहीं। यहाँ तो जो भी हैं केवल विजयधर्मी हैं। सब कोई विजयनगरराज्य के निवासी और महामंडलेश्वर राय हरिहर द्वारा प्रवर्तित रायरेखा के अधीन हैं। भगवन्, रायरेखा नहीं

तो कुछ भी नहीं और विजयधर्म नहीं तो कुछ भी नहीं। आप राजगुरु के स्थान पर हैं। आप इस महासमिति के अधिष्ठाता-पद पर विराजने के अधिकारी हैं। आप विराजमान होइए। इस महासमिति में जो भी विचार किया जाये, जो भी निर्णय किये जायें वे सब केवल सर्वसम्मति से ही हों—ऐसा आशीर्वाद आप नहीं प्रदान करेंगे तो कौन करेगा ?

'क्यों ? यह भागवतों के आचार्य आत्रेयजी तो हैं !'

'गुरुदेव, ईश्वर की ऐसी ही लीला होगी तो कालान्तर में मुझे यह स्थान उपलब्ध होगा–उपलब्ध न हो, मेरी तो देवाधिदेव से यही प्रार्थना है। ईश्वर की लीला से आज आप राजगुरु हैं, धर्माचार्य हैं; मैं तो केवल समय (सम्प्रदाय) का आचार्य हूँ।'

धीरे-धीरे राजगुरु ने अपनी दृष्टि घुमाई और भागवत आचार्य आत्रेय पर स्थित की, फिर विद्यारण्य माधव को देखते रहे, तत्पश्चात् दुर्गपालों की ओर देखते हुए उन्होंने अन्त में उसे रायराया पर स्थिर कर दिया।

'रायराया, मेरे आशीर्वाद हैं कि जब तक विजयनगर के राजराजेश्वरों में ऐसा विवेक रहेगा तब तक राजराजेश्वरों और उनके उत्तराधिकारियों का यशःसूर्य तपता रहेगा, कीर्ति अमर रहेगी !'

सबको सुनाते हुए विद्यारण्य ने पूछा—भगवन्, रायराया में आपने विवेक और विनय का किंचित् भी अभाव पाया—कल भी और आज भी ?

'नहीं, न इनमें अभाव पाया और महाप्रधानी, न तुममें पाया। अमर-नायक और उनके दोरंगियों में भी नहीं। दुर्गपालों और रायसों में भी नहीं। भागवत आचार्य में भी नहीं। इसी लिए तो आज मैं यहाँ आया हूँ, यद्यपि यहाँ तक आने में मुझे अपार कष्ट और परिश्रम हुआ है।'

यह कहकर राजगुरु ने अपना ऊपरिवस्त्र ऊँचा किया। उनकी बगल में बड़ा-सा घाव था, उस पर पट्टी बँधी थी और वह रक्तस्राव के कारण लाल हो गई थी।

उस घाव को देखकर भागवत आचार्य का सिर झुक गया। रायराया का चेहरा आरक्त हो उठा। विद्यारण्य ने सारी सभा के रोष, क्षोभ और पश्चात्ताप के ऊपर कहा—भगवन्, लोगों को सन्मार्ग और सन्मति की ओर

प्रेरित करनेवाले धर्मगुरु के लिए इससे अच्छा और उज्ज्वल पुरस्कार और क्या हो सकता है ? आपका यह संयम और सहिष्णुता हम सब को सन्मार्ग दिखाने में सहायक सिद्ध हो !

राजगुरु ने म्लान मुस्कराहट के साथ कहा—भागवत आचार्य आये थे तब हमने समयधर्माओं को विवेक-धर्म—शिष्टाचार का धर्म—समझाया था। इसी लिए तो आज मैं इस सभा में आया हूँ—न्याय माँगने के लिए और न्याय प्राप्त करने के लिए।

'न्याय माँगने ?' रायराया ने खड़े होकर उच्चातिउच्च स्वर में कहा, 'भगवन्, यदि आपको भी न्याय माँगना पड़ा तो शेष सारा समाज न्याय माँगने के लिए किसके पास जायेगा ? भगवन्, रायरेखा का धर्मशासन (धर्मानुशासन) तो यह है कि सब प्रकार के, छोटे, बड़े, राज्य के, राज्य से सम्बन्धित दीवानी और फौजदारी के प्रकरणों में न्याय-निर्णय करने का एकमात्र अधिकार राजगुरु का है, राजगुरु ही न्याय के अधिष्ठाता हैं। भगवन्, इस धर्मशासन की रक्षा के ही हेतु मैंने तलवार बाँधी है। न्याय के अधिष्ठाता आप हैं, आपका शासन ही न्याय है।'

'रायाराया, इसका उत्तर मैं आपको दूँगा। लेकिन पहले मैं इस तथ्य की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि यह महासमिति अपूर्ण है। जिन दो व्यक्तियों की उपस्थिति नितान्त अनिवार्य है, वे अभी तक आये नहीं हैं।'

'जी, कौन हैं वे ?'

'एक तो कुम्हार शेटी। रायरेखा का शासन है कि महासमिति में, महाजन में, सभा में, समिति में, प्रकृति में जहाँ कहीं भी लोक-निर्णय का प्रसंग हो वहाँ सर्वत्र होलेय, पालेर और बेसवागा की ओर से कुम्हार शेटी की उपस्थिति अनिवार्य है। जब तक वह नहीं आ जाते महासमिति अपूर्ण ही मानी जायेगी।'

रायराया ने दुर्गपाल की ओर देखा। दुर्गपाल सोमेश्वर पीछे गया और थोड़ी देर बाद कुम्हार शेटी को पकड़कर ले आया।

'महाराज, मैं तो वहाँ पीछे बैठा था, बड़े आराम से। मुझे वहीं बैठना अच्छा लगा, इसलिए बैठ गया।'

'इस तरह पीछे बैठा जाता है कहीं! आपको यहाँ आगे आकर ही बैठना चाहिए।'

'अच्छा महाराज! अब से आगे ही बैठा करूँगा। मैंने तो सोचा कि इतने बड़े-बड़े आदमियों में—राजा और प्रधान, दुर्गपाल और नायक और अमर नायक आदि में मुझ जैसे छोटे आदमी की क्या बिसात? इसलिए पीछे ही बैठ गया।'

'शेटी', महाप्रधानी ने कहा, 'बात तो इससे बिलकुल उलटी है: तुम्हारे बिना हमारी कोई बिसात नहीं। अब हमारे और तुम्हारे पथ न्यारे रहे ही कहाँ हैं?

'हाँ, महाराज! बात तो सच है। लीजिए यह बैठ गया।'

रायराया ने कहा—गुरुदेव, आज के इस अपराध को क्षमा कीजिए। फिर कभी ऐसी भूल न होगी। हो ही गई तो क्षम्य न होगी। समक्ष भगवान विरूपाक्ष देव विराजमान हैं। समक्ष भगवान कालमुख की समाधि है। सम्मुख आप बैठे हैं। रायराया की सदैव सब वृत्तियाँ और प्रवृत्तियाँ रायरेखा की आमन्या के लिए, मर्यादा-रक्षा के ही लिए होंगी।

'सुखी होगे राजन्, विजय-लाभ करोगे। शासनदेव आपकी इस मनोभिलाषा को सदैव बनाये रहें। अब इस महासमिति में एक दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति भी अनिवार्य है, पर मैं उन्हें देख नहीं रहा हूँ। राजन्, कहाँ हैं तुम्हारे विजयधर्म के विजयनगरराज्य के पृथ्वी शेटी वायीजन वीरवणिगा? उनको तो इस समय यहाँ उपस्थित रहना ही चाहिए। कहाँ हैं वह?'

'भगवन्!' रायराया ने उत्तर दिया, हमारे महाप्रधानी विद्यारण्य के छोटे भाई और कावेरी-तट के तुंडीर देश के वनवासी हजारी नाडू के मंत्री और दंडनायक सायन आचार्य को मैंने पृथ्वी शेटी को यहाँ बुला लाने के लिए भेजा है...सामने वही चले आ रहे हैं भगवन्!'

वायीजन शेटी सामने पालकी से उतरते दिखाई दिये। उनके एक

ओर पूर्वावस्था के उनके भांजे जोगीराज सिंगी थे और दूसरी ओर सायन आचार्य ।

जोगीराज सिंगी नख-शिख भगवा वेश में था । सायन आचार्य के सिर पर पगड़ी थी और उसमें मंत्री और दंडनायक की मुद्राएँ टँकी हुई थीं । शरीर पर उसने रेशमी दुपट्टा डाला हुआ था, कान में हीरे के कुंडल थे, कमर में दाक्षिणात्य ब्राह्मणों के परम्परागत मुंडा के स्थान पर लाल किनार-वाली रेशमी धोती थी ।

वायीजन शेटी कुछ व्यग्र और कुछ म्लान वदन था । चेहरा चिन्ता से लम्बोतरा हो गया था । नेत्र संत्रस्त और पीड़ा से व्यथित थे । दाहिने हाथ पर पट्टी बँधी थी और उस पर यहाँ-वहाँ खून के पाँच-सात दाग उभर आये थे ।

सायन आचार्य उसे ठेठ आगे तक ले आया और महाप्रधानी के बगल-वाले रिक्त आसन पर बिठा दिया । बहुत ही धीरे-धीरे अपने सारे अंगों को सिकोड़कर वायीजन शेटी बैठ गया । सायन आचार्य उसके पीछे बैठा ।

जोगीराज सिंगी बीचोबीच आकर खड़ा हो गया । वह खड़ा-खड़ा अपने चारों ओर देखता रहा । उसके नेत्र डरे हुए और चेहरा उतरा हुआ था । सभा में उसे भागवत ही भागवत दिखाई दिये । भाव्य तो जैसे कोई था ही नहीं । फिर उसकी दृष्टि वायीजन शेटी के हाथ की रक्तरंजित पट्टिका की ओर गई और वहीं अटकी रह गई । उसकी ओर देखते-देखते वह जोर से सिसक उठा और लपककर राजगुरु के चरणों में लेटकर क्रन्दन करने लगा—आचार्य आर्यभद्रदेवजी, मुझे क्षमा करो ! मैं कायर हूँ, पामर और अधम हूँ । यहाँ एक भी भाव्य ऐसा नहीं जिसके अंग पर आघात न हो । एक मैं ही ऐसा हूँ, जिसके अंग पर कोई व्रण, कोई घाव नहीं ! मैं कायर कल के झगड़े में घर से बाहर निकल ही न सका । हाय, आपके चरणों में धरने के लिए मेरे पास एक भी घाव नहीं । क्षमा करो, गुरुदेव, मुझे क्षमा करो !

आचार्य आर्यभद्रदेव चुप बैठे रहे । उनके चेहरे से लगता था जैसे स्वयं उनके मन में गहन संघर्ष हो रहा हो ।

सारी सभा में सन्नाटा छा गया । जो थोड़े-से भाव्य वहाँ थे सिर झुका-

कर मन-ही-मन अपने घावों की गिनती करने लगे। भागवतों के चेहरे लज्जा से लाल हो गए और सब-के-सब खिसिया उठे।

वातावरण तन गया। क्षोभ था, साथ ही तुला के काँटे का कम्पन भी था। यदि किसी ने तुला की डंडी को दृढ़ता से पकड़ नहीं लिया तो तुला और काँटा दोनो ही नीचे गिर पड़ेंगे, ऐसी आशंका भी हवा में भर गई थी।

विद्यारण्य माधव ने, कुछ ऊँचे होकर सारी सभा पर एक दृष्टि डाली। जोगीराज सिंगी की उपस्थिति तुला के सन्तुलन में बाधक हो रही थी। वह खड़ा हो गया और आगे आकर बोला—जोगीराज, इस समय महासमिति के समक्ष बड़े ही महत्व का प्रश्न विचारणीय है। किसी के निजी प्रश्न पर चर्चा करने का न यह स्थान है, न समय और न संयोग। यहाँ यह प्रश्न विचारणीय नहीं है कि किसको कितने घाव लगे और किसको नहीं लगे और लगे तो किस लिए लगे, कैसे लगे और नहीं लगे तो क्यों और कैसे नहीं लगे? इस समय महासमिति में जिन्हें बोलने का अधिकार है उनके बीच में अपना रोना-गाना लेकर तुम हस्तक्षेप मत करो! सोमेश्वर दुर्गपाल, जोगीराज को यहाँ से हटा दो, समिति से बाहर ले जाकर बिठाओ। इनके मन की शंका-कुशंकाएँ केवल इन्हीं तक सीमित हैं, दूसरों को उनसे कोई प्रयोजन नहीं, कोई रस नहीं। इन्हें अकेले बैठकर मनोमन्थन करने दो। अपने अमरनायक से कहो कि वह इन्हें यहाँ से तत्काल हटा दें।

और यह प्रतीक्षा किये बिना ही कि आज्ञा का पालन होता है या नहीं और होता है तो किस प्रकार होता है, महाप्रधानी ने राजगुरु पंडित आर्यभद्रदेव को सम्बोधित कर कहा—भगवन्, इस समिति को आपने आमंत्रित किया है। अब आप अपना आदेश प्रदान करें।

थोड़ी देर तक मौन धारण किये रहने के बाद पंडित आर्यभद्र ने कहा—महाप्रधानी, यह सच है कि महासमिति की इस बैठक को मैंने बुलाया। लेकिन उस समय मेरे मन में क्या विचार थे, मैं महासमिति की बैठक के समक्ष क्या कहना चाहता था, वह सब इस समय भूल गया है। अभी तो मेरे मन में गहन मनोमन्थन हो रहा है। क्या कहना चाहिए, यह भी मुझे सुझाई नहीं पड़ता। सच में तो मुझे कुछ भी नहीं कहना है।

'परन्तु मुझे तो बहुत-कुछ कहना है।' वायीजन शेटी ने आगे आकर कहा ! खड़े होने के परिश्रम और पीड़ा के कारण उसका मुख कुम्हला गया था। उसने कहा, 'फिर भी मैं केवल एक ही प्रश्न पूछूँगा और वह पूछता हूँ राजगुरु से; वह उत्तर न देना चाहें तो रायराया से, अथवा महाप्रधानी से। मेरा सवाल केवल इतना ही है कि क्या यही वह विजयधर्म है, जिसके अन्तर्गत होने के लिए हमसे कहा गया था ?'

राजगुरु ने उत्तर नहीं दिया, इसलिए उत्तर दिया विद्यारण्य माधव ने—वायीजन शेटी, 'आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं देता हूँ। प्रश्न धर्मनीति से सम्बन्धित होता है तब राजगुरु उसका उत्तर देते हैं; आज नहीं दे सकें तो कल-परसों या उसके बाद भी दे सकते हैं, पर देते अवश्य हैं। राजनीति से सम्बन्धित प्रश्न हो तो उसका उत्तर देना मेरा, रायराया बुक्काराय की सप्त प्रकृति* के अधिष्ठाता महाप्रधानी का कार्य है। इसलिए आपके प्रश्न के उत्तर में मैं आपसे कहता हूँ कि हाँ, वही यह विजयधर्म है, जिसमें सम्मिलित होने के लिए, ओत-प्रोत होने के लिए, जिसके अन्तर्गत होने के लिए महामंडलेश्वर राय हरिहर ने आपको निमंत्रित किया था; भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज ने आपको सूचित किया था; और जिसके साथ आपको एकमन, एकप्राण हुआ देखने के लिए रायराया और उनकी सप्त प्रकृति अत्यधिक उत्कंठित है। इसी के अन्तर्गत होने में आपका और हमारा भाग्योदय है, स्थिति और सुरक्षा है।'

विद्यारण्य माधव ने अपना एक हाथ राजगुरु की ओर तथा दूसरा हाथ रायराया की ओर फैलाते हुए कहा—वायीजन पृथ्वी शेटी, हाँ, यह वही विजयधर्म है !

---

*साम्राज्य की व्यवस्था करने और दैनन्दिन शासन चलानेवाले विभाग 'प्रकृति' कहलाते थे। प्रत्येक प्रकृति का एक अध्यक्ष या मंत्री होता था। विजयनगर राज्य में आठ प्रकृति थी (१) देश्य (२) दुर्ग (३) बल (४) धर्म (५) चमू (६) देव (७) आंपु और (८) विद्या।

उसके बुलन्द स्वर को सुनकर तथा उसके निरुद्विग्न चेहरे को देखकर एक क्षण तो सब-के-सब स्तब्ध रह गए।

राजगुरु ने कहा—महामंत्री, तुम्हारे प्रति तो हमारे मन में कभी शंका थी ही नहीं। मैं तो भाव्यों और भागवतों के कल के आचरण के सम्बन्ध में सोच रहा हूँ। आज की इस सभा में मैं एक भी ऐसे भाव्य को नहीं देख पा रहा जिसके शरीर पर कोई व्रण न हो। और जब यह देखता हूँ तो मेरा मन खिन्न हो उठता है और पूछने लगता है कि क्या यह वही विजयधर्म है? जो प्रश्न तुमसे तुम्हारे पृथ्वी शेटी ने पूछा वही प्रश्न मैं भी तुमसे पूछता हूँ।

रायराया खड़े होकर उत्तर देने जा रहे थे; विद्यारण्य ने हाथ से उनका निवारण करते हुए कहा—कल की घटना का परिताप आपको है और हमें न हो, ऐसी बात तो नहीं है गुरुदेव। हमें भी अत्यधिक परिताप है। परन्तु आज का सुख क्या अकेले हमीं को है और आपको नहीं है? आज यह महासमिति आयोजित हुई है आपके आदेश के अनुसार ही। इस महासमिति के राजगुरु कल भी आप ही थे और आज भी आप ही हैं और आनेवाले कल भी आप ही रहेंगे। कल आप इस समस्त साम्राज्य के धर्मनायक थे, आज भी आप ही धर्मनायक हैं और भविष्य में भी आप ही धर्मनायक रहेंगे। मैं इस राज्य का महाप्रधानी हूँ और अपने अधीनस्थ सप्त प्रकृति के सहित आपकी वन्दना करता हूँ। इस राज्य के राजराजेश्वर अपना खड्ग कल भी आपके चरणों में समर्पित करते थे, आज भी करते हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे। गुरुदेव, आप तो विद्या, ज्ञान और तपस्या के साक्षात् अवतार ही हैं और मैं तो केवल महामंत्री हूँ। परन्तु महामंत्री की हैसियत से इतना अवश्य कहता हूँ कि इस राज्य का शासन रायरेखा की मर्यादा में रहकर ही किया जायेगा। रायरेखा के अनुसार रायराया के शासन के समक्ष न कोई भाव्य है न कोई भागवत। रायरेखा विजयधर्म के अतिरिक्त किसी धर्म को, किसी समय और सम्प्रदाय को नहीं जानती और न किसी समय के लोक-व्यवहार तथा धर्माचरण में हस्तक्षेप ही करती है। सभी समयों के लोकधर्म और धर्माचरण को रायरेखा अपनी ओर से अभय प्रदान करती है। यह अभय भाव्यों के लिए है, भागवतों के लिए है, शैवों के लिए है और वीरशैवों

के लिए भी है। रायरेखा का शासन है कि आप ही इस राज्य के धर्मासन पर विराजमान हों।

माधव के इस कथन का भावार्थ वायीजन शेटी की समझ में नहीं आया इसलिए वह कभी राजगुरु को देखता था और कभी उनके घावों को।

राजगुरु थोड़ी देर मौन धारण किये रहे और तब बोले—महामंत्री, तुमसे कहता हूँ, साथ ही रायराया से भी कहता हूँ ! राजनीति रायरेखा के अनुसार है यह तो मंगल कथा है, परन्तु भाव्यों और भागवतों के बहुजन-समाज को इसकी प्रतीति कैसे हो ?

रायराया बोलने के लिए बड़ी देर से आतुर हो रहे थे। इस बार माधव की नजर चुकाकर वह उठ खड़े हुए।

'इसका उत्तर मैं देता हूँ गुरुदेव ! महाप्रधानी तो इसका उत्तर एक ही प्रकार से दे सकते हैं और देंगे। लेकिन अधिक उचित यही होगा कि मैं उत्तर दूँ। शास्त्रों में कहा गया है कि "राजा कालस्य कारणम्।" राजतंत्र रायरेखा का जितना पालन करेगा और जितनी मर्यादा निबाहेगा सामान्यजन भी वैसा और उतना ही करेंगे। हमारे यहाँ रायरेखा ही सर्वोपरि है, राजतंत्र नहीं; धर्मशासन ही सर्वोपरि है, राजशासन नहीं। राजशासन का अधिकार-क्षेत्र सीमित है। जहाँ जो प्रसंग उपस्थित होता है उनके निर्णयों तक ही राजशासन की मर्यादा होती है। लेकिन धर्मशासन तो सार्वत्रिक है। आज राजशासन निर्णय दे तो वह कल की घटना और यहाँ के भाव्यों और भागवतों तक ही सीमित होगा; इसके विपरीत यदि यहाँ से धर्मशासन अपना निर्णय देगा तो वह सम्पूर्ण राज्य के समस्त समय-चतुष्टय के लिए बाधित होगा। राज्यासन से धर्मासन और राजतंत्र से रायरेखा का स्थान ऊँचा है और न्याय सर्वोपरि है। न्याय के चरणों में यदि रायराया का खड्ग नत नहीं होता तो वह रायराया नहीं, और वह रायराया रह सकता भी नहीं ! गुरुदेव, यह मेरा व्रत है, यह मेरी प्रतिज्ञा है। बाह्य भयों से लोगों की रक्षा करने का कार्य रायराया और उसके राजतंत्र का है। आन्तरिक भयों से लोगों की रक्षा करने का कार्य धर्मनायक का है। और रायरेखा ने धर्मनायक के समस्त उत्तरदायित्व और समस्त अधिकार अकेले राजगुरु को ही सौंपे हैं !'

'मेरे सब संशयों का निवारण हुआ।' पंडित आर्यभद्र ने कहा, 'परन्तु मेरे साथ अब एक दूसरी ही विपदा उठ खड़ी हुई है। मैं धर्मशासन को प्रवर्तित करने में अपने को विवश और असमर्थ पाता हूँ। लोकनीति सदा-सर्वदा धर्म पर, धर्म सदा-सर्वदा न्याय पर, न्याय सदा-सर्वदा सत्य पर और सत्य सदा-सर्वदा निर्मल दृष्टि पर निर्भर करता है। मेरी दृष्टि आज निर्मल है या नहीं; ऐसा मैं कह नहीं सकता, क्योंकि मैंने अभी तक अवधान नहीं किया है। भाव्यों और भागवतों के मध्य कल जो कलह हुआ उसमें लोक-व्यवहार की दृष्टि से और राजकीय शान्ति की अपेक्षा से दोषी कौन था, यह निर्णय करना तो दुर्गपाल और उनके अमरनायकों का विषय है।'

'मैं भाव्यों की ओर से आपको विश्वास दिलाता हूँ, कि लोक-दृष्टि से अपराधियों का निर्णय हो ही, ऐसा हमारा कोई आग्रह नहीं है। ऐसे कलह में मनुष्य दोषी नहीं होता, दोषी होता है मनुष्य का मन। शारीरिक आघातों के लिए हमें रोष नहीं है, आर्थिक क्षति के लिए हम दुःखी नहीं हैं। परन्तु जहाँ मन इतने अधीर, उतावले, अधूरे और शंकाशील हों, वहाँ विजय-धर्म सुरक्षित है, उसकी कोई उपयोगिता और सम्भावना है या यह सब निरी मृगमरीचिका है और हम प्यासे हिरन की भाँति मृगजल की शोध में प्राण गँवाने को भागे जा रहे हैं? बस, यही शंका हमको खाये जा रही है और हम इसी का समाधान चाहते हैं।' वायीजन शेटी ने व्यथित स्वर में कहा।

'इस प्रश्न का उत्तर तो केवल समय ही दे सकता है शेटी।' राजगुरु ने कहा, 'परन्तु मैं इतना अवश्य कहूँगा कि विजयधर्म के बिना हमारी कोई गति, कोई उद्धार नहीं। सम्प्रदाय यदि स्वच्छन्द रहे तो उत्तर भारत की भाँति यहाँ भी सर्वनाश का कारण होंगे। विजयधर्मकाल-धर्म है, धर्मों का भी धर्म है, इसमें श्रद्धा रखनेवाले का कभी विनाश नहीं होता। यदि हमारा अपना धर्म और सम्प्रदाय उद्धार कर सकता है तो दूसरे सम्प्रदायों की सहिष्णुता, सहायता और आशीष मिलने पर उद्धार क्यों न होगा! इसी श्रद्धा से प्रेरित होकर तो मैं, भगवान शासनदेव का सेवक, विजयधर्म का राजगुरु बना हूँ और बना रहूँगा। इसमें मुझे अपने सम्प्रदाय की श्रद्धा और शक्ति ही दिखाई पड़ती है। यदि राजतंत्र और राजनीति हस्तक्षेप न करे ता सभी सम्प्रदायों

कि भागवतों में एक भी ऐसा नहीं निकला जो भगवान की पालकी की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देता। भगवान तो सब एक हैं, चाहे शासनदेव कहिए, चाहे विष्णुनारायण; चाहे विरूपाक्षदेव कहिए, चाहे भगवान उग्रशंकर भीमदेव ! यों देखा जाये तो खाली पालकी का कोई महत्व नहीं। भाव्य श्रीमन्त हैं और एक नहीं एक हजार पालकियाँ ला सकते हैं। परन्तु जो पालकी भगवान शासनदेव की मर्यादा की प्रतीक हो उसकी रक्षा करना तो प्रत्येक धर्म-प्रेमी का प्रथम कर्त्तव्य है और होना चाहिए। लेकिन इसी कर्त्तव्य के पालन के लिए कोई भागवत आगे, नहीं आया।' परम भागवत ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर आगे कहा, 'पिछली रात इसी ग्लानि में पड़े रहने के कारण मेरी पलकें तक नहीं झँपने पाई हैं। क्या उपचार, उपस्कर और पत्थर के दर्शनों में भागवत इतने जड़ हो गए कि उन्हें भगवान दीखना ही बन्द हो गया ? लेकिन रहने दो मेरे मन के दुःख और वेदना की इस बात को...अभी तो राजगुरु मुझे क्षमा करें। आपने मुझ पर जो विश्वास किया, उसके लिए हृदय से कृतज्ञ हूँ; परन्तु साथ ही विवश भी हूँ, मैं यह बोझ नहीं उठा सकता, निर्णय देने का दायित्व नहीं निभा सकता...

राजगुरु ने रायराया की ओर देखकर कहा—धर्मशासन प्रवर्तित किये बिना यदि धर्मासन का विसर्जन हुआ तो हमारे धर्मतंत्र के लिए बड़ी लज्जा की बात होगी। मैं निर्णय करने के लिए राजी नहीं हूँ, नाराज हूँ यह नहीं कहता, परन्तु राजी नहीं हूँ। परम भागवत आचार्य आत्रेय भी प्रस्तुत नहीं हैं, उन्होंने भी क्षमा माँग ली है; तो रायराया आप ही धर्मशासन को प्रवर्तित करें—राजगुरु की आपको यही आज्ञा है !

'धर्मशासन सब सम्प्रदायों के लिए है, इसलिए भागवतो और भाव्यो, शैवो और वीरशैवो, सभी सुनो। इस महासमिति में उपस्थित रायराया राजगुरु के अनुशासन से अपने श्रीमुख से यह धर्मशासन फरमाते हैं कि आज से एक सम्प्रदाय के उत्सव सभी सम्प्रदाय के उत्सव समझे जायेंगे; आज से किसी भी एक सम्प्रदाय के उत्सव में, धर्म-कार्य में लोक-विधि और लोकाचार में सब सम्प्रदाय के ब्राह्मण, अग्रहारी, पुजारी, अर्चक आदि सभी

सम्मिलित होंगे; आज से सब सम्प्रदायों के भिखारी—साधु, भू-रुद्र, श्रमण अथवा ब्रह्मचारी—कोई भी क्यों न हो, समस्त बहुजन समाज से अपनी भिक्षा ग्रहण करेंगे। आज से कोई भी किसी के भी मन्दिर और लोकाचार की मर्यादा को भंग नहीं करेगा और भगवान विरूपाक्ष एवं भगवान शंकर के देवधाम में सभी सम्प्रदायों के उत्सव समान रूप से सम्पन्न होंगे।

'भाव्यों और भागवतों के बीच आज से इस प्रकार का व्यवहार प्रचलित होगा। एक ओर परम भागवत आचार्य हरिप्रपन्न रामानुजेय आत्रेय हैं, और दूसरी ओर जैन-संघ के अग्रणी वायीजन शेटी हैं। भाव्यों के मन को शान्ति प्रदान करने और भागवतों के मन की अशान्ति को मिटाने के लिए हम राय-राया अपने श्रीमुख से यह धर्मशासन प्रवर्तित करते हैं। समस्त विजयधर्म-राज्य में निवास करनेवाले भागवत-मात्र भाव्यों के संघपति वायीजन शेटी को जैन चैत्यों और बसादियों में पूजन-अर्चन के उपयोगार्थ और मरम्मत के हेतु, मर्यादा की रक्षा की जा सके इस प्रकार, प्रति वर्ष पाँच जीतल प्रदान करेंगे।

'भागवतों के लिए यह प्रायश्चित है और भाव्यों के लिए भागवतों के प्रायश्चित की फलश्रुति।'

कुछ देर मौन छाया रहा, फिर विद्यारण्य माधव ने कहा—मूर्तिकार, अपने मुनि को बुलाओ और रायराया के इस धर्मशासन को शिला पर अंकित कर लो और अंकित हो जाने पर उस शिलालेख को वायीजन संघपति के ग्राम बेलगोला में प्रस्थापित करो!

सब चुप रहे। जो अप्रसन्न हुए वे कुछ बोले नहीं। परन्तु अधिकतर लोग प्रसन्न ही दिखाई दिये। एक कठिन और लगभग दुःसाध्य प्रसंग का इतनी सरलता और सुखद रीति से समाधान हो गया था।

वायीजन शेटी ने राजगुरु के सम्मुख खड़े होकर कहा—आज का जटिल प्रश्न इतनी सरलता से निपट जायेगा, यह आशा हमें नहीं थी। यह सरलता से निपट गया, इसके लिए मैं समस्त भागवतों का ऋणी हूँ। इस सुखद समाधान के उपलक्ष में मैं आनेगुण्डी के समस्त जैन-संघ की ओर से प्रत्येक भागवत को सहकुटुम्ब, सहपरिवार जैन-संघ का आतिथ्य स्वीकार करने की

विज्ञापना करता हूँ। आचार्यगण, रायराया, महाप्रधानी और अन्यान्य मंत्रिगण भी पधारकर हमें अनुग्रहीत करें।

रायराया की पीठ ठोककर आशीष देते हुए राजगुरु उठकर खड़े हो गए। भागवत आचार्य ने वायीजन शेटी को आशीर्वाद दिया।

इस प्रकार एक दुःखद घटना का सुखद अन्त हुआ। सभी भाव्यों ने यह अनुभव किया कि उनका मान और पान दोनो रह गए। भागवतों ने अनुभव किया कि उनके उतावलेपन और उग्रता तथा असहिष्णुता का उन्हें उचित दंड मिला।

भागवत अन्दर-अन्दर पूछने लगे—भावजी, आप तो कहते थे कि तुरुष्क आये हैं और यहाँ तो तुरुष्क का नाम-निशान भी देखने को नहीं मिला। आपने तो हमें व्यर्थ ही लड़ा मारा!

दूसरे ने कहा—अरे भावजी, आप भूलते हैं। तुरुष्कों के आने की बात मैंने नहीं आपने ही कही थी। विश्वास न हो तो पूछ देखिए किसी तीसरे से।

आखिर पूछताछ करते-करते यह बात सामने आई कि सब सब से कहते थे और कोई किसी से नहीं कह रहा था। गलती यही हुई कि किसी ने छान-बीन नहीं की और बात का बतंगड़ हो गया। अन्त में निष्कर्ष यह निकला कि उतावलेपन के ही कारण ऐसा अनिष्ट कांड हुआ। किसी ने उत्तेजित कर दिया और आवेश में आकर उन्होंने भाव्यों के उत्सव में विघ्न डाला।

फिर किसी को याद आ गया और उसने कहा—उत्तेजित करनेवाला वही था!

'वही कौन?'

'अरे, वही बलदेव! तुमने देखा नहीं था, वही सबको उकसा रहा था, उत्तेजित कर रहा था। मार-पीट का आरम्भ भी उसी ने किया था। किसी के बहकावे में आकर उत्तेजित हो जाना और जिनके साथ रात-दिन का सम्बन्ध है उनसे झगड़ पड़ना बुद्धि का दिवाला निकालना नहीं तो और क्या है?'

भागवत इस प्रकार बातें करते चले जा रहे थे। आज के शासन से वे भी अप्रसन्न नहीं दिखाई देते थे।

अानेगुण्डी और पम्पापति के धाम के बीच का मैदान बिखरते हुए लोगों से भर गया था। कोई ठिठककर बातें करते थे और कोई टोली बनाकर विजयनगरराज्य के निर्माण-कार्य को देखते थे।

भागवत आचार्य और राजगुरु दोनो साथ-साथ निकले और आपस में बातें करते हुए चल दिये। लोगों ने आदरपूर्वक एक ओर हटकर दोनो को मार्ग दिया।

सब के बाद निकलनेवालों में थे रायराया, विद्यारण्य माधव और सोमेश्वर दुर्गपाल। विद्यारण्य ने रायराया को आज के शासन के लिए बधाई दी।

एक गरुड़-दोरंगी ने आकर समाचार दिये कि रायराया का अश्व तैयार है और महामंत्री की पालकी भी हाजिर है।

तभी जोगीराज सिंगी वहाँ दौड़ा आया और विद्यारण्य माधव के समीप पहुँचकर उसने कहा—वह दोमार पूरण कन्याली तो भाग गया!

'तुमसे किसने कहा?' रायराया ने पूछा।

'कपाय नायक ने। वह दौड़कर आये हैं और दम फूल जाने से मूर्च्छित होकर बाहर पड़े हैं।'

१७. हरिगोल में

आदमी भला हो या बुरा, कई बार उसके दिल में झाँककर देखना अच्छा नहीं होता; और जब आदमी स्वयं को सिंह के समान और दूसरों को भेड़ अथवा गीदड़ के समान समझता हो तब तो बात और भी बिगड़ जाती है।

बलदेव की स्थिति भी कुछ ऐसी ही थी। एक प्रकार से वह सबसे सुखी मनुष्य था, क्योंकि वह अपने-आपको बिलकुल सही मानता था। एक प्रकार से वह अत्यन्त दुःखी भी था, क्योंकि दूसरों को वह गलत और मूर्ख समझता था। उसे आश्चर्य होता था कि उसकी दीये के उजाले-जैसी बात को दूसरे लोग समझ क्यों नहीं पाते! क्या किसी योगी-यति अथवा भूत-प्रेत ने जादू-

टोना तो नहीं कर दिया कि लोग सच्ची बात को न देख पाते हैं और न समझ ही पाते हैं ?

उसे इस बात का भी बड़ा अभिमान था कि रायराया ने निर्वासन-दण्ड भले ही दिया, पर पकड़कर सीमा के पार कर आने का साहस किसी का न हुआ। आखिर तो वह एक शक्तिशाली दुर्गपाल का पुत्र और सोलंकियों की सात पीढ़ियों का उत्तराधिकारी था ! किसकी मजाल थी कि उसके शरीर को हाथ लगाता !

इसी अभिमान के कारण वह निर्वासित किये जाने के बाद भी देश की सीमा छोड़कर बाहर नहीं गया और नगर में घूमता रहा। अनायास उसे एक स्वर्ण अवसर मिल गया। तुरुष्कों के आने की बात को लेकर उसने भागवतों और जैनों को आपस में लड़ा दिया। भागवतों और जैनों में साम्प्रदायिक वैमनस्य तो वर्षों से चला आता था। इधर रायरेखा के कारण वह वैमनस्य कुछ दब-सा गया था, यद्यपि समाप्त नहीं हुआ था। बलदेव किसी प्रकार भागवतों को उकसाने में सफल हो गया। अच्छा-खासा सिर-फुटौव्वल हुआ, परन्तु बलदेव का अभीष्ट फिर भी पूरा न हुआ।

उपद्रव के तत्काल बाद ही उसके अभिमान को करारी ठेस लगी। अपमान भी कैसा ? किसी साधारण दोमार या चोर की भी जो दशा न हुई होगी वह उसकी हुई। कहाँ तो यह अभिमान कि कोई उसे आनेगुण्डी से निकाल नहीं सकता और कहाँ स्वयं उसी के पिता के अन्तःपुर की बाँदियाँ उसे घेरकर तुंगभद्रा के पार उतार गईं !

और वह कुछ कर न सका। करता भी क्या ? बाँदियों से जूझता ? औरतों पर हाथ उठाकर अपने कुल को कलंकित करता ? बेचारा चुपचाप नदी-पार उतरकर निर्वासित हो गया।

भाव्यों और भागवतों को पूरी तरह लड़ाने के अरमान मन-के-मन में रह गए और उसे निर्वासित हो जाना पड़ा।

उसके अन्तरतम में असफलता और अपमान की होलियाँ सुलग उठीं। क्या करूँ कि लोगों को मेरे अस्तित्व का भान हो, उनकी आँखें खुल जायें और वे समझ सकें कि बलदेव पर हाथ डालना दाल-भात का कौर नहीं है।

इन्हीं विचारों में मग्न वह तुंगभद्रा के पार एक बरगद के नीचे बैठा था। यह बरगद बड़ा ही विशाल और आलीशान था। इसके बारे में लोगों का कहना था कि जब सृष्टि का जन्म हुआ तब यह बरगद सबसे पहले उत्पन्न हुआ था और प्रलय होने के बाद भी यह बरगद बना रहेगा। यह बरगद अकेला वट वृक्ष नहीं समूचा वट-वन ही था। इसकी विशाल टहनियों से अनेक जटाएँ निकलकर धरती में जड़ें जमा चुकी थीं और अनेक जटाएँ धरती तक पहुँचने में प्रयत्नशील थीं। अपनी अगणित जटाओं के कारण यह बरगद इतना फैल गया था कि उसके नीचे एक साथ हजारों आदमी बैठ सकते थे। बरगद क्या था पत्तों से आच्छादित प्रकृति महारानी का दीवानखाना ही था। पुरातन काल में यहाँ औघड़ कापालिकों का निवास था। कहा जाता है कि रावण के मामा मारीच ने इसी बरगद के नीचे घोर तपस्या की थी और इसी बरगद के नीचे उसने माया-मृग की सुनहरी काया को धारण किया था। एक जटा के धड़ पर मृग की खुरियों के चार निशान अब भी देखे जा सकते थे। श्रद्धालुओं के कथनानुसार ये निशान उसी स्वर्णमृग की खुरियों के थे।

इसी घनघोर बरगद के तले घोर विचारों में मग्न बलदेव बैठा था। बड़ी देर तक वह पत्थर की मूर्ति की भाँति स्थिर बैठा विचारों की उधेड़-बुन करता रहा।

सहसा वह प्रसन्न हो उठा। उसके चेहरे की तनी हुई शिराएँ कोमल हो गईं।

अरे बलदेव, इतनी-सी बात तेरी समझ में नहीं आई? शत्रु का शत्रु अपना क्या हुआ? नीति का यह सामान्य सूत्र ही भूल गया? शत्रु का शत्रु अपना मित्र हुआ। इस सूत्र के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक बलदेव का मित्र हुआ। लेकिन मैत्री के बदले यदि सुल्तान ने बलदेव को मुसलमान बनाना चाहा? भागवतों का परमभक्त बलदेव मुसलमान कैसे हो सकता है? और यह स्थिति भी तो विचारणीय है कि अमीर हसन के साथ दो तुरुष्क ललनाएँ भी आई थीं। उनमें से एक तो सुल्तान मुहम्मद की बेगम थी और दूसरी....

दूसरी को सुल्तान ने अवश्य बुक्का को लुभाने के लिए भेजा होगा। कोई आश्चर्य नहीं, यदि सुल्तान बुक्का के साथ रिश्तेदारी क़ायम करना चाहे! वैसे विश्वास तो नहीं होता कि मुहम्मद तुग़लक किसी को अपना रिश्तेदार बनाये और उस रिश्ते को निभाये। लेकिन इन तुरुष्कों का क्या भरोसा? अपना काम निकालने के लिए सब-कुछ कर सकते हैं। और बुक्का का भी क्या ठिकाना? यों कहने को क्षत्रिय अवश्य है, परन्तु बाप गड़रिया था, और खुद भी गड़रिया है। औरत देखकर फिसल सकता है।....तो मारो गोली 'शत्रु का शत्रु मित्र'वाली नीति को....

फिर? मदुरा का सहारा क्यों न लिया जाये? यह तुमने पते की बात कही। मदुरा का सुल्तान उतना कट्टर मुसलमान नहीं है। होता तो श्रीरंगम् के खाली मन्दिर में घी का दिया क्यों जलाता? हाँ, बेटा बलदेव, यह बात जरा सोचने-जैसी है!

इस बात के दूसरे पहलू को भी तो सोचो उस्ताद! श्रीरंगम् के मन्दिर की समस्त मूर्तियों को तोड़कर सुल्तान उसके अन्दर रहता है। उसका यह कृत्य प्रत्येक भागवत के हृदय में काँटे की भाँति खटकता रहता है। इसलिए मदुरा के प्रश्न पर तो प्रत्येक भागवत को साथ लिया जा सकता है, सब का सहयोग और समर्थन प्राप्त किया जा सकता है! श्रीरंगम् के मन्दिर के पुनरुद्धार के प्रश्न पर तो भागवत ऐसे एक नहीं एक-सौ एक रायराया को निछावर कर देंगे और विद्यारण्यों का तो वहाँ पता भी नहीं चलने पायेगा।

यह कौड़ी चित पड़ गई तो विजयनगर और विजयधर्म और विजयराज्य और चतुःसमयमंगल परिपालिसातु—सब देखते रह जायेंगे! भाव्य धन के ढेर लगाकर अपने प्राण बचायेंगे, भागवत सब साथ देंगे ही। रह गए भूतिया और टीलवा और सुल्तान। लड़ें और मरे-कटें वे आपस में। सुल्तान मुहम्मद जाने और विरूपाक्ष और उसका रायराया जाने!

भूतिया तो फिर भी गनीमत है। लेकिन टीलवों के तो ढंग ही निराले हैं। मुसलमान को भी भ्रष्ट कर देते हैं। न जाति-पाँति को मानते हैं, न वेद, रामायण और गीता को। छूआछूत का कोई विचार नहीं। जहाँ और जिसके साथ चाहा शादी-विवाह कर लिया। एक का बनाया सबने साथ

बैठकर खा लिया। किसी प्रकार की कोई मर्यादा नहीं। मन्दिर देखो तो आठों पहर और चौबीसों घड़ी खुले हुए। भूतनाथ के पास भस्म और धतूरे के अतिरिक्त धरा ही क्या है? उनके मन्दिरों में भंगी, चमार, बेसवागा, होलेय, यहाँ तक कि मुसलमान भी आकर ठहर सकते हैं। न इन टीलवों को छूत लगती है, न इनके भगवान को! मन्दिर में न दीया मिलेगा, न बाती; न भोग चढ़ेगा, न प्रसाद बँटेगा। ऐसे तो म्लेच्छ हैं और कहते हैं अपने-आपको वीरशैव!

इन्हीं के छोटे भाई हैं भूतिया। लड़ें ये और सुल्तान आपस में। वैसे भूतिया होते वीर हैं। जब लड़ने पर आ जाते हैं तो प्राणों का मोह छोड़कर लड़ते हैं। मरण को उत्सव ही बना डालते हैं। केसरिया बागे पहिनेंगे। कपाल पर केशर-चन्दन का लेप करेंगे, सिर के बाल खोलकर उसमें गुलाल भरेंगे, गले में धतूरे के फूलों की माला पहिनेंगे; और इस तरह रण में जायेंगे, मानो विवाह करने जाते हों।

अच्छा ही है, लड़ें भूतिये और टीलवे मिलकर सुल्तान से—सब-के-सब कट मरें तो जी का जंजाल छूटे। अपने तो बलदेव, यही देखना है कि भागवत सब साथ आ जायें और मदुरा के प्रश्न पर तुम्हारा समर्थन करें। फिर तो बात बन जायेगी।

और केवल एक नहीं, एक साथ कई बातें बन जायेंगी। रायराया हाथ मलता रह जायेगा। बाप को भी मानना पड़ेगा कि मैं तो स्वामिभक्ति की दुम ही पकड़े रह गया, पर बेटे ने वास्तव में सोलंकियों का नाम उजागर किया, सोलंकियों की परम्परा को आगे बढ़ाया और सोलंकियों के उत्तराधिकार को प्रस्थापित किया।

और सोना....मेरी बहिन....परन्तु वह भी कोई बहिन है? अपने होनेवाले पति के लिए सगे भाई को ही उसने धता बताई। परन्तु बहिन तो वह फिर भी है ही। उसकी भी समझ में आ जायेगा कि गड़रिये का साथ करने से भी गड़रिया भागवत न हुआ, रहा गड़रिया ही, परन्तु भाई ने तो भागवतों की लाज रख ली। और तब यही सोना हाथ जोड़ती, पाँवों पड़ती, नाक रगड़ती आयेगी....

तो बलदेव, समझ लो कि तुम्हारे लिए मदुरा ही एकमात्र सत्य और शेष सब मिथ्या है। परन्तु प्रश्न यह है कि मदुरा पहुँचोगे कैसे? वहाँ के सुल्तान को झुकाओगे कैसे? दोहरी नीति अपनानी पड़ेगी—एक ओर से भागवतों को फोड़ना होगा, उनसे चर्चा करनी होगी; दूसरी ओर सुल्तान का मन जीतकर अपने पाँव पसारने होंगे!

सुल्तान के मन को जीतना कुछ बहुत कठिन नहीं है। सुल्तानों ने सदैव देशद्रोहियों पर भरोसा किया है। देशद्रोही ही उनके पास गए हैं। देशद्रोही ही सुल्तानों को अपने देश पर चढ़ाकर लाते रहे हैं। यद्यपि स्वयं देशद्रोहियों के हाथ कुछ भी नहीं लगा है। वे अन्त तक देशद्रोही ही रहे हैं। सुल्तानों ने उन्हें हाथ में चाँद दिखाया, बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधाईं, परन्तु अन्त में, काम निकल जाने पर दूध की मक्खी की भाँति निकाल फेंका है। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसे लोग सुल्तानों पर विश्वास करते और सुल्तान उन पर विश्वास करते रहे हैं! बलदेव, यह पारस्परिक विश्वास ही तुम्हारे काम की चीज़ है। सुल्तान देशद्रोहियों पर विश्वास करने के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि वे स्वप्न में भी नहीं सोच सकते कि कोई देशद्रोही उनके साथ विश्वासघात भी कर सकता है।....तो बलदेव, यही हो तुम्हारी कार्यनीति। अब पहुँचो किसी तरह मदुरा....

मदुरा पहुँचना कौन मुश्किल है? वहाँ तो बलदेव गाजे-बाजे के साथ जा सकता है। सुल्तान का दोमार यहाँ पकड़ा गया है। बलदेव के बाप सोमेश्वर सोलंकी ने उसे वहाँ कैद किया है जहाँ वध किये जानेवाले बन्दी रखे जाते हैं। बलदेव उसे छुड़ाकर सुल्तान के पास ले जायेगा और इस प्रकार सुल्तान से उसकी भेंट ही नहीं होगी, परिचय भी हो जायेगा।

अब बलदेव उठा। उसने कुछ वट-फल, कुछ अमरूद और कुछ बेर जमा किये। थोड़े-से फूल चुन लाया। तुंगभद्रा में स्नान किया। थोड़ा भजन-पूजन किया और फलाहार कर जो लम्बी तानी तो आधीरात में जाकर उसकी नींद खुली।

मृगा नक्षत्र माथे पर आ गया था। वह उठा। नदी के किनारे पर आया। अपने वस्त्र उतारकर उसने एक गठरी-सी बनाकर उसे माथे पर

बाँध लिया। फिर नदी पर दृष्टि डाली। दूर एक हरिगोल (बड़ी नाव) आ रही थी। उसकी पालें हवा में फड़फड़ा रही थीं। बलदेव के लिए इतना काफी था। न उसने अधिक देखा, न अधिक देखने की आवश्यकता समझी।

वह तुंगभद्रा नदी के पानी में उतर पड़ा और बिना शब्द किये सतर्कतापूर्वक तैरने लगा। उसका सारा लक्ष्य इस ओर लगा था कि सिर पर बँधी कपड़ों की पोटली भीगने न पाये और यदि किसी तरह भी बच न सके तो कम-से-कम भीगे।

नदी का पाट चौड़ा था, परन्तु बलदेव भी कुशल तैराक था।

इस पार आकर वह पानी से बाहर निकला और माथे पर बँधी कपड़ों की पोटली को खोलकर उसने वस्त्र पहिन लिये। फिर वह आनेगुण्डी के दुर्ग की ओर चल पड़ा।

दूसरे स्थानों की भाँति यहाँ भी दुर्ग के बाहर हस्तीशिला थी। उसके पास से गुजरता हुआ वह किले के परकोटे के पास आकर रुक गया।

मलिक मक़बूल ने जब पिछली बार आक्रमण किया था तो उसके सैनिकों ने दुर्ग की बाह्य प्राचीर के पत्थरों को काटकर ऊपर चढ़ने के लिए कई आले बना डाले थे। यदि परकोटा दुहरा न होता और दोनों दीवालों के बीच मिट्टी न भरी होती और सोमेश्वर सोलंकी ने तुरुष्कों को वीरतापूर्वक मार न भगाया होता तो उन्होंने दुर्ग को जीत ही लिया था।

बलदेव को बचपन से उन आलों की जानकारी थी। किशोरावस्था में वह घंटों उनके सहारे चढ़ने-उतरने का खेल खेला था। यह खेल बड़ा ही खतरनाक था; जरा-सा भी चूकने पर हड्डी-पसली टूटने और प्राण तक जाने का भय था। लेकिन सोमेश्वर ने कभी बलदेव को इस खतरनाक खेल से रोका नहीं। उसने तो इस खेल को अपने पुत्र की हिम्मत बढ़ानेवाला ही समझा था। उस बेचारे को क्या पता था कि एक दिन बलदेव बचपन के उस खेल का दुरुपयोग भी करेगा!

वे आले अभी तक बने हुए थे। इधर कोई आक्रमण नहीं हुआ था,

इसलिए सोमेश्वर ने उन्हें मुँदवाने की कोई चिन्ता नहीं की थी। वह यही सोचता रहा था कि समय आने पर उसी वक्त मुँदवा दिये जायेंगे।

बलदेव परकोटे के पास आकर एक क्षण ठिठका और फिर गिलहरी की भाँति उन आलों की सहायता के दुर्ग प्राचीर पर पहुँच गया। ऊपर पहुँचकर परकोटे की चौड़ी दीवाल पर पेट के बल घिसटता हुआ वह आगे बढ़ा। दरवाजे के समीप पहुँचकर उसने गिरगिट की भाँति सिर उठाकर अगल-बगल और सामने देखा।

दरवाजे पर एक दोरंगी खड़ा पहरा दे रहा था। वह अकेला नहीं था। उसके साथी अन्दर कोठरी में बैठे बातें कर रहे थे। बातचीत की ध्वनि से, अन्दर कोठरी में, केवल दो व्यक्ति प्रतीत होते थे। पहरे पर खड़े दोरंगी की आँख और कान साथियों की बातचीत की ओर लगे थे।

सामान्यतः परकोटे की दीवाल से नीचे उतरने के लिए दरवाजे के बुर्ज की खिड़की से सीढ़ियाँ बनी होती हैं। यहाँ सीढ़ियाँ नहीं थीं, मिट्टी डालकर जमीन ढलुवाँ कर दी गई थी। बलदेव चारों हाथों-पाँवों के सहारे नीचे उतरने लगा।

सहसा पहरे पर खड़े दोरंगी को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके सिर पर पहाड़ का बोझ टूटकर आ गिरा हो! उसने अपनी गरदन को लोहे की सँडसी में जकड़े जाते अनुभव किया। वह चिल्लाकर प्रतिरोध करता, सहायता के लिए किसी को पुकारता उसके पहले तो बलदेव ने उसकी गरदन मरोड़ दी! खट् की आवाज हुई और वह दोरंगी सदा के लिए समाप्त हो गया!

बलदेव ने उसके शव को धीरे से नीचे रखा और बिल्ली की भाँति दबे पाँवों आगे बढ़ा। दरवाजे की छोटी खिड़की के समीप पहुँचकर उसने उसके अन्दर लगी हुई लोहे की भारी अरगला को खोलकर हाथ में ले लिया।

दबे पाँवों चलता हुआ वह उस कोठरी के दरवाजे के समीप सटकर खड़ा हो गया, जिसके अन्दर से दोरंगियों के बातचीत करने की आवाज़

सुनाई दे रही थी ! अरगला को दोनो हाथों में पकड़कर उसने सिर से भी ऊँचा किया और असह्य वेदना से भरे स्वर में जोर से चीत्कार उठा।

चीत्कार सुनकर अन्दर कोठरी में बातें कर रहे दोनो दोरंगी लपककर बाहर आये। जैसे ही पहला दोरंगी बाहर निकला बलदेव ने अरगला का तुला हुआ प्रहार किया। जिस प्रकार कुठाराघात से वृक्ष का तना छिन्न होकर गिर पड़ता है, वह दोरंगी भी गिर पड़ा और बलदेव का सारा शरीर खून के छींटों से भर गया।

पीछेवाले दोरंगी को बलदेव ने सँभलने का अवसर नहीं दिया। लपककर उसकी गरदन पकड़ ली और दूसरे हाथ से अरगला को उसके सिर पर ताने हुए साँप की फुफकार के-से स्वर में कहा—चुप ! जरा भी आवाज की तो जो गति तेरे साथियों की हुई वही तेरी भी होगी !

यह धमकी कारगर भी थी और बेकार भी, क्योंकि दोरंगी तो इतना घबरा गया था कि उसकी बोलती ही बन्द हो गई थी।

'हाथीगुण्डी की चाभी निकाल !' बलदेव ने डपटकर कहा।

'हाथीगुण्डी से उसका अभिप्राय उस कोठरी से था जिसमें हाथी के पाँवों-तले कुचले जानेवाले अपराधी बन्दियों को रखा जाता था।

दोरंगी थर-थर काँपने लगा। बलदेव ने उसकी गरदन में अपने पंजे की पकड़ को कसते हुए कहा—चाभी जल्दी दे, नहीं तो उन दो के साथ तीसरा तू भी....

दोरंगी को साक्षात् मौत सामने खड़ी दिखाई दी। उसने काँपते हुए हाथों से दीवाल पर लटकी हुई चाभी को उतारने का प्रयत्न किया, लेकिन बेचारे की उँगलियाँ ही नहीं मुड़ीं।

बलदेव ने झपटकर चाभी अपने अधिकार में की और उसे आगे की ओर ढकेलता हुआ बोला—अब चल, आनेगुण्डी बता।

ऐसी बात नहीं थी कि बलदेव आनेगुण्डी को जानता न हो। वह दुर्गपाल का पुत्र था और दुर्ग के एक-एक हिस्से को जानता था, परन्तु इस समय उसने उस दोरंगी को यहाँ अकेला छोड़ना उचित नहीं समझा।

आनेगुण्डी अथवा हाथीगुण्डी के समीप पहुँचकर बलदेव ने उसका

दरवाज़ा दोरंगी से खुलवाया। अन्दर घना अँधेरा छाया हुआ था। बलदेव ने धीमे स्वर में पुकारा—पूरण महाराज !

'कौन हो तुम ?' बदले में प्रत्युत्तर सुनाई दिया, 'आधीरात में आनेवाले कौन हो तुम ? क्या विजयधर्मवाले भी सुरत्राणों की भाँति आधीरात में हत्या करना सीख गए हैं ? और मैंने तुम्हारा बिगाड़ा ही क्या है ?....पर क्या तुम माधव मंत्री से अनुमति लेकर आये हो ? उनसे पूछ तो लिया है ?'

'अरे महाराज, कौन कहता है कि तुमने मेरा कुछ बिगाड़ा है ? मैं तो तुम्हारी बिगड़ी को बनाने आया हूँ ? जरा इधर, दरवाजे पर चले आओ !'

खुले दरवाजे में एक धुँधली आकृति दिखाई दी। बलदेव ने उसका हाथ पकड़कर बाहर खींच लिया और जिस दोरंगी को वह पकड़े हुए था उसे जोर से कोठरी के अन्दर ढकेल दिया। दोरंगी सामने की दीवाल से जा टकराया और एक भी शब्द बोले बिना जमीन पर धड़ाम से आ गिरा।

'महाराज, थोड़ा ठहरना होगा।'

'लेकिन....क्यों....'

'बातें फिर करेंगे। अभी तो चुपचाप देखते चलो।'

और एक-एक कर बलदेव दोनो दोरंगियों के शवों को जाकर ले आया और उन्हें भी उस कोठरी में फेंककर दरवाजा बन्द किया और ताला लगाकर चाभी परकोटे के बाहर फेंक दी। फिर क्रूरतापूर्वक हँसते हुए बोला—इसके भाग्य में होगा तो चाभी मिल जायेगी। बताइए, भाग्य के आगे हमारा क्या बस ? कहा भी है—भाग्यं फलति सर्वत्र....चलिए, अब हम चलें। रात कम है और हमें काम बहुत करने हैं।

मारे विस्मय के पूरण कन्याली के तो मुँह में जैसे जबान ही नहीं रह गई थी। वह चुप खड़ा टुकुर-टुकुर देख रहा था। बलदेव ने उसका हाथ पकड़ा और अपने पीछे घसीटता हुआ ले चला। मिट्टी के ढलवान पर चढ़कर वह परकोटे के ऊपर आया और उतरने की जगह के समीप खड़ा होकर बोला—आओ महाराज, दीवाल की ओर मुँह करके, पाँवों से आले टटोलते हुए उतर चलो !

लेकिन इस समय रात में....

'विचित्र मनुष्य हो तुम भी! ठेठ मदुरा से गोभूरी का कार्य करने आये हो और रात से डरते हो? तनिक साहस से काम लो। लाओ, अपना एक हाथ मुझे दो और दूसरे हाथ से दीवाल थामकर एक पाँव आले में रखो, दूसरा पाँव उसके नीचेवाले आले में, फिर दीवालवाला हाथ पहले पाँव के आले में, पहला पाँव दूसरे पाँववाले आले में और दूसरा पाँव उससे नीचेवाले आले में—इस तरह उतरते चलो। तुम्हारा दूसरा हाथ मैं थामे रहूँगा। ब्राह्मण होकर डरते हो? बोलो, उतरते हो या फेंक दूँ यहाँ से नीचे?

बिना ननुनच किये पूरण महाराज अन्धकार के गहरे कुएँ में उतरने लगे। उनके साथ-साथ बलदेव भी उतरा। एक-दो बार पूरण महाराज का पाँव चूका और हाथ भी खिसक गया, परन्तु बलदेव ने उन्हें थाम लिया।

जब दोनो व्यक्ति नीचे उतर गए तो बलदेव पूरण महाराज का हाथ पकड़कर दौड़ने लगा। वह तो यहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि का जानकार था, इसलिए आँखें मूँदकर भी दौड़ सकता था, परन्तु पूरण महाराज की जान मुसीबत में थी। वह इस तरह खिंचे जा रहे थे, मानो नदी के तेज प्रवाह में उखड़ा हुआ वृक्ष खिंच रहा हो।

दौड़ते हुए वे दोनो तुंगभद्रा के तट पर आ पहुँचे। यहाँ आकर बलदेव क्षण-भर को ठिठका। नदी की धुँधली धारा साफ-साफ दिखाई दे रही थी। बलदेव नदी के किनारे-किनारे धारा के साथ-साथ चलने लगा। कुछ दूर जाने पर उसे नदी के बीचोबीच एक काला-सा धब्बा दिखाई दिया।

'महाराज, तैरना आता है?'

'तैरना? हाँ, आता तो है, परन्तु....'

'किन्तु-परन्तु के लिए समय नहीं है। मेरी तरह कपड़े उतारो और पोटली बनाकर सिर पर बाँध लो!'

फिर दोनो तुंगभद्रा के पानी में उतरे और तैरने लगे। कुछ दूर निकल आने पर बलदेव ने कहा—महाराज, अब हाथ-पाँव चलाना बन्द कर दो और धारा के साथ बहते चलो।

दोनो धारा में, शवों की भाँति, नीचे की ओर को बहने लगे। सहसा नदी का धुँधला पट जैसे काली दीवार से अवरुद्ध हो गया।

बलदेव ने महाराज की बगल में अँगुली कोंचकर इशारा किया कि जैसा मैं करता हूँ वैसा ही तुम भी करो।

वह काली दीवाल एक विशाल हरिगोल और नदी की बीच धारा में लंगर डाले पड़ी थी। बलदेव बन्दर की-सी चपलता से लंगर की रस्सी के सहारे हरिगोल पर चढ़ गया। पूरण महाराज ने भी उसका अनुसरण किया। ऊपर आकर दोनो व्यक्ति सतर्कतापूर्वक टोह लेने लगे।

हरिगोल में सन्नाटा था।

सामान्य नियम यह था कि हरिगोल पर जितने भी नाविक होते, उनमें से एक को छोड़कर शेष सब, पतवार के समीप अथवा सूच्याग्र के समीपवाले हिस्से में सो जाते थे। केवल एक आदमी पहरे पर जागता रहता था। बलदेव को यही पता लगाना था कि पहरेवाला नाविक कहाँ बैठा हुआ है।

पूरण महाराज को नाव के अगले हिस्से में छोड़कर बलदेव आगे बढ़ा। भंडार के फलक के ऊपर होकर जाते हुए नीचे की छत्री में उसे किसी के खर्राटों की आवाज़ सुनाई दी। कूपस्तम्भ के समीपवाले पटिये पर कोई व्यक्ति टाँगें फैलाये सोया हुआ था।

बलदेव कूपस्तम्भ की ओट में दुबककर देखने लगा। जब आँखें अँधेरे की अभ्यस्त हो गईं तो उसने पतवारवाले हिस्से में एक व्यक्ति को हरिगोल की बाजू से पीठ टिकाये बैठे देखा। बलदेव सोचने लगा कि अकेला यही व्यक्ति रात-भर पहरा देता रहेगा या कोई और व्यक्ति इसका पहरा बदलवाने के लिए आयेगा?

पहले तो बलदेव को उस पहरुए पर बड़ा गुस्सा आया, फिर यह सोचकर कि इतनी रात गए अपने पहरे पर मुस्तैद है, उसके प्रति मन में सम्मान का भाव जाग्रत हुआ; परन्तु थोड़ी ही देर बाद सम्मान का स्थान तिरस्कार ने ले लिया। वास्तव में वह नाविक जागकर पहरा नहीं दे रहा था। हरिगोल की बाजू से पीठ टिकाये बैठा ऊँघ रहा था। उसके खर्राटों की मन्द-मन्द ध्वनि भी सुनाई दे रही थी। बलदेव ने सोचा, इससे क्या डरना, निरा मिट्टी का लोंदा है!

अब बलदेव धीरे-धीरे आगे बढ़ा। उस पहरुए के समीप पहुँचकर उसने

वहाँ रखे हुए लंगर की मजबूत रस्सी उसके पाँवों के चारों ओर बड़ी सफाई से लपेटी और मजबूती से गाँठ लगा दी। इसके बाद, कपड़े का गोला तैयार करके एक हाथ में लिया और दूसरे हाथ से नाविक का मुँह, जबड़ों के यहाँ से दबाकर खोला और कपड़ा मुँह में ठूँस दिया। नाविक की आँखें खुलीं, गले में घर्राहट का स्वर सुनाई दिया और दूसरे ही क्षण बलदेव ने उसे लंगर-सहित उठाकर नदी में फेंक दिया।

बिल्ली की तरह फुर्ती से, दबे पाँवों और चुपचाप वह आगे बढ़ा और लंगर से बँधी रस्सी को खोल दिया। लंगर खुलते ही हरिगोल धारा में नीचे की ओर को बह चली। बलदेव ने दौड़कर पतवार थाम ली।

नाव का मुँह घुमाकर उसने धारा की दिशा में किया और नाव धारा के साथ बहने लगी। अब पूरण महाराज भी वहाँ आ पहुँचे। वह बलदेव के पाँवों के समीप बैठ गए और उससे वार्तालाप आरम्भ करने के उद्देश्य से बोले—महाप्रधानी ने मुझे हाथीगुण्डी में मूँदा तभी से मेरा मन कह रहा था कि मुझे छुड़ाने के लिए कोई-न-कोई अवश्य आयेगा....

लेकिन बलदेव ने उसे चुप हो जाने का संकेत करते हुए धीरे से उसके कान में कहा—अभी हम निरापद नहीं हो पाये हैं। नाव पर कितने और किस प्रकार के आदमी हैं, यह भी हम नहीं जानते। अभी तो कुशल इसी में है कि यहाँ से जितनी दूर निकला जा सके निकल जाना चाहिए। सबेरे जैसी पड़ेगी, देखी जायेगी।

नाव नीचे की ओर को बहती रही। आनेगुण्डी का दुर्ग बहुत पीछे छूट गया। नाव में सोये हुए नाविकों में से किसी की नींद नहीं टूटी। जो व्यक्ति छतरी में सोया हुआ था उसके खर्राटों की आवाज अब भी सुनाई दे रही थी।

सवेरा हुआ। किष्किन्धा, माल्यवान, मातंग और ऋष्यमूक पर्वतों की चोटियाँ पीछे छूट गई थीं और अब उनका धुँधला आकार ही दिखाई दे रहा था। एक ओर दण्डकारण्य और दूसरी ओर पूर्वीघाट को छोड़ती हुई हरिगोल तेलुगु प्रदेश में प्रविष्ट हो चुकी थी। नदी का पाट पहले से काफी चौड़ा हो गया था। तुंगभद्रा और कृष्णा नदी का संगम यहाँ से अधिक दूर नहीं था।

इस स्थान से हरिगोल तो क्या बड़ी-बड़ी फतहमारियाँ भी पूर्वी समुद्र की ओर जाया करती थीं।

हरिगोल की छतरी में सोये हुए नाविक की नींद खुली। उसने लेटे-लेटे आँखें खोलकर छतरी के बाहर देखा तो उसे कुछ भी अपेक्षित नहीं दिखाई दिया—सारा दृश्य अनपेक्षित था।

हाथ में दातुन लिये नाविक छतरी से बाहर निकला और कूपस्तम्भ के पटिये पर खड़ा होकर चारों ओर देखने लगा। न तो नाव के चलने की बात उसकी समझ में आई और न नदी के दोनो किनारे ही वे थे जो होने चाहिए थे।

विस्मय, रोष और उलहने के मिले-जुले भावों से उसने पतवार को थामकर बैठे हुए नाविक की ओर देखा और देखते ही चौंक पड़ा।

'कौन ? बलदेवकुमार ?'

'कौन ? कपाय नामक ?'

यह नाम सुनते ही पूरण कन्याली के पाँवों-तले से जैसे धरती खिसक गई। मदुरा, तेलुगु और कलिंग का ऐसा कौन-सा निवासी था जिसने सामुराय कपाय नायक का नाम न सुना हो ? विजयधर्म का वह प्रबल समर्थक और आधार-स्तम्भ था। मदुरा का सुल्तान गयासुद्दीन दमग़ानी उसे 'फाँसी देने-वाला जल्लाद' कहता था। कपाय नायक ने सच ही मदुरा के गले में फाँसी का फन्दा डाल दिया था। बंगाल का तुरुष्क हाकिम समुद्री मार्ग से मदुरा की सैनिकों और शस्त्रास्त्रों से सहायता करता रहता था। कपाय नायक ने वह सहायता एकदम बन्द कर दी थी। अब मजाल नहीं थी किसी तुरुष्क नाविक की कि वह बंगाल से अपनी नौकाएँ लेकर मदुरा की ओर बढ़ता। कलिंग का गजपति उसे 'नरभक्षी मगर' कहकर गालियाँ देता था। कारण यह था कि कलिंग के एक ओर बंगाल और दौलताबाद की तुरुष्क रियासतें थीं और दूसरी ओर विजयधर्मराज्य और वारंगल था। कलिंग समुद्री मार्ग से मलाया और स्याम के विजय राजाओं के साथ व्यापार करता था ! कलिंग के वाणिज्य पोत मदुरा और बंगाल भी जाते थे। कपाय नायक ने कलिंग के वाणिज्य पोतों का बंगाल और मदुरा जाना रोक दिया था। बंगाल के

हाकिम ने कपाय नायक को जलयुद्ध में पराजित करना चाहा, परन्तु उसे मुँह की खानी पड़ी। कलिंग का गजपति भी कपाय नायक से दो-दो हाथ कर लेना चाहता था, परन्तु उसे इस काम के लिए नाविक ही नहीं मिलते थे; इसलिए मन-मारे रह जाना पड़ता था। स्थिति यहाँ तक प्रतिकूल हो गई थी कि कलिंग के समुद्र-तट पर अधिकार गजपति का था, परन्तु आदेश कपाय नायक का चलता था। और इसी लिए गजपति उसे 'नरभक्षी मगर' कहकर दिल की जलन निकाला करता था।

मदुरा में तो घर-घर कपाय नायक की कहानियाँ कही और सुनी जाती थीं। मदुरा का बच्चा-बच्चा उसके नाम से परिचित था। लोकोक्तियों और दन्तकथाओं ने उसे अतिमानुषी रूप ही प्रदान कर दिया था। सभी उसे लम्ब-तड़ंग, भयंकर और क्रूर समझने लगे थे। लेकिन पूरण कन्याली ने जब उसके नाटे कद और अत्यन्त सौम्य और स्वाभाविक चेहरे-मुहरे को देखा तो चकित ही रह गया। पीठ की ओर से देखने पर तो वह केवल सत्रह-अठारह वर्ष का किशोर प्रतीत होता था।

ऐसा था वह, वीर पिता प्रोलेय नायक का वीर पुत्र, कपाय नायक। वह मन्थर गति से बलदेव की ओर बढ़ा और बोला—अरे कुमार, आप यहाँ कहाँ? और यह कैसा परिहास?

'परिहास? किसका परिहास?'

'इस हरिगोल को आनेगुण्डी के समीप खड़ा किया था, वहीं लंगर डाले यह पड़ी थी। रात हमें पहुँचने में विलम्ब हुआ तो यह सोचकर कि इतनी अबेर दुर्ग के द्वार कौन खुलवाये, हम हरिगोल में ही सो रहे। आप रात में कब आये? कब लंगर उठाकर नाव चला दी? और यह सब तमाशा क्यों किया?'

'हाँ, तमाशा ही समझ लो या जैसा तुमने पहले कहा, परिहास समझ लो!'

'कुमार, आपके सिर अब कोई उत्तरदायित्व नहीं, इसलिए आपको तमाशा सूझ सकता है और परिहास भी कर सकते हैं। परन्तु मेरे सिर तो

उत्तरदायित्व है और मैं विशेष कार्य से आनेगुण्डी आया था। आज प्रातः-काल के प्रथम प्रहर में ही मुझे महाप्रधानी और रायराया से मिलना था।'

'कार्य तो मुझे भी था नायक, और वह सामान्य नहीं, विशिष्ट ही था। इसलिए जब यह हरिगोल दिखाई दी तो मैंने इसे भगवान की कृपा समझा और लंगर उठा दिया। मैंने भी सोचा, कि अब रात में किसे जगाने जाऊँ?'

कपाय नायक ने दाँत पीस लिये। बलदेव दुर्गपाल का पुत्र अवश्य था, परन्तु निर्वासित किया गया था। पता नहीं, इस समय कहाँ से आ टकराया? और हराप्पा नाविक ने इसकी बात मान कैसे ली? मुझसे पूछा क्यों नहीं?

'लेकिन हराप्पा कहाँ है?'

बलदेव ठठाकर हँस पड़ा—हराप्पा कहाँ है, सो भी बताता हूँ नायक! हराप्पा वहाँ है!

यह कहकर बलदेव ने कपाय नायक को उठाकर पानी में फेंक दिया और तब पतवार पर अपनी ठोड़ी टिकाकर उसकी ओर देखते हुए व्यंग्य-पूर्वक बोला—हराप्पा यहाँ है! उसे ढूँढ़ लेना। और देर-अबेर जब भी आनेगुण्डी पहुँचो तो अपने महाप्रधानी से मेरा नमस्कार कहना और यह बतला देना कि बलदेव तुम्हारे महत्वपूर्ण बन्दी पूरण महाराज को लेकर भाग गया है। हिम्मत हो तो जाकर उसे पकड़ लाओ! यह भी कहना कि यह सन्देश बलदेव का नहीं, भावी रायराया का है! कपाय नायक, मेरा यह सन्देश याद रखकर सावधानीपूर्वक और अवश्यमेव अपने महाप्रधानी को पहुँचा देना! पहुँचा दोगे न?

१८. चलो मदुरा

कपाय नायक ने कहा—रायराया, आपकी आज्ञा हो तो मैं अभी जाता हूँ और उन चोरों तथा दोमारों को पकड़कर ले आता हूँ!

रायराया ने अपने प्रधानमंत्री की ओर देखा। विद्यारण्य माधव पूर्णतः मौन थे, मानो किसी गहरे विचार में मग्न हों।

रायराया ने पूछा—सामुराय, हमें आश्चर्य तो यही है कि आप हमसे अनुमति प्राप्त करने के लिए आये!

'राजन्, मेरा पहला धर्म था अपने नाविक के प्रति। उस पर क्या बीती यह पता लगाना मेरा परम कर्त्तव्य था। दोमारों को तो जब चाहे पकड़ा जा सकता है; लेकिन अदृश्य नाविक को ढूँढ़ निकालना सबसे पहली आवश्यकता थी।'

'सच है सामुराय। हम तो यह भूल ही गए थे कि आपका नाविक खो गया। हाँ, तो क्या हुआ उसका?'

'राजन्! उसका हिसाब तो मुझे बलदेवकुमार से समझना होगा। हराप्पा मेरा सर्वश्रेष्ठ नाविक था। वह मेरी दाहिनी भुजा ही था। उसकी योग्यता और अनुभव की कोई तुलना नहीं। मुझे उसका शव हरिगोल के लंगर के साथ लिपटा हुआ मिला। उसका पता लगाने में मुझे इतना समय लग गया और मैं इस कदर थक गया कि जिस बात की सूचना देने के लिए स्वयं आना चाहिए था उसे सन्देशवाहक द्वारा कहलवाना पड़ा। अत्यन्त परिश्रम और चिन्ता के कारण मैं महासमिति में भी उपस्थित न हो सका; सभा स्थान के द्वार तक पहुँचकर भी सभा में सम्मिलित न हो सका। राजन्, मेरा यह अपराध क्षमा किया जाये।'

'यह कोई अपराध नहीं है सामुराय जिसके लिए आपको क्षमा माँगने और हमें क्षमा करने की आवश्यकता हो। नदी के इतने विस्तृत पाट को, बहाव की विपरीत दिशा में तैरकर पार करना, जहाँ हरिगोल ने लंगर डाला था वहाँ बार-बार डुबकियाँ लगाकर नाविक के शव को खोजना, लंगर से लिपटे हुए शव को छुड़ाकर किनारे पर लाना और तब बिना विलम्ब किये सन्देश देने के लिए स्वयं दौड़े आना, क्षमा माँगने की बात है या पुरस्कार देने की?'

'तो राजन्, मुझे आज्ञा दीजिए। उस दोमार को मैं सातवें पाताल में से भी ढूँढ़कर पकड़ लाऊँगा। मुझे विश्वास था, इसी लिए तो उसके पीछे न जाकर मैं अपने नाविक का पता लगाने के लिए रुक गया था। अब आज्ञा दीजिए राजन्!'

'लेकिन क्या उन लोगों को पकड़ा जा सकेगा सामुराय?'

'यदि मुझे ऐसा विश्वास न होता तो मैं उस दोमार का सन्देश आपसे

कहने के लिए स्वयं आता ही क्यों ? मैं केवल यह कहने के लिए आया हूँ कि आपने बलदेव को एक नहीं दो-दो बार क्षमा किया है; परन्तु अब उसे कदापि क्षमा नहीं किया जाना चाहिए। अब तो राजन्, आपको अपने राजधर्म का पालन करना ही होगा। आप मातंगराज रामभद्र को तैयार कीजिए। मैं हाथी के पाँव-तले दिये जानेवाले दोनो अपराधियों को यथाशीघ्र उपस्थित करता हूँ।'

'सामुराय, आप निश्चिन्त रहें। रामभद्र तैयार ही रहेगा। दण्ड इस बार अवश्य दिया जायेगा। प्रतीक्षा है केवल अपराधियों की; और हमें विश्वास है कि आप उन दोनो को अवश्य और शीघ्र पकड़ लायेंगे।'

यह कहकर रायराया ने विद्यारण्य की ओर देखा। वह मन्द-मन्द मुस्कराते हुए एक हाथ से अपनी शिखा को सँवार रहे थे और दूसरे हाथ से सींग की डिब्बी खोलकर उसमें से सुँघनी निकाल रहे थे। उनकी बगल में भोजपत्र पर लिखी पोथियों के ढेर लगे हुए थे।

रायराया ने उनसे कहा—क्यों विद्यारण्य महाराज, क्या मेरा कथन यथार्थ नहीं ? अब हम इस स्थिति में तो रहे नहीं कि पात्र-कुपात्र, अधिकारी-अनधिकारी, भद्र, विभद्र और अभद्र—सभी को समझाते और मनाते रहें! अनुशासन के भंग और अवहेलना को भी अब हम सह नहीं सकते। अब हमारे यहाँ रायरेखा है, राजा है, शासन है, राज्याधिकारी और धर्माधिकारी हैं, राजा है, महाप्रधानी हैं—सभी कुछ तो है। अब हमें गोभूरियों, स्वेच्छा-चारियों, अनाचारियों और दुर्मुखों को दण्ड देना ही चाहिए। पंच-महापातक और पंचद्रोह के अपराधी दंडित किये ही जाने चाहिए। क्या आप इससे सहमत नहीं हैं ?

'राजन्, ऐसा क्यों कहते हैं ? यदि मैं इस बात को मानता न होता तो वेदों की प्रतिसंस्कृति संहिता रचने का अपना मुख्य कार्य छोड़कर राज्यतंत्र का बोझ सिर पर क्यों धारण करता ? मैं ब्राह्मण हूँ और मेरा कार्य वेदों और शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन और पुनरुद्धार है। फिर भी मैंने आपका प्रधानमंत्री बनना स्वीकार किया है तो केवल इसी उद्देश्य से कि राज्य की ही नहीं, शास्त्रों और संस्कारों की रक्षा भी अनुशासन के बिना नहीं हो सकती।'

'तो फिर आपकी यह मुस्कराहट....'

'इस मुस्कराहट का हेतु कुछ और ही है। उसके बारे में मैं आपको फिर कभी बतलाऊँगा। अभी तो केवल इतना ही कि मेरी यह मुस्कराहट आपके किसी शब्द अथवा विचार के कारण नहीं है। सम्प्रति तो हमें बैलदेव और पूरण कन्याली के ही बारे में सोचना चाहिए।'

'जी!' कपाय नायक ने कहा, महाप्रधानी आज्ञा प्रदान करें। मैं सातवें पाताल से भी उन दुष्टों को पकड़ लाऊँगा। हरिगोल में बैठकर पूर्वी समुद्र-तट की ओर जानेवाले गोभूरी आखिर जायेंगे कहाँ? मैं गर्व नहीं करता, परन्तु पूर्वी समुद्र-तट से गोभूरी तो क्या देवता भी कपाय नायक के पाश से छूटकर जा नहीं सकते! मेरे रहते वे दोनों दुष्ट मदुरा पहुँच सकते हैं भला?'

'लेकिन उन्हें तो मदुरा पहुँचने ही देना होगा सामुराय।'

'विद्यारण्य!' रायराया ने विस्मित होकर उच्च स्वर में कहा, 'विद्यारण्य!'

'जी राजन्! आपको कुछ कहना है क्या?'

रायराया बुक्काराय ने प्रयत्नपूर्वक अपने विस्मय पर काबू पाते हुए कहा—शासन-प्रबन्ध की अवहेलना और राज्य के दोरंगियों की दुर्दशा करके गोभूरी इस प्रकार भाग जायें और शासन उन्हें पकड़ न सके तो शासन की शोभा और प्रतिष्ठा ही क्या रह जायेगी?

'राजन्, इसी लिए तो रायरेखा ने राजा, राज्यतंत्र और अधिकारियों के भिन्न-भिन्न वर्ग निर्धारित किये हैं; और कभी-कभी राज्य के अधिकारियों को जान-बूझकर भी लोगों के उपहास का पात्र बनना पड़ता है। अब इसी उदाहरण को लीजिए। दण्ड देने के लिए रामभद्र को तैयार करना राज्यतंत्र है, परन्तु राजनीति यह कहती है कि हम गोभूरियों को पकड़ नहीं सकते।'

'पकड़ क्यों नहीं सकते?' कपाय नायक ने कहा, 'आप आज्ञा दीजिए और यदि एक दिन में मैंने उन्हें उपस्थित नहीं कर दिया तो मुझे अयोग्य ठहराकर विजयधर्मराज्य के सामुराय-पद से च्युत कर दीजिए।'

'नहीं कपाय नायक, यह प्रश्न आपकी योग्यता-अयोग्यता को परखने

का नहीं है और न कोई आपको सामुराय-पद से हटाने ही जा रहा है। बात वास्तव में यह है रायराया, कि पूरण कन्याली गोभूरी है ही नहीं। मदुरा में वह हमारी आँख है। वहाँ हमारी दो आँखें हैं; एक आँख पूरण कन्याली है, और दूसरी आँख है विषकन्या।'

कपाय नायक और रायराया अत्यधिक विस्मित होकर एक-दूसरे की ओर देखने लगे।

इधर माधव विद्यारण्य कहे जा रहे थे—पूरण कन्याली कुछ कहने के लिए आया था; उसके पास कोई सन्देश था। लेकिन मैं जानता था कि उसके यहाँ आने का संवाद मदुरा के सुल्तान को अवश्य प्राप्त हो जायेगा, इसलिए उसे मैंने बन्दी बनाकर हाथी के पाँव-तले देने का आदेश प्रदान किया था। बाद में मैं उससे मिलना चाहता था, लेकिन संयोगवशात् उससे भेंट न हो सकी और हम जान न सके कि वह क्या कहने आया था और मदुरा के अन्तरंग समाचार क्या हैं ? इस समय हम उन समाचारों को जान भी नहीं सकेंगे। न हम यह जान सकते हैं कि पूरण कन्याली स्वेच्छा से भागा है अथवा बलदेव उसे हमारा अनिष्ट करने और मदुरा के सुल्तान को प्रसन्न करने के लिए बरजोरी भगा ले गया है ! बात जो भी हो, इतना तो निश्चित है कि अब पूरण कन्याली लौटकर यहाँ आ नहीं सकता। लौटकर लाया भी गया तो मदुरा में उसका उपयोग नहीं किया जा सकेगा और वहाँ का सुल्तान, सम्भव है कि उसे हाथी के पाँव-तले दे दे। वह जो समाचार लाया था उसकी जानकारी अब हमें मदुरा की सीमा पर पहुँचकर ही हो सकती है।

'मदुरा की सीमा पर पहुँचकर ?'

'हाँ रायराया !' पूरण दो ही बातें कहने के लिए आया होगा—या तो यह कि मदुरा की सल्तनत को जीतने का उचित अवसर आ गया है या यह कि वह समय अभी तक आया नहीं है। रायराया, आप, जितनी भी सेना उपलब्ध हो उसे लेकर, कावेरी के किनारे तक चले जाइए और वहीं पड़ाव डाल दीजिए।'

'और आप ?'

'मैं यहीं रहूँगा। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने एक विशाल सेना तैयार की है, लेकिन उसके पास सेना को वेतन देने के लिए धन नहीं है। उसका कोष सर्वथा रिक्त हो चुका है। देवगिरि के व्यापारियों और दुकानदारों को वह इतना लूट चुका है कि अब उनके पास देने को कुछ भी शेष नहीं रहा है और संत्रस्त होकर अधिकांश वहाँ से भाग गए हैं। अब यदि वह उस सेना को काम पर नहीं लगाता तो भूखे और असन्तुष्ट सैनिक उसकी सल्तनत को ही खा जायेंगे। इसलिए वह देर-अबेर हम पर आक्रमण करेगा। फिर एक बात और ध्यान में रखने योग्य है : सल्तनतें जितनी सेनाओं पर निर्भर करती हैं। उतनी ही धन पर भी निर्भर करती हैं। इसलिए मुहम्मद तुग़लक को अपनी सेना और सल्तनत के लिए कहीं-न-कहीं से धन प्राप्त करना होगा। दक्षिणापथ पर उसकी गृद्ध-दृष्टि लगी हुई है, इसलिए मुझे यहीं रहकर उसकी प्रत्येक गति-विधि को सतर्कतापूर्वक देखते रहना होगा।'

'तो आप मुझे कावेरी की ओर क्यों भेज रहे हैं?'

'इसलिए कि मदुरा का हिसाब देर-अबेर आपको ही निपटाना है; महामंडलेश्वर और राजसंन्यासी का आप पर यह ऋण भी है।'

'लेकिन हमारे कावेरी की ओर जाने पर सुल्तान मुहम्मद यहाँ चढ़ आया, तो?'

'मैं तो हूँ ही, और कपाय नायक भी यहीं रहेंगे। इसी लिए मैंने इन्हें बुलाया है। कपाय नायक, सुनिए।'

'जी, आज्ञा कीजिए।'

'आप कृष्णाजी नायक के पास वारंगल चले जाइए। वहाँ जाकर उनसे मेरी ओर से यह कहिए कि गुजरात में तग़ी मोची है, मालवा में मर्दानखाँ है, देवगिरि में मेहर सुल्ताना है, वल्लरी और अमीर हसन है। बस, आपको इतना ही कहना है।'

'बस, इतना ही?'

'जी हाँ। इतने से ही वह सब समझ जायेंगे और जो करना होगा करेंगे। कपाय नायक, आप शूरवीर हैं, महारथी हैं, जल और थल के युद्धों में समान रूप से कुशल और विजयी योद्धा हैं। शूरवीर पांड्य नायकों का

रुधिर आपकी शिराओं में प्रवाहित है। विजयधमराज्य की पूर्व दिशा के खारे सागर को आपने अपने पराक्रम से मीठा किया है। दंडनायक और धर्मनायक के अधिकारों का समन्वय करनेवाली सामुराय-मुद्रा आप धारण करते हैं। परन्तु वारंगल पहुँचने और कृष्णाजी नायक को मेरा सन्देशा देने तक आपको अपने-आपको केवल सन्देशवाहक ही समझना होगा; और कृष्णाजी नायक के समयोचित आदेश आपको चाहे उचित न भी लगें तब भी आप उन्हें रायराया के अवसर (प्रतिनिधि) मानकर चलें।'

'जी !' लेकिन महामंत्री का यह आदेश कपाय नायक को अच्छा नहीं लगा।

महामंत्री से यह बात छिपी नहीं रही। उन्होंने मुस्कराकर कहा—कपाय नायक, मेरी यह बात भी गोभूरियों का पीछा न करने-जैसी ही है। समुद्र में तूफ़ान आने पर हम अपने-आपको आपके हाथों में सौंपकर निश्चिन्त हो जाते हैं। धरती के तूफान में आपको भी ऐसा ही करना होगा—ऐसे समय आपको हम पर पूरी श्रद्धा रखनी होगी। समुद्र पर तो शत्रु दूर से भी दिखाई दे जाता है, परन्तु धरती पर शत्रु घर के अन्दर हो तब भी दिखाई नहीं देता। वैसे पथ आपका और हमारा एक ही है, केवल लड़ने के ढंग भिन्न हैं।

'जी !' कपाय नायक ने कुछ आश्वस्त होकर कहा, 'बात तो आपकी सच है। जल में और समुद्र पर मैं स्वयं को जितना उन्मुक्त पाता हूँ थल पर मुझे उतना ही घिरा और घुटा हुआ-सा लगता है। आपका सन्देश मैं कृष्णाजी नायक को पहुँचा दूँगा और उसके बाद आपके आदेशानुसार ही आचरण करूँगा।'

'तो जाइए विजय-लाभ कीजिए।'

कपाय नायक के चले जाने के बाद रायराया ने कहा—विद्यारण्य, आप मुझे कावेरी-तट की ओर भेज तो रहे हैं और मैं वहाँ जाऊँगा भी, परन्तु वहाँ जाकर मुझे करना क्या होगा; और मान लीजिए कि मेरे जाने के पश्चात् मुहम्मद तुग़लक यहाँ आ धमका तो क्या होगा ?

क्षण-भर के लिए विद्यारण्य भी चिन्तातुर हो उठे। उनका चेहरा कुचले हुए भोजपत्र-जैसा हो गया। लेकिन दूसरे ही क्षण वह प्रकृतिस्थ हो गए और

बोले—राजन्, सुल्तान मुहम्मद के साथ अभी हम युद्ध करना नहीं चाहते, इसलिए वह आयेगा नहीं।

'क्या ऐसा हो भी सकेगा ?'

'हाँ, हो सकेगा और अवश्यमेव होगा। राजन्, विद्यारण्य को यदि महामंत्री बने रहना है तो ऐसा ही होना चाहिए।'

'ठीक है; अब मन में सन्देह हुआ भी तो उसका निवारण करना नहीं चाहूँगा। लेकिन इतना अवश्य पूछना चाहता हूँ कि जब हम यही नहीं जानते कि कब तुंगभद्रा के किनारे युद्ध की ज्वाला भड़क उठेगी तो आप मुझे मदुरा क्यों भेज रहे हैं ?'

'रायराया, सुल्तान मुहम्मद तुग़लक से देर-अबेर हमें लड़ना तो होगा ही, इसके बिना हमारी कोई गति नहीं है। फिर सुल्तान मुहम्मद है भी अतीव रणकुशल। उसने जितने भी युद्धों में भाग लिया सभी में विजयी हुआ है, पराजय उसकी कभी नहीं हुई। सरहिन्द से लेकर देवगिरि तक वह बराबर विजयी ही होता रहा है। लेकिन तुंगभद्रा के तट पर तो उसकी पराजय होनी ही चाहिए। यदि वह यहाँ पराजित नहीं हुआ तो कभी विजयधर्मराज्य और विजयनगर को चैन से बैठने न देगा और हमें धर्म, शास्त्र, वेद तथा उपवेदों का पुनरुद्धार भी नहीं करने देगा।'

'तब आप मुझे मदुरा की ओर क्यों भेज रहे हैं ?'

'जब सुल्तान मुहम्मद से युद्ध हो तो हमारे पिछाये में मदुरा नहीं होना चाहिए। मदुरा का सुल्तान विजयनगर की बढ़ती हुई शक्ति से घबराकर दिल्ली के सुल्तान और सूबों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करता जा रहा है। मदुरा के सुल्तान की शाहजादी का अभी हाल में मुहम्मद तुग़लक के साथ विवाह हुआ है। स्वयं मदुरा के सुल्तान ने बंगाल के नवाब और मलिक ग़ाज़ी अमीर हसन गंगू बहमनी की पुत्रियों के साथ विवाह किये हैं। मदुरा का सुल्तान गयासुद्दीन पूर्णतः प्रयत्नशील है कि दिल्ली के सुलतान और उसके अमीर-उमरावों के व्यक्तिगत हित मदुरा में अधिक-से-अधिक स्थापित हों। ऐसी स्थिति में पूरण कन्याली का सन्देश हमारे लिए अतीव महत्वपूर्ण हो जाता है। अब जैसे भी बने उसके सन्देश की जानकारी हमें

प्राप्त करनी होगी। क्योंकि आज के संयोगों में मदुरा का विनाश हमारा तात्कालिक धर्म और अवश्यम्भावी कर्त्तव्य है। इसी लिए आपको अविलम्ब मदुरा जाना चाहिए। आप वहाँ जाकर पड़ाव डालें और शंबूरराज वनवासी के जंगलों में रहनेवाले बीदरों एवं दामिल नायक का विध्वंस करें।

'जी, बहुत अच्छा!'

'यदि पूरण का सन्देश यह हो कि मदुरा के विनाश का अनुकूल अवसर आ गया है तो आक्रमण करके मदुरा को जीत लें; यदि सन्देश प्रतिकूल हो तो शंबूरराज और वनवासियों का दमन करके दोनों ओर के समुद्रों के साथ मदुरा का सम्बन्ध विच्छेद कर दें। रायराया, इतना अवश्य याद रखें कि मदुरा हमारे पीठ पीछे की कृपाण है और उसका विनाश करने में ही हमारा कल्याण और हमारी विजय है।'

'जी, बहुत अच्छा! लेकिन यदि बलदेव भी मदुरा जा रहा हो, तो?'

'कोई हानि नहीं। उसे सहर्ष वहाँ जाने दीजिए। उसका भी उपयोग किया जा सकेगा। कुछ लोगों के भाग्य में वैर-भाव से धर्म की सेवा करना लिखा होता है। बलदेव को भी ऐसा ही व्यक्ति समझ लीजिए।'

'तो क्या, विद्यारण्य, गोभूरी बलदेव सचमुच बचकर चला जायेगा? हमारे शासन का उपहास और हमारी उदारता का दुरुपयोग करके बलदेव चला ही जायेगा? और तब यह देखकर बहुजन समाज क्या कहेगा और क्या सोचेगा?'

'इस सम्बन्ध में आप निश्चिन्त रहें रायराया! बलदेव बड़ा ही अभिमानी व्यक्ति है। वह अपने को परमवीर और पुरुषार्थी समझता है। मैंने उसका भी उपाय सोच निकाला है। जब आप यहाँ से जायें तो योगीराज सिंगी को मेरे पास भेजते जाइए।'

'लेकिन वह तो बड़ा ही कायर है!'

'हाँ, कायर तो अवश्य है! गोभूरी, दोमार और देशद्रोही भी तो कायर ही होते हैं। जो धर्म के हेतु कष्टों और संकटों को सहन नहीं कर सकते वे कायर नहीं तो क्या हैं? जो त्याग नहीं कर सकते वे भी एक प्रकार से कायर

ही हैं। कायर का सामना कायर ही करेगा। आप योगीराज सिंगी को मेरे पास भेजते जाइए।'

१६. अमीर मलिक हसन बन्दी हुआ

मुहम्मद तुग़लक बड़ा ही विचित्र व्यक्ति था। जो उसे वृद्ध समझता उसके साथ वह युवकों की भाँति व्यवहार करता था; जो उसे युवक समझता उसके साथ प्रौढ़ों की तरह आचरण करता था। वह असाधारण विद्वान था, परन्तु उसकी विद्वत्ता विचित्र प्रकार की थी। खेल-कूद का वह बड़ा शौकीन था, लेकिन उसके खेल-कूद भी विचित्र प्रकार के होते थे। सल्तनत और सुल्तानियत (सुल्तानी) का उसे बड़ा अरमान था, मगर यह अरमान भी अजीब तरह का था। साहसी भी वह अप्रतिम था, परन्तु उसके सारे साहस-कार्य विचित्र प्रकार के हुआ करते थे। सभाओं का उसे बड़ा चाव था, परन्तु उसकी सभाएँ विचित्र ढंग की होती थीं। महफ़िल में, मित्रों और दरबारियों के साथ बैठकर, बातें करने में उसे खूब मजा आता था, परन्तु बातें उसकी सदैव अद्भुत होती थीं। खाने-खिलाने का उसे ग़ज़ब का शौक़ था, परन्तु उसका खाना और खिलाना दोनो ही विचित्र प्रकार के होते थे। कपड़े-लत्तों का उसका शौक़ जगजाहिर हो चुका था, परन्तु उसके कपड़े सदैव विचित्र प्रकार के होते थे। देखकर ऐसा लगता था मानो प्रकृति ने अपनी समस्त विचित्रताओं को जीता-जागता प्रश्न और उद्गार चिह्न बनाकर मनुष्यों के बीच में भेज दिया हो!

इस समय वह देवगिरि के बीबीमहल के अन्तःपुर में एक अन्तःरंग बैठक में बैठा हुआ था। इस महफ़िल में मेहर सुल्ताना थी, उसकी सहेली वल्लरी थी और वल्लरी का पति अमीर हसन भी था।

'बेगम!' मुहम्मद ने पूछा, 'क्या तुम गईं और क्या तुम लौट आईं? जानती ही हो कि माबदौलत की अजूबों में दिलचस्पी है और तुम्हारी बात वाक़ई अजीबोग़रीब थी!'

'मालिक!' मेहर सुल्ताना ने अर्ज़ की, 'मैं वहाँ गई तो थी, मगर जगह

मुझे पसन्द नहीं आई। उन्होंने किसी दरवेश को वहाँ दफनाया है। जगह क्या है खासा क़ब्रिस्तान है ! मेरा तो दिल दहल उठा। तरह-तरह के अन्देशे और खौफ़ तारी होने लगे।'

'ओ उल्लू की दुम फाख्ता !' मुहम्मद ने कहा,' बेगम आखिर वे-ग़म ही रही। यहाँ तो माबदौलत उम्मीदों के मीनारे बाँध रहे थे। क़यास यह था कि मग़रूर और नाफ़रमावरदार क़ाफ़िर तुम्हारा रास्ता रोकेंगे, तुम्हें गिरफ़्तार करेंगे। मगर क़ाफ़िर क़म्बख़्त इस मामले में पूरे क़ाफ़िर ही साबित हुए। औरतों के मामले में उनका दिल वाक़ई बड़ा कमज़ोर और कच्चा होता है। मगर ताज़्जुब तो यह है कि उन्होंने अमीर हसन को भी गिरफ़्तार नहीं किया !'

'हुज़ूर की अपनी बाँदी के बारे में उम्मीदें तो बड़ी बुलन्द हैं।' मेहर सुल्ताना ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा।

और अमीर हसन ने जवाब दिया—खाक़सार तो अपने आक़ा का नाचीज़ मगर जाँनिसार रज़ाकार है और कोई क़ाफ़िर उसे तब तक गिरफ़्तार नहीं कर सकता जब तक उसके कन्धों पर सिर सलामत है।

'मल्का, गुस्ताखी माफ़ हो, मगर आप हुज़ूर का इशारा समझी नहीं।' वल्लरी ने हँसकर कहा, 'मालिके मुअज़्ज़म का मन्शा तो ऐसा लगता है कि इस एक बेगम ने हुज़ूरआला को इतना दिक़ और परेशान कर रखा है कि अगर क़ाफ़िरों के हाथों गिरफ़्तार हो जाती तो आला हज़रत को गले लगी बला से नजात मिलती।'

सुल्तान मुहम्मद इस प्रकार ठठाकर हँस पड़ा मानो झाड़ी में छिपा शेर गुर्रा रहा हो और तब बोला—वाह भाई, वाह ! सुभान अल्लाह ! इसे कहते हैं औरत की अक़्ल ! वाक़ई अल्लाह ताला ने औरत को मर्द के दिल के अन्दर झाँकने की निगाहें इनायत कर रखी हैं ! बात बड़े पते की कही, मगर ओ बहमनी, एक बात तुम भी भूल ही गई !

'हुज़ूर बाँदी को माफ़ फ़रमायें और उस पर उसकी गलती को रोशन करें !'

'ग़लती यही कि अगर सुल्तान को गले पड़ी एक बला से निजात हासिल होती तो साथ ही दूसरी बला गले लग भी जाती।'

'उई अल्लाह ! क्या बाँदी जान सकती है कि हुज़ूर किस बला को गले लगाना चाहते थे ?'

'क्यों नहीं, क्यों नहीं ! बेगम, अगर तुम गिरफ़्तार हो जाती और जाँ-निसार खाकसार अमीर भी गिरफ़्तार हो जाता तो जानती हो कौन बचे रह जाते ? वैसी सूरत में बचे रह जाते मावदौलत और यह नाज़नीन वल्लरी। क्यों वल्लरी, अमीर की बेगम के बदले सुल्ताना बनना तुम्हें क़बूल होता या नहीं ?'

सुल्तान के इस परिहास को सुनकर वल्लरी और अमीर हसन के रोंगटे खड़े हो गए। बड़ा खौफ़नाक माज़क किया था मुहम्मद तुग़लक ने। उस झक्की आदमी की मुहब्बत और दिलबस्तगी का कोई ठिकाना नही था। जिस प्रकार टिड्डियों का दल अनायास ही कहीं उतर जाता है उसी प्रकार सुल्तान मुहम्मद का दिल किसी पर भी आ जाता था और उसे तबाह करके अगले मुकाम के लिए उड़ जाता था। उसके मन-पंछी ने जिन्दगी की मुसाफ़िरी में कितने घोसले आबाद किये और कितने उजाड़े उसका कोई हिसाब नहीं। वह खलीफ़ा से लेकर अपने माली तक अपने दिल को लगा चुका था।

समझदार मेहर ने सुल्तान को इस खौफ़नाक इरादे से हटाना ज़रूरी समझा। उसने कहा—हुज़ूर मालिक हैं अपनी बेगम के और अपनी बाँदी के भी; मगर सुल्तान सलामत के इरादे फ़िलहाल बर आ नहीं सकते, कुछ वक्त इन्तज़ार करना ज़रूरी है। वल्लरी को अनक़रीब ही अपने वालिद के यहाँ गुजरात जाना होगा।

'वह किस लिए ?'

'हुज़ूरेवाला, वल्लरी के जिस्मानी हालात इस समय ऐसे हैं कि उसे अपनी वालदा के पास होना चाहिए। बात असल में यह है कि अमीर हसन छोटे अमीर की अगवानी के इन्तज़ार में दिन गिन रहे हैं।

'ओ हो हो हो....' सुल्तान मुहम्मद जोर से हँस पड़ा और बोला, 'खूब !

बहुत खूब ? अमाँ हसन, मुबारकबाद !' लेकिन दूसरे ही क्षण वह ग़मगीन हो गया, 'तुम बड़े खुशक़िस्मत हो अमीर ! तुम्हारे दो बेगमें हैं और दोनो बेटेवालियाँ हैं। माबदौलत के सात बेगमें हैं, मगर एक भी बेटेवाली नहीं। अगर मेरे भी एक फ़रजन्द होता...लेकिन जैसी मालिक की मर्ज़ी !'

सुल्तान मुहम्मद का यह दुःख नया नहीं था। उसके कोई सन्तान नहीं थी और यह दुःख उसे हमेशा सालता रहता था। मेहर सुल्ताना ने उसका ध्यान बटाने के उद्देश्य से कहा—एक-न-एक दिन हुज़ूर की ये उम्मीदें भी बर आयेंगी; गो कि इसके लिए इन्तज़ार ज़रूर करना होगा।

'बेगम, तुम भूलती हो। माबदौलत की उम्मीदें बर तो नहीं आईं, मगर हम इन्तज़ार भी नहीं कर सकते। हमें उम्मीद तो यही थी कि क़ाफ़िर तुम्हें गिरफ़्तार कर लेंगे और अमीर हसन को हाथी के पाँव-तले दे देंगे।'

'लाहौल ! हुज़ूर यह क्या फरमा रहे हैं ? नाचीज़ ख़ाक़सार के लिए आला हज़रत की ये उम्मीदें ?' अमीर हसन सचमुच बौखला उठा था।

'उम्मीद न सही, अन्देशा कह लो ! अब तो खुश हुए ? वैसे सुल्तान और सल्तनत की खातिर हाथी के पाँव-तले भी होना पड़े तो बुरा क्या है ? यह तो हरएक अमीर का फ़र्ज़ और उसकी खुशक़िस्मती होनी चाहिए। लेकिन जो गुज़रा ही नहीं उसके लिए अफ़सोस कैसा ? हाँ, अगर ऐसा हुआ होता तो....तो....तो....'

'तो क्या ?' मेहर ने पूछा।

मेहर की ओर देखकर सुल्तान ने कहा—तो माबदौलत को दक्खिन पर चढ़ाई करने का बड़ा नायाब मौक़ा मिल जाता—अच्छा-खासा बहाना हाथ आ जाता। यों देखा जाये तो क़ाफ़िरों को सजा देने और कहीं भी हमला करने के लिए सुल्तान को किसी बहाने की दरकार नहीं होती। मगर जंग छेड़ने के लिए अमीरों और मलिकों को और फ़ौज को भी कोई कारण तो बताना ही होता है। फिर खलीफ़ा साहब के रूबरू भी जंग के लिए कैफ़ियत देनी पड़ती है और नामानिगारों को भी तो जंग का कोई कारण बताना होता है, वरना तवारीखों में वे क्या लिखें ? तुम गिरफ़्तार हो जाती तो माबदौलत को जंग का बहाना दस्तयाब हो जाता। इसी उम्मीद पर तो हमने यहाँ फ़ौजी

तैयारियों का हुक्म जारी कर दिया था ! तिब्बत पर चढ़ाई करने के लिए जितनी फौज़ दिल्ली और बंगाल में जमा थी सब को यहाँ बुला लिया था। बस बाज़ के मानिन्द हमारे दक्खिन पर झपटने की ही देर थी....

'दक्खिन के इन क़ाफ़िरों ने आसमान सिर पर उठा रखा है। इनकी रायरेखा और विजयधरम वग़ैरह-वग़ैरह के कारण मावदौलत के दुश्मनों की नाक में दम हो गया है। ये लोग खुलेआम बग़ावत पर उतर आये हैं। इनकी गुस्ताखियों के कारण सल्तनत मे कहीं अमन-चैन नही रहा। हमें बग़ावतों और बलवों को दबाने के लिए दिन-रात दौड़ना पड़ता है। कहीं-न-कहीं जंग होती ही रहती है। इन हालात से नाजायज़ फायदा उठकर सल्तनत के अन्दर के ग़द्दार और बाहर के मुग़ल और तातार कोई-न-कोई शिगूफा छोड़ते ही रहते हैं। सल्तनत की बहबूदी और तरक़्क़ी के लिए हमारे जितने भी इरादे और जितनी भी मुरादें थीं किसी को इन बेईमानों ने कामयाब नहीं होने दिया।

'हालात यहाँ तक बिगड़ चुके हैं कि आज हम यक़ीन नहीं कर पाते कि सुल्तान हिसामुद्दीन उर्फ़ खुशरूखाँ गुजराती को हमने मारा या वही कम्बख्त हमें मार गया ! सुल्तान अलाउद्दीन के ख़ज़ाने पर हमने उम्मीदों का जो पहाड़ खड़ा किया था वह आज धूल में मिल गया है क्योंकि खुदा ही जाने वह ख़ज़ाना कहाँ ग़ारत हो गया ! हीरे-जवाहरात तो दरकिनार हमें सोना-चाँदी भी नहीं मिला, इसलिए मज़बूरन चमड़े के सिक्के ज़ारी करने पड़े ! खैर, यह सब हुआ और दस बरसों के अर्से में हम इस क़ाबिल हुए कि विजय मजहबवाले क़ाफ़िरों की खबर ले सकें और कसम ख़ुदा कि हम इस क़दर उनकी खबर लेंगे कि वे सुल्तान अलाउद्दीन और मलिक काफ़ूर को भूल जायेंगे और हमारे मुक़ाबले में उन्हें हातिमताई समझेंगे।'

'क्या आपकी यह उम्मीद पूरी नहीं हुई ?' मेहर सुल्ताना ने कुछ तीखे स्वर में पूछा।

'नहीं ! मगर सबसे पहले तो तुम मुझे माफ़ करना बेगम ! तुम्हारे मरहूम वालिद की शान में मैं कुछ अल्फ़ाज़ बिना चाहे ही बोल गया हूँ। कभी-

कभी ऐसी बात मुँह से निकल ही जाती है। अब तो यह सब गुज़रे ज़माने की बात हो गई। तुम बुरा न मानना बेगम !'

'जी नहीं, खाविन्द की बात का बुरा मानकर बीवी जायेगी कहाँ? औरत के लिए खाविन्द खुदा और खुदा खाविन्द होता है! हुज़ूर के अल्फ़ाज़ का मैं बुरा क्यों मानने लगी?'

'बस, बस, बेगम! यही तो हम चाहते हैं। माबदौलत का तुम्हें यही फ़रमान है कि जब भी कभी हमारे मुँह से तुम्हारे वालिद मरहूम की शान में कोई बुरी बात निकल जाये तो तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिए। जो बात बीत चुकी, गुज़रे ज़माने की हो चुकी उसके लिए झगड़ा करना अक़्लमन्दी नहीं। हम नहीं चाहते कि हमारी बेगम ऐसी बेवक़ूफ़ी करे और कमअक्ल साबित हो। मुहम्मद अपनी खूबसूरत बेगम का खाविन्द भी है और इस सल्तनत का सुल्तान भी; और साथ ही वह खलीफ़ा का बन्दा भी है। उसके ऊपर हजारों वफ़ादारों की इज़्ज़त की ज़िम्मेवारी है, हज़ारों खाकसारों, जाँनिसारों और रज़ाकारों की रोज़ी की जवाबदारी है। उसका दिल फ़ौलाद का होना चाहिए, उसके हुक्म से क़हर बरपा होना चाहिए, उसकी आँखों में आतिश और बिजलियों की चमक होनी चाहिए, उसके हाथों में शमशेर—खून से सराबोर शमशेर होनी चाहिए। उसके महल के आगे बदतमीज़ों नाफ़रमाबरदारों और बाग़ियों को ज़मींदोस्त करने के लिए मतवाले हाथी खड़े होने चाहिए। अगर सुल्तान बाग़ियों को ज़मींदोस्त नहीं करता तो उसकी सल्तनत ही ज़मींदोस्त हो जायेगी। और माबदौलत हरगिज़ नहीं चाहते कि उनकी सल्तनत ज़मींदोस्त हो।

'हम तो चाहते हैं कि हमारी सल्तनत क़यामत तक क़ायम रहे, आबाद और खुशहाल रहे। हिमालय पर उगनेवाला खुरशैद ठेठ समन्दर तक हमारी रियासत पर अपनी निगाहे मुबारक डाल सके। मशरिक में उगनेवाला आफ़ताब मग़रिब तक की अपनी मुसाफ़री में हमारी सल्तनत पर ही चमकता रहे। यह हो सकता है बशर्ते कि बीच में विजय मज़हबवाले अड़े हुए न हों। क़सम खुदा की, इन क़ाफ़िरों का खात्मा करना ही होगा। इनके इलाक़े को ज़मींदोस्त करना होगा और जरूर किया जायेगा। बेगम, तिब्बत

को रौंदने के लिए जो फ़ौज तैयार की गई है उसे जरा आ तो जाने दो। फिर माबदौलत सुल्तान मुहम्मद एक लाख घोड़े और दस लाख ज़ाँनिसारों के साथ दक्खिन पर चढ़ दौड़ेगा और उसकी फ़ौज वहाँ के आसमान पर छा जायेगी और वहाँ जंग में लहू के दरिया बहने लगेंगे और उनमें विजय मज़हबवालों के मन्दिर और मूरतें, शास्तर, पुराण और पोथियाँ सभी कुछ बह जायेगा।'

'इंशा अल्लाह, मालिक ! खुदा आपकी उम्मीदों और अरमानों को पूरा करे।' मेहर ने खड़े होते हुए कहा, 'ग़ज़ब की गर्मी है। हुक्म हो तो शरबत बना लाऊँ ? काश्मीरी अंगूर या बंगाली अनार का शरबत, जो भी मेरे आक़ा को पसन्द हो। हुजूर, यह बाँदी शरबत बना लाने की इजाज़त चाहती है। साथ ही अर्ज़ गुजारिश करती है कि वल्लरी को उसके वालिद मलिक रहमान के पास गुजरात जाने की इजाज़त बख्शी जाये।'

'इजाज़त है, इजाज़त है।' मुहम्मद ने कहा, 'वाक़ई गर्मी बहुत है। हम शरबत जरूर पीयेंगे।'

मेहर और वल्लरी सुल्तान को कोरनिश बजाकर अन्दर चली गईं।

उनके जाने के बाद सुल्तान मुहम्मद ने हँसकर हसन से कहा—क्यों अमीर, औरतों से गुफ़्तगू करने में कभी-कभी बड़ा लुत्फ़ आता है। क्यों, आता है न ?

अमीर हसन ने कोरनिश बजाकर कहा—खाक़सार को क्या पता ? यहाँ तो बीवी से बातें करने का मौक़ा ही नहीं मिलता।

'अच्छा ?'

'मलिकों और अमीरों के आपसी झगड़ों के मारे दम मारने को फ़ुर्सत नहीं मिलती। ऐसे में हुज़ूर ही बतायें कि बीवी से बातें कब की जायें ?'

'दुरुस्त है, बिलकुल दुरुस्त ! अमीरों और मलिकों के झगड़ों से तो अब माबदौलत भी तंग आ गए हैं। लेकिन चारा ही क्या है ?'

'खाक़सार को मशविरा देने की इजाज़त हो तो वह यही तजवीज़ करेगा कि तमाम मलिकों को फ़ौज में भरती करके तिब्बत रवाना कर दिया जाये।'

'मलिक तो तुम भी हो।'

'आक़ा का हुक्म हो तो मैं सबसे पहले जाऊँ। ख़ाक़सार का तो काम ही है सुल्तान के नाम पर फ़ना हो जाना—फिर वह यहाँ हो या तिब्बत में, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। परन्तु आक़ा के हुज़ूर में एक अर्ज़ गुज़ारिश करने की इजाज़त ज़रूर चाहता हूँ : आला हज़रत सुल्तान को अपने बाग़ीचे का एक भी पौधा अलग नहीं करना चाहिए।'

'अलग करने की अभी बात ही कहाँ है ? अभी तो हम सबको दक्खिन पर चढ़ाई करनी है और उस चढ़ाई में क्या मलिक और क्या ज़ाँनिसार और क्या ख़ाक़सार-रज़ाकार सभी को साथ चलना होगा।'

'तो कूच का डंका कब बजनेवाला है ? या इसके लिए आला हज़रत को हाकिमे बाग़वान से मशविरा करना होगा ?'

मुहम्मद की आँखों के कोने लाल हो गए। वह बोला—क्यों बे अमीर के बच्चे ! क्या माबदौलत सुल्तान अपने बाग़वान को हाक़िम नहीं बना सकते ? माबदौलत चाहें तो मोची को अमीरे हाज़री और कुश्ती लड़नेवाले पहलवान को अमीरे सद्र बना सकते हैं। तू खुद अपनी पुरानी हैसियत और औक़ात को क्यों भूलता है ? आदमी कुछ नहीं, सुल्तान सब-कुछ है !

'बन्दानवाज़, ख़ाक़सार के कहने का यह मन्शा हरगिज़ नहीं था। सरकार आली को एतराज़ हो तो ख़ाक़सार क़दमबोसी करता है और माफ़ी माँगता है।'

'जाओ इस बार माफ़ फ़रमाया। मगर ख़बरदार, आगे कभी माबदौलत को इस बात की भनक भी नहीं पड़नी चाहिए, वरना सिर कलम कर दिया जायेगा। ऐ अमीर हसन, इस बात को फिर अच्छी तरह समझ ले कि आदमी कुछ नहीं, सुल्तान सब-कुछ है।

'अमीर !' अन्दर से मेहर ने पुकारा और अमीर सुल्तान को कोरनिश बजाकर भीतर दौड़ गया।

सुल्तान देर तक अकेला अपने-आपसे उलझा बैठा रहा। कभी उसकी भौंहें आकुंचित हो जाती थीं और कभी वह मुस्कराने लगता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह मन-ही-मन तर्क-वितर्क कर रहा हो ! फिर वह

उठकर खड़ा हो गया और जोर से बोला—इतने सोच-विचार और ज़द्दो-जहद की ज़रूरत ही क्या ? मैदाने जंग में जब भी मुहम्मद गया है फ़तह ने उसके पाँव चूमे हैं। माबदौलत की सल्तनत भले ही बदबख़्त हो, मगर तक़दीर तो बुलन्दबख़्त ही रही है।

सहसा बाहर कोलाहल सुनाई दिया और देवगिरि का नया हाक़िम सुल्तान के बाग का माली पीरू अन्दर आया।

'मालिक....मालिक....आला हज़रत....आला हज़रत...' वह बड़ी मुश्किल से बोल पा रहा था।

'क्या बात है ?' मुहम्मद ने पूछा।

'मलिक रहमान तग़ी ने गुजरात में बग़ावत कर दी है। भड़ौच पर उसने क़ब्ज़ा कर लिया है। तिब्बतवाली फ़ौज उसके साथ जा मिली है !'

एक क्षण तो सुल्तान सन्न रह गया, उसकी उम्मीदों का पूरा महल ही जैसे ढह गया, चेहरा बिल्कुल रुई की तरह सफेद-फक् हो गया।

मलिक रहमान तग़ी ने बगावत कर दी ? अगर मलिक रहमान तग़ी-जैसा अमीर बग़ावत कर सकता है तो इस दुनिया में एतबार किस पर किया जाये ? और तिब्बत की फ़ौज भी उससे जा मिली ? खुद देवगिरि में बैठा है और गुजरात में बलवा हो गया ? तब तो मालवा के लिए भी खतरा पैदा हुआ समझना चाहिए। अब दिल्ली भी क्या सलामत रहने पायेगी ? उसे सारी सल्तनत ही ढहती दिखाई दी।

मारे क्रोध के वह आगबबूला हो गया। ऐसी बुरी ख़बर उसके पास आ ही कैसे सकती है ? क्या खबर लानेवाला जानता नहीं कि उसने बुरी ख़बर सुनाकर सुल्तान सलामत के सारे इरादों को चौपट कर दिया है ? कौन है यह कम्बख़्त ख़बर लानेवाला ?

वह ज़ोर से पुकार उठा—कोई हाज़िर है ?

दो सैनिक अन्दर दौड़े आये—हुक़्म हुज़ूर ! खाक़सार हाज़िर हैं।

'ले जाओ देवगिरि का हाकिम बने हुए इस सूबा को ! और इसी दम हाथी के पाँव-तले डलवा दो। और ऐलान कर दो कि सुल्तान सलामत को बुरी खबर सुनानेवाले का यही हश्र होता है।'

भय और विस्मय से विमूढ़ देवगिरि के हाकिम को सन्तरी पकड़ कर ले चले !

सुल्तान वहीं-का-वहीं सिर पर हाथ देकर इस तरह बैठ गया मानो जिन्दगी ही हार गया हो। उसे अपनी उम्मीदों के खण्डहर में से बाहर आने का कोई रास्ता नहीं दिखाई दे रहा था।

इतने में अमीर हसन शरबत का जाम लेकर आया। मेहर सुल्ताना उसके पीछे-पीछे थी।

'सब्र कीजिए सुल्तान सलामत, सब्र कीजिए। शरबते अनार का यह जाम पीजिए। हुज़ूर के ख़ाक़सार और रज़ाकार हाज़िर हैं। हुक्म मिलते ही फ़ना हो जायेंगे। सल्तनत की बाज़ी कभी चित भी गिरती है और कभी पट भी, इसके लिए इतनी फ़िक्र और बेचैनी क्यों? हुज़ूर का हुक्म उठाने के लिए लाखों ख़ादिम हाज़िर हैं, तो फिर तग़ी मोची की हैसियत ही क्या, बिसात ही कितनी? मालिक, मेरे आक़ा, मेरे सुल्तान, शरबत के इस जाम को नोश फ़रमाइए।'

व्यग्र, विह्वल और हताश सुल्तान ने कहा—अब तो तग़ी मोची के ख़ून के शरबत का ही जाम पीयूँगा। हसन, यह शरबत तुम्हीं पी जाओ। तुम्हारा सुल्तान इजाज़त देता है, पी जाओ!

अमीर के चेहरे पर जैसे काली घटाएँ छा गईं। नेत्र कातर हो उठे। यह देखते ही सुल्तान का माथा ठनका। उसने सिर हिलाते हुए कहा—लाहौल बिला कूवत इल्ला-ब-इल्लाह; हम समझते कुछ थे और माजरा कुछ और ही था। हमारा ख़याल था कि हम सबको माफ़ी बख़्शते हैं और दूसरों का खयाल था कि उन्होंने मक्खी को मकड़ी के जाले में फँसाया है। मगर अब माबदौलत पर सब-कुछ रोशन हो गया—अलाउद्दीन खिलजी का गुमशुदा ख़ज़ाना...ख़ुशरू ख़ाँ गुजराती....उसकी दुख़्तर मेहर सुल्ताना...उसका अज़ीज़ और दोस्त रहमान तग़ी...तग़ी की बेटी वल्लरी...वल्लरी का पहला ख़ाविन्द गंगू बहमनी...गंगू बहमनी का गुलाम हसन...वल्लरी का दूसरी बार का ख़ाविन्द हसन...रहमान का जमादार...अमीर हसन—सब-कुछ माबदौलत पर रोशन हो गया। अच्छा बेगम, यह शरबते अनार तुम पी जाओ!

शराब और मेरा इश्के चिराग़ है, जिसकी मुहब्बत समन्दर से भी वसीह और अथाह और सीमातीत है, उसी पर मैंने सन्देह किया....

सुल्तान को इतनी आत्मग्लानि हो रही थी कि वह आँखें उठाकर मेहर सुल्ताना की ओर देखने का साहस भी अपने अन्दर बटोर न पाया। यही सोचकर सिर धुनता रहा कि कहाँ तो बेगम का इतना सीमातीत प्यार और कहाँ मेरा क्षुद्रातिक्षुद्र सन्देह !

किस दावे से वह बेगम की ओर देखता, उसकी आँखों से आँखें मिलाता ? बड़ी देर तक आँखें झुकाये वह खड़ा रहा और तब उसने अमीर मलिक हसन की ओर देखा और देखता ही रह गया।

अमीर हसन का चेहरा राख की तरह बदरंग हो गया था। उसके कपाल पर पसीने की बूँदें छलक आई थीं। उसकी आँखें भय और आतंक के कारण स्थिर हो गई थीं। उसे देखकर ऐसा लगता था मानो हरिण ने अपने सामने वनराज केसरी को देख लिया हो !

और सुल्तान का पश्चात्ताप, और आत्मग्लानि गरम तवे पर पड़ी पानी की बूँद की भाँति उड़ गए। वह एक-एक कदम चलता हुआ अमीर हसन के सामने आ खड़ा हुआ और उसकी आँखों से निकलती ज्वालाएँ अमीर के मन-प्राण को जलाने लगीं।

'माफ़ी मेरे आक़ा, माफ़ी ! ग़ुलाम की जान बख्शी जाये। खाक़सार का कोई कसूर, कोई गुनाह नहीं !'

लेकिन सुल्तान ने बदले में कुछ भी नहीं कहा। वह उसी प्रकार अमीर को घूरता रहा।

'मैं...मैं...मैं....बेगम साहिबा...मैं नहीं...माफ़ी...जान बख्शी...'

'क़दीमी ग़ुलाम जो ठहरा !' मेहर ने कहा, 'जहाज़ सलामत था तो उस पर सातों समन्दरों की मुसाफ़री के मनसूबे कर रहा था, मगर जैसे ही एक सूराख दिखाई दिया, जान के लाले पड़ गए ! भागने को आमादा हो गया ?' मेहर चार क़दम आगे बढ़ आई और कहने लगी, 'मगर तेरा भी क्या कसूर ? तेरे ईमान और मज़हब की तो किसी ने बेइज़्ज़ती की नहीं थी ! तेरे बाप के साथ तो किसी ने दग़ा किया नहीं था ! तेरे वतन को तो

किसी ने बरबाद किया नहीं था। जा, ओ बुज़दिल, चला जा ! बचा सकता है तो भागकर अपनी जान बचा। जहाज़ को टक्कर लगी है। खुदा की अगर यही मरज़ी है तो हमारा क्या बस—तू और मैं कर ही क्या सकते हैं ? भाग, और अपनी जान बचा !'

'बेगम !' अपने सन्देहों को इस रूप में सत्य होते देख सुल्तान सिर से पाँव तक काँप उठा और चिल्ला उठा, 'बेगम ! तुम ?'

'हाँ, मैं ! मैं किसी की बेगम नहीं हूँ सुल्तान ! जिसकी बेगम थी वह बेमौत मारा गया, बुरे हालों मौत के घाट उतारा गया; मैं बेगम नहीं वारिस हूँ उस मौत के बदले की ! जिसकी दुख़्तर थी उसके साथ दग़ा की गई और उस दग़ा का दग़ा से जवाब देने के लिए फ़रेब और आसेब बनकर मैं तेरे हरम में आई थी। सुल्तान, ओ दग़ाबाज़ और बेईमान सुल्तान, ओ यार-मार सुल्तान, क्या अकेले तुझी को दग़ाबाज़ी करना आता है और दूसरे दग़ा नहीं कर सकते ? क्या अकेले तुझी को दोस्ती का दावा करके ईमान बेचना और पीठ में छुरा भोंकना आता है और दूसरों को नहीं आता ? मैंने अपना यह नापाक जिस्म तेरे हवाले किया, तेरी पलंगगीर हुई, महज़ तुझे यह समझाने के लिए कि सियासत से लेकर यारमारी तक जितनी भी शतरंज है उसे अकेला नहीं खेला जा सकता, हमेशा दो को मिलकर खेलना पड़ता है। ओ धोखेबाज़ सुल्तान, आज से तू किसी पर यक़ीन और एतबार नहीं कर सकेगा; तेरा अज़ीज़-से-अज़ीज़ दोस्त और प्यारा-से-प्यारा सगा भी तुझे आस्तीन का साँप दिखाई देगा। कोई ऐसा न होगा जिस पर तू ज़रा-सा भी भरोसा कर सकेगा ! हज़ारों और लाखों इन्सानों के बीच तू बिल्कुल अकेला और बेसहारा बनकर रहेगा....

'बेगम ! बेगम !'

'अरे ओ बे-ग़म ! मैं कभी तेरी बेगम थी ही नहीं। रात-दिन, सोते-जागते मैं तो तेरी बला और तेरी कज़ा थी। जिसके वतन को तूने पामाल किया, जिसके वालिद और खाविन्द को मौत के घाट उतारा वह औरत तेरी मुहब्बत कैसे हो सकती थी ? वह तो तेरी कज़ा ही हो सकती थी। मगर अपनी दानिशमन्दी और इल्म के घमण्ड में यह अदना-सी बात कभी तेरे

ज़मीर में नहीं आई। ओ नासमझ, मैं तेरी महबूबा नहीं, तेरी मौत थी। इत्तफाक़ की ही बात है कि तू सँभल गया, होशियार हो गया और तेरे बदले जहर का जाम मुझे पीना पड़ा। मगर इसके लिए मुझे ज़रा भी अफ़सोस नहीं क्योंकि आज की घड़ी से तू कभी भी कोई भी शरबत, कोई भी जाम पी न सकेगा, चैन से दो निवाले धान भी न खा सकेगा। यहाँ तक कि चैन से कहीं बैठ और सो भी न सकेगा! बेचैनी और डर तेरे ऊपर हावी होंगे, खतरा तेरे सर पर मँडराता रहेगा। बेशुमार दौलत के बीच तू भूखा और कंगाल होकर रहेगा। लाखों इन्सानों की भीड़ में भी तू अकेला, डरा और घबराया हुआ रहेगा! तेरी मौत कुत्ते की मौत से भी बदतर होगी! समझदार और आलिम होते हुए भी तू पागल करार दिया जायेगा; फ़ैयाज़ होते हुए भी तुझे कंजूस समझा जायेगा; बहादुर होते हुए भी लोग तुझे डरपोक और बुज़दिल कहेंगे और ऐसे ही बदहालों तेरी मौत होगी....'

और मुहम्मद सोच रहा था, क्या यह वही नारी है जिसका हृदय प्रेम से लबालब भरा हुआ था! जिसके पिता को मैंने विश्वासघात से मारा, पर फिर भी जिसके प्रेम में अन्तराय न हुआ! जिसके पति का मैंने निर्ममतापूर्वक वध किया, परन्तु फिर भी जो मुझे उसी उत्कटता से प्रेम करती रही। और आज वही साक्षात् चंडिका बनी सामने खड़ी है! जिसकी मुहब्बत के लिए मैंने सब-कुछ कुरबान कर दिया, वह इस तरह बदला चुकाये? क्या खुदा के घर से न्याय उठ ही गया है? वह चीत्कार कर उठा—मेहर, मेहर! बेगम तू ने यह क्या किया?

'ओ बेवकूफ़, मैंने जो किया ठीक ही किया! क्या तूने मुझे इतनी ज़लील और गया-गुजरा समझ लिया था कि मैं अपने बाप के क़ातिल को माफ़ कर दूँगी और रो-धोकर उसकी पलंगगीर हो रहूँगी? यदि तूने ऐसा समझा तो वह तेरा मुग़ालता था। माना कि हम अछूत थे, हिन्दू धर्म में हमारे लिए इज़्ज़त की कोई जगह नहीं थी। तो क्या तूने इसी लिए मुझे इतना बेग़ैरत और हेठा मान लिया था कि अपने मुल्क की बरबादी और वतन की तबाही पर चुप हो रहूँगी? क्या तू भूल गया कि मेरे वालिद मरहूम ने अलाउद्दीन खिलजी-जैसे बादशाह से बदला चुकाया था, अकेले उसी को क़त्ल नहीं किया,

उसके सारे खानदान का नामोनिशान मिटा दिया और उसकी बेगमों को दिल्ली में सरे बाजार नीलाम किया ? मैं उसी बाप की बेटी हूँ। काली नागिन हूँ। क्या मैं बदला न चुकाती, इन्तक़ाम न लेती ? यह ज़हर मैंने खुशी से पी लिया, मगर तेरी जिन्दगी में भी जहर घोले जाती हूँ। याद रख, दक्खिन कभी तेरे हाथ आने का नहीं। गुजरात में बग़ावत के शोले भड़क रहे है, कल मालवा में भी बलवा होगा, बंगाल दंगाइयों के क़ब्ज़े में चला जायेगा, तिब्बत और चीन को सर करने के लिए जमा की हुई तेरी फ़ौज हिमालय में गल जायेगी, तू हाथ मलता रह जायेगा ! ओ क़ातिल, मैं तेरी कज़ा बनकर आई थी और सजा बनकर जा रही हूँ। अच्छा, आलैकुम सलाम...'

मेहर का चेहरा विकृत हो गया। सुल्तान किंकर्त्तव्यविमूढ़ खड़ा था। उसके मन में क्रोध का दावानल सुलग रहा था, परन्तु अपने उस आन्तरिक रोष को व्यक्त करने का कोई मार्ग उसे सुझाई नहीं दे रहा था। वह चुप खड़ा मेहर की ओर देखता रहा और देखता ही रहा।

अब मेहर ने अमीर हसन की ओर देखा। वह पसीने में सराबोर हो उठा था। मेहर का विकृत चेहरा और भी ऐंठ गया। लड़खड़ाती हुई वह धम्-से नीचे बैठ गई और हाँफती हुई बोली—नजात न मेरे लिए है और ओ अमीर, न तेरे लिए। जानता है, सुल्तान मेरे साथ क्या सलूक करेगा ? वह तुझे हाथी के पाँव-तले दे देगा। यही है सुल्तान का इन्साफ़। पर मैं तो चली....पिताजी, पिताजी, मैं आ रही हूँ; तुम्हारी पुत्री आ रही है पिताजी ! राम...रा...म...

और मेहर वहीं ढेर हो गई। प्राण-पखेरू उड़ गए, शव पड़ा रह गया। हलाहल विष के प्रभाव के कारण उसकी आँख, नाक और कान से काला लहू बहने लगा।

सुल्तान थोड़ी देर तक मेहर सुल्ताना के शव की ओर देखता रहा। फिर वह अमीर हसन की ओर बढ़ा और उसके सामने आकर खड़ा हो गया। एक क्षण अमीर की आँखों में आँखें डालकर देखता रहा और फिर कसकर एक तमाचा उसे रसीद किया और ज़ोर से पुकार उठा—कोई है !

'जी हुज़ूर !' दो जाँनिसार तत्काल दौड़े आये।

'इसे कालकोठरी में बन्द कर दो। अमीर हसन, तुझे हाथी के पाँव-तले नहीं कुचला जायेगा। वह सजा तो तेरे लिए नियामत हो जायेगी। ले जाओ इस क़ाफ़िर को और डाल दो कालकोठरी में! और देवगिरि के हाकिम को माबदौलत के पास भेजो।'

'जी, हुजूर का हुक्म तो उन्हें हाथी के पाँव-तले देने का था औ...औ...

'और वह हाथी के पाँव-तले दे दिया गया, यही न? तो इसमें इतना बदहवास होने की क्या बात है? तूने माबदौलत के हुक्म को ईमानदारी से अंजाम दिया है। मेरा नाम क्या है?'

'जी, गुलाम लछ्न माली का....हुजूर, वह मेरे वालिद होते हैं।'

'अच्छा! अमीर-उमराव हमने सब देख लिये, अब माली को देखेंगे। जा, आज से तू देवगिरि का हाकिम बनाया जाता है। सब अमीरों को क़ैद कर ले, और फ़ौज को गुजरात की ओर कूच करने का हुक्म दे। हम, आलमगीर सुल्तान मुहम्मद तुग़लक उस तग़ी मोची के बच्चे को भी समझ लेंगे। सिपाहियो, ले जाओ इस क़ाफ़िर को।'

'जी हुज़ूर!'

'जाओ!'

'लछ्न चला गया।

उसके जाते ही सुल्तान ने पुकारा—लछ्न!

'जी हुज़ूर!'

'इस बदज़ात अमीर की औरत वल्लरी को भी गिरफ़्तार कर ले।'

'हुज़ूर, वह तो गुजरात कूच कर गई।'

'कूच कर गई? कब और किसके हुक़्म से?'

'थोड़ी ही देर हुई हुजूर! खुद जहाँपनाह सुल्तान सलामत के सफेद अरबी घोड़े होरमज़ पर सवार होकर चली गई। हाकिम साहब गिरफ़्तार हो चुके थे, नये हाकिम की तैनाती नहीं हुई थी। और न हुज़ूर का कोई फ़रमान ही था; फिर वह बेगम साहिबा की चहेती सहेली भी थी।'

'किसी ने उसे रोका नहीं?'

'जी नहीं हुजूर, किसी ने भी नहीं रोका।

'सब नालायक हैं; सब हरामज़ादे हैं ! सब ने ईमान बेच खाया है ! सब एहसान-फ़रामोश हैं। लछन, सब को गिरफ़्तार कर ले ! किसी को मत छोड़ना। सब को पकड़कर गुजरात के मोरचे पर भेज दिया जाये। वहाँ.... वहाँ....' सात दिनों के भूखे सिंह की भाँति तड़पकर सुल्तान मुहम्मद ने कहा, 'वहाँ पाटन में तग़ी मोची, मलिक रहमान और तिब्बत की फ़ौज के सर-मनसबदार मलिक फ़ीरोज़ज़ादा ज़ालोरी के साथ उनका भी इन्साफ़ किया जायेगा।'

'जो हुक्म हुज़ूर का।'

'जाओ।'

कोरनिश बजाकर देवगिरि का नया हाकिम वहाँ से चला गया।

सुल्तान मेहर के शव के निकट आकर खड़ा हो गया और बड़ी देर तक उसकी ओर टक लगाकर देखता रहा, फिर बोला—मेरी मुहब्बत का तूने यह जवाब दिया मेहर ? ओ क़ातिल, मरकर भी तू कितनी खूबसूरत और कितनी प्यारी लग रही है ? तेरी यह शोखी और यह गुस्सा क़यामत तक बने रहें, इसलिए मैं तेरी रूह को कभी चैन से न रहने दूँगा। क़यामत के दिन इसी शोखी और इसी गुस्से से तू मेरा दामन थामना और अल्लाहताला से इन्साफ की माँग करना। और इसी लिए मैं तेरी लाश पर, तेरी रूह के रूबरू कसम खाता हूँ कि जिस विजयनगर रियासत की तू हामी थी उसे शतरंज की बिसात के मानिन्द उलट दूँगा। मेरे पिछाये का मोरचा सही-सलामत रहे इसलिए गुजरात को, तेरे मादरे वतन को इस तरह चीर-फाड़कर रख दूँगा जिस तरह बाज़ परिन्दे को नोच डालता है। सुनती हो मेहर, तुम्हारे गुजरात और तुम्हारे विजयनगरराज्य को माबदौलत इस तरह मिटा देंगे जिस तरह बालू पर लिखे हरूफ़ों को हवा का झपट्टा मिटा देता है। क़सम खुदा की मेहर, हम तेरी रूह को क़यामत तक भी चैन न लेने देंगे। ओ दिलरूबा, ओ क़ातिल, क़यामत के दिन भी तू इतनी ही शोखी और इतने ही गुस्से से इसी तरह ज़हर का जाम भरकर आना....मौत में भी तू कितनी

दिलकश और महबूब लग रही है मेहर....ओ मेरे खुदा, कितनी प्यारी और हसीन !

और फिर वह मेहर की लाश पर गिर पड़ा और ज़ोर से सिसककर बोला—या अल्लाह, अगर इन्सान को अपनी बीवी से भी ईमान और एतबार न मिले तो कहाँ मिलेगा ? तब किस पर वह यक़ीन करेगा ?

२० : पुत्र और पिता

हरिगोल में लम्बी और दूर की यात्रा करने को बलदेव और पूरण कन्याली दोनो में से कोई भी तैयार नहीं था। सामान्य नावों की अपेक्षा हरिगोल थी ही कुछ भिन्न प्रकार की। यह बेत के ढाँचे पर चमड़ा मढ़कर बनाई गई थी। इसकी चाल और गति भी निराली थी। थोड़ी-थोड़ी देर में अन्दर पानी आ जाता था। अब वे पानी उलीचें अथवा डाँड़ें चलायें ?

और डाँड़ चलाना सरल काम तो होता नहीं, इसके लिए कड़े परिश्रम, प्रयत्न और अनुभव की आवश्यकता होती है। पानी में डाँड़ कभी बिलकुल हलके प्रतीत होते हैं तो कभी एकदम भारी। भारी समझकर जोर लगाने जायें तो इतने हलके हो जाते हैं कि अपने ही जोर से आदमी उलटकर नदी में जा गिरे ! और हलके समझकर जोर न लगायें तो इतने भारी हो जाते हैं कि आदमी के स्नायु और रग-पुट्ठे ही उतर जायें !

बलदेव और पूरण कन्याली दूसरी सब बातों में बड़े ही चतुर और योग्य थे, परन्तु डाँड़ें चलाने की कला में निपट कोरे थे। डाँड़ों के गुण-स्वभाव के बारे में उन्हें कुछ भी मालूम न था। इसलिए कभी उनकी हरिगोल चक्कर खा जाती तो कभी बलदेव या पूरण कन्याली उछलकर नदी में जा गिरते थे। बार-बार उनकी छाती में डाँड़ों के हत्थे आ-आकर जोर से टकराते थे और प्रायः ही उनके हाथों को झटके लगते थे। कभी उनकी हरिगोल आगे की ओर जोर करती थी तो कभी पीछे की ओर।

अन्त में उन्होंने पाल खोल दिया। परन्तु पाल को कब और कैसे खोलना चाहिए, उसके दोनो छोरों को कहाँ और कैसे बाँधना चाहिए आदि बातों

की उन्हें कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए हुआ यह कि खोले जाते ही पाल हवा में पताका की भाँति फरफराने लगा और हवा के तेज झपट्टों से चिर-कर चिन्दे-चिन्दे हो गया।

जब सब-कुछ करके वे हार गए तो उन्होंने हरिगोल को भाग्य-भरोसे छोड़ दिया। धारा का अनुकूल प्रवाह पाकर हरिगोल तेजी से नीचे की ओर को बह चली। बहते-बहते तुंगभद्रा के दक्षिणी तट पर छिछली जगह जा टकराई और दलदल में फँस गई।

बलदेव और पूरण पानी में कूदे तो घुटनों तक कीचड़ में फँस गए। वहाँ से निकले और तटवर्ती बालू को खूँदते हुए किनारे पर चढ़ आये।

किनारे पर आकर बलदेव ने कहा—पूरण, तुम्हें मेरी आवश्यकता हो या न हो, पर मुझे तो तुम्हारी आवश्यकता है। तुमसे इतना अवश्य कहे देता हूँ कि दक्षिणापथ की ओर जाने का जरा भी प्रयत्न मत करना। तुम वहाँ के चोर हो और पकड़े गए तो वे लोग तुम्हारी गरदन मार देंगे। इसलिए सीधे-सीधे मदुरा चले चलो। तुम्हारे लिए अपने प्राणों का मूल्य हो या न हो, लेकिन मदुरा पहुँचने तक मेरे निकट तुम्हारे प्राणों का बड़ा मूल्य है। वैसे मैं बड़ा सीधा, और निरापद मनुष्य हूँ, परन्तु साथ ही सन्देहशील और बहुत बुरा भी हूँ। यदि तुमने भागने का प्रयत्न किया तो सच मानो, मैं तुम्हारा गला घोंट दूँगा।

और यह कहते ही बलदेव ने लपककर पूरण की गरदन पकड़ ली और इतने जोर से दबाई कि उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया, दम घुटने लगा और मुँह में फेन भर आया।

बलदेव ने एक खोखली हँसी हँसकर पूरण की गरदन छोड़ दी। वह अपने हाथों को यन्त्रवत उठाकर गरदन को सहलाने लगा। साँस उसकी अब भी तेज चल रही थी।

बलदेव ने बिलकुल स्वाभाविक स्वर में, मानो कुछ हुआ ही नहीं इस प्रकार कहा—बात यह है महाराज, कि जहाँ आपके लिए संकट है वहीं मेरे लिए भी संकट है। जहाँ आपको जाना है वहीं मुझे भी जाना है। इसलिए अगर आपने भागने का प्रयत्न किया....

और उसने पुनः अपने मजबूत पंजों की ओर देखा और कहा—बस, अपना तो यही कहना है महाराज !

पूरण ने भी बलदेव के उन मजबूत पंजों को देखा और उसे अपना गला घुटता हुआ प्रतीत हुआ। बलदेव के ओठ हँस रहे थे—व्यंग्य और तिरस्कार की वक्र हँसी; परन्तु उसके नेत्रों में मुस्कराहट नहीं तलवार की इस्पाती नीली धार कौंध रही थी, जो रक्त की प्यासी होती है। पूरण ने बलदेव की आँखों में उस इस्पाती नीली धार को देखा और उसके रोंगटे खड़े हो गए, तन-बदन से पसीना छूटने लगा और हृदय की धड़कन तेज़ हो गई।

'चलो, सूरज चढ़ रहा है, हमें काफी दूर जाना है, तेजी से कदम बढ़ाते चलो।' बलदेव ने पूरण का हाथ पकड़ा और उसे घसीटता हुआ ले चला।

'अरे कुमार,' पूरण ने विरोध प्रदर्शित करते हुए कहा, 'शौच, दन्तधावन, स्नान आदि भी करने दोगे या नहीं ?'

'शौच की बात तो ठीक है; इसे रोका नहीं जा सकता। जंगल की राह होकर ही हम जायेंगे, सो तुम जंगल में ही कहीं निवृत्त हो लेना। लेकिन स्नान और दन्तधावन तो अब मदुरा पहुँचने के बाद ही हो सकेगा।'

'आप भी कुमार, बड़े विचित्र व्यक्ति हैं। मनुष्य पर विश्वास करना तो जैसे जानते ही नहीं। मैंने आपको वचन दिया है कि मदुरा ही जाऊँगा और वहाँ आपका परिचय भी करा दूँगा, परन्तु आपको तो विश्वास ही नहीं होता।'

'विश्वास ही तो लुटिया डुबोता है महाराज। वैसे तुमसे मुझे कोई काम नहीं है। केवल इतना चाहता हूँ कि तुम मेरे साथ मदुरा चले चलो। यदि जीवितावस्था में न चल सके तो मुझे तुम्हारी लाश को भी उठाकर मदुरा ले जाना होगा।'

'हरि ! हरि ! आपको मुझसे इतनी प्रीति क्यों हो गई ? इतनी प्रीति तो पति को भी अपनी पत्नी से नहीं होती ! मरने पर वह भी उसकी लाश को छोड़कर आगे बढ़ जाता है। कान को छेदनेवाले सोने-जैसी आपकी इस प्रीति का कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता।' पूरण ने अपना गला सहलाते हुए कहा। उसकी गरदन में अब भी दर्द हो रहा था।

'कारण तो स्पष्ट है महाराज ! आप मदुरा के दोमार हैं ! इसी लिए आने-

गुण्डी में पकड़े गए और हाथी के पाँव-तले दिये जाने को थे। यह समाचार मदुरा के सुल्तान को भी अवश्य मिल गया होगा। ऐसे दोमार को मैंने विजयनगर की हाथीगुण्डी से छुडाया और सही-सलामत वापस पहुँचा दिया—मदुरा के सुल्तान के समक्ष मैं अपना केवल इतना ही परिचय चाहता हूँ।'

'बस, आपको मुझसे इतना ही काम है?'

'जी हाँ, केवल इतना ही। और आपके पास धरा ही क्या है? मैं चोर या लुटेरा नहीं और होता भी तो आप कहाँ के मलिक, हाकिम, सूबा या शेट्टी हैं कि मैं लूटकर कुछ पा जाता! मुझे तो मदुरा जाना है। मदुरा में मेरा अच्छी तरह परिचय करा दिया जाये और वहाँ मेरा उचित आदर-सत्कार हो, केवल इतना ही चाहता हूँ। सौभाग्य से तुम मिल गए और मेरी यह समस्या हल हो गई।'

'तो आइए कुमार, हम आपस में एक समझौता कर लें: मैं आपसे यह नहीं पूछूँगा कि आप मदुरा क्यों जा रहे हैं, और न आप मुझसे यह पूछेंगे कि मैं पम्पाधाम में किस प्रयोजन से आया था। और मैं अपना यज्ञोपवीत हाथ में लेकर सौगन्ध खाकर आपसे कहता हूँ कि आपको छोड़कर भागने का तनिक भी प्रयत्न नहीं करूँगा। भावजी, जीवन में यदि सब पर अविश्वास करेंगे तो आपका काम कैसे चलेगा? कभी तो किसी पर विश्वास करना सीखिए। मैं नर्मदा-तट का अथर्ववेदी भार्गव ब्राह्मण हूँ। मुझ पर, मेरी शपथ पर कुछ तो विश्वास कीजिए।'

'तुम्हारे ऊपर विश्वास करने से मुझे लाभ क्या होगा?'

'लाभ यही होगा कि मदुरा पहुँचने तक, यदि मार्ग में हम पकड़ नहीं लिये गए तो आप कुछ निश्चिन्त रह सकेंगे और रात में चैन से सो सकेंगे; और मैं भी अपना नित्य-नैमित्तिक कर्मकांड पूरा कर सकूँगा।'

'अच्छी बात है। चार छींटे डालकर अपना कर्मकांड पूरा कर लीजिए। मगर जो भी करना हो जल्दी कीजिए। कपाय नायक पहुँच गया होगा। और कबूतरखाने में खलबली मच गई होगी। हो सकता है कि स्वयं मेरा बाप ही मुझे पकड़ने आता हो।'

पूरण कन्यालो कुछ निश्चिन्त हुआ। अब उसका और बलदेव का

पारम्परिक सम्बन्ध बहुत कुछ निर्धारित हो गया था। उसने शीघ्रता से शौच और दन्तधावन का प्रातःकर्म पूरा किया, फिर तुंगभद्रा में स्नानकर सन्ध्या-वन्दन से छुट्टी पाई और तब दोनों आगे बढ़े।

बलदेव ने बस्ती, राजमार्ग और जलमार्ग छोड़कर विजन पथ से ही आगे बढ़ना उचित समझा। वह जानता था कि बुरे समाचार हवा से भी तेज उड़ते हैं। नदी में लंगर डालकर पड़े हुए कपाय नायक को भी उसके निर्वासित किये जाने के समाचार मिल चुके थे! अगर वह बस्तियों के बीच होकर जानेवाले मार्ग से गया तो उसके निर्वासन-दंड के समाचार वहीं उसकी राह रोके खड़े मिलेंगे।

—सत्य के पुजारियों का कोई सहायक नहीं होता। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र को ही लो। किसी ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय ने उनकी सहायता नहीं की। अन्त में उन्हें बानरों से मदद लेनी पड़ी। आज उनके वंशज बलदेव को भी तुरुष्कों से मदद लेने के लिए मदुरा की ओर वनपथ से चोरों की भाँति जाना पड़ रहा है। सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गए, परन्तु मानव-स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ; युग बदला, काल बदला, पर मनुष्य वही-का-वही रहा—सत्य के पुजारियों का कोई सहायक न हुआ।

—समय विपरीत है, मार्ग दुर्गम है और दो महीनों का यात्रा-पथ पैदल ही पार करना है—यदि कहीं से एक घोड़ा मिल जाय तो मार्ग भी छोटा हो जायेगा और समय भी कम लगेगा।

—लेकिन जब तक घोड़ा नहीं मिलता, बस्तियों से बचते, वनफल खाते, नदी-नालों और झरनों का पानी पीते पैदल ही चलना होगा।

—परन्तु काश, कहीं से एक घोड़ा मिल जाता....

और मानो उसकी प्रार्थना के उत्तर में हवा पर चढ़कर दूर से आती घोड़े की टापों की गूँज उसे सुनाई दी।

वह चौंक पड़ा। सच ही घोड़ों की टापों का स्वर है या उसके मन का भ्रम? उसने कान लगाकर सुना: दूर से हवा पर चढ़कर आती घोड़े की टापों की गूँज साफ-साफ सुनाई दे रही थी।

आया, कपाय नायक आ पहुँचा! उसके पीछे सैनिक भी होंगे। कैसा

घोर कलिकाल है। पुत्र कुल-धर्म की रक्षा करना चाहता है और सगा बाप उसे पकड़ने, रोकने और दण्ड देने को दौड़ा आता है?

बलदेव ने पूरण को खींचकर एक कँटीली झाड़ी में ढकेलते हुए कहा—चुपचाप रहना महाराज, नहीं तो....

उसने अपना वाक्य पूरा नहीं किया, पर उसके नेत्रों ने उसका अभीष्ट कथन कह सुनाया।

जहाँ वे खड़े थे वह स्थान कई छोटे-छोटे नालों से पटा पड़ा था। ये नाले उस समस्त पहाड़ी वन-प्रदेश का पानी लेकर तुंगभद्रा में मिलते थे।

वर्षा-काल में वहाँ बाढ़ आ जाती और सारा प्रदेश पानी से भर जाता था। पानी उतरने पर वहाँ की पहाड़ी धरती में करील, बबूल और पलाश उग आते थे। उन कँटीली झाड़ियों और पलाश-कुंजों के बीच से होकर किसानों, यात्रियों, सार्थवाहों और लुटेरों के आने-जाने के लिए अनगिनत पगडंडियाँ बनी हुई थीं।

बलदेव इस प्रदेश की चप्पा-चप्पा भूमि से परिचित था। बचपन में वह अपने साथियों के साथ यहाँ कई बार आया और लुका-छिपी के खेल खेला था।

जहाँ वह इस समय खड़ा था उससे थोड़ी ही दूरी पर एक नाटे कद का मोटे तनेवाला पलाश-वृक्ष था। बलदेव उसके समीप आया और पूरण महाराज को उठाकर उस पलाश के खोखले तने में उतार दिया। फिर स्वयं ऊपर चढ़कर एक मोटी टहनी पर लम्बा होकर लेट गया। यह टहनी पत्तों से आच्छादित थी और इस पर लेटनेवाला नीचे से दिखाई नहीं देता था।

थोड़ी ही देर में वहाँ एक-एक कर पाँच घुड़सवार निकल आये।

'हरिगोल किनारे की दलदल में फँसी पड़ी है। पैदल चलनेवाले वहाँ से इसी ओर आते हैं, इसलिए वे दोनो यहीं कहीं होने चाहिए। जो भी उसे जीवित या मृत पकड़ लायेगा उसे एक सहस्र वाराह पुरस्कार दिया जायेगा और अमरनायक की मुद्रावाला शिरोपाव भी मिलेगा। छान डालो सारा जंगल, खोज डालो एक-एक झाड़ी और जीवित या मृत पकड़ लाओ उसे। यदि वह वार करे तो तुम भी निर्भय होकर वार करना!'

लकड़ी पर चलते आरे-जैसा यह कर्कश स्वर और किसी का नहीं स्वयं उसके अपने पिता का ही था। कहाँ चला गया पिता का वह मीठा, ममता-भरा कोमल स्वर ? राज्य की प्राप्ति के लिए पिता पुत्र का और पुत्र पिता का वध करते आये हैं; परन्तु यहाँ तो उलटी ही रीति देखने को मिल रही थी। राज्य गँवाने के लिए पिता अपने ही पुत्र का शिकार करने को निकला था!

घुड़सवार एक-एक कर जंगल में गहरे और गहरे उतरते चले गए। स्वयं सोमेश्वर सोलंकी एक कद्दावर घोड़े पर सवार वहाँ खड़ा चारों ओर सतर्क दृष्टि से देख रहा था।

फिर वह भी वहाँ से आगे बढ़ा। बाज-जैसी उसकी तीक्ष्ण दृष्टि एक-एक झाड़ी और एक-एक वृक्ष को जैसे आर-पार देख रही थी। वन में गहरे धँसते हुए घुड़सवारों के स्वर क्रमशः दूर और मन्द होते जा रहे थे।

सोमेश्वर का घोड़ा जैसे ही उस पलाश-वृक्ष के नीचे आया बलदेव टहनी पर से बिल्ली की भाँति उछला और सोमेश्वर को लात मारकर घोड़े से नीचे गिरा दिया और तब स्वयं भी उससे लिपट गया। घोड़े को भागने का उसने अवसर नहीं दिया, उसकी लगाम को एक हाथ से पकड़े रहा।

दूसरे ही क्षण सोमेश्वर का अपने अश्वारोहियों को सतर्क करता हुआ स्वर वन-प्रान्तर में गूँज गया। अश्वारोहियों ने तत्काल प्रत्युत्तर दिया और अपने घोड़ों को इसी ओर मोड़ दिया।

बलदेव ने जमीन पर पड़े हुए पिता को पाँव से दबाते हुए रोषपूर्वक कहा—तुम बाप नहीं साँप हो! और जी चाहता है कि तुम्हें साँप की ही भाँति....

यह कहकर बलदेव ने पिता की तलवार म्यान से खींच निकाली; फिर वह भय से काँपते हुए घोड़े पर उछलकर सवार हो गया। जोर से लगाम झटककर वह घोड़े को पलाश-वृक्ष के तने के समीप लाया और पूरण को गरदन से पकड़कर बाहर खींच निकाला। वह भय और विस्मय के कारण अधमुआ हो रहा था। उसे निर्जीव बोरे की भाँति अपने सामने लादकर पूरण ने घोड़े को एड़ लगाई।

सोमेश्वर सोलंकी का तन और मन अपमान, असफलता और क्रोध की

आग में जला जा रहा था। वह कपड़े झाड़कर उठा और दोनो हाथ फैला-कर घोड़े की राह रोक खड़ा हो गया !

'हट जाओ मेरे सामने से ! खबरदार, मेरी राह मत रोको !' बलदेव ने चीखकर कहा।

लेकिन सोमेश्वर उसी प्रकार राह रोके खड़ा रहा। तब बलदेव ने घोड़े को उस पर कुदा दिया। घोड़ा अगली टापें सोमेश्वर सोलंकी के सिर पर और पिछले पाँव पेट में मारता हुआ कूदा और भाग चला।

सहायता के लिए भागे आ रहे सोमेश्वर सोलंकी के अश्वारोहियों ने यह भयंकर दृश्य देखा। दो अश्वारोही उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए रुक गए और शेष ने बलदेव का पीछा किया।

बलदेव ने झाड़ियों के बीच एक लम्बा चक्कर लगाया और घोड़े की लगाम ढीली छोड़ दी। उसका घोड़ा आगे-आगे और सोमेश्वर के अश्वा-रोही पीछे-पीछे इस प्रकार घुड़दौड़ होने लगी।

बलदेव स्वयं कुशल अश्वारोही था। सोमेश्वर का अश्व भी हजारों में एक था। यह घोड़ा कई मार्के सर कर चुका था। बलदेव इस पर अनेक बार सवारी कर चुका था। घोड़ा और घुड़सवार दोनो एक दूसरे से परिचित थे। अश्वारोहियों के सामान्य अश्वों का इस श्रेष्ठ अश्व से मुकाबला ही क्या ! बलदेव का घोड़ा इस प्रकार सरपट दौड़ा जा रहा था मानो उसे पंख लग गए हों। क्रमशः अन्तर बढ़ता गया और सोमेश्वर के अश्वारोही बहुत पीछे छूट गए। अब केवल बलदेव के घोड़े की टापों का ही स्वर जंगल में गूँज रहा था।

कुछ देर तक कान लगाये रहने के बाद बलदेव ने अपने घोड़े को सरपट से दुलकी में लिया और बोला—क्यों महाराज, मानते हो न कि देवी सह्यवासिनी हमारी सहायता कर रही है ? घोड़े की इच्छा करते ही घोड़ा हाजिर हो गया। शकुन बहुत अच्छे हैं। अब चले चलो ठेठ मदुरा तक। तुम्हारा बाल बाँका न होगा और थकोगे भी नहीं।

पूरण ने कहा—तुम्हें पछतावा नहीं होता ?

'पछतावा ?' पूरण ने पूछा, 'पछतावा कैसा ? हम भागना चाहते थे और हम साधन मिल गया।'

'लेकिन तुमने अपने पिता के साथ क्या किया ?'

'वही जो करना चाहिए था।'

'तुम बड़े ही भयंकर मनुष्य हो !'

'इसमें भयंकरता क्या हुई, महाराज ? लड़ना या न लड़ना यह तो अपनी इच्छा की बात हुई। परन्तु एक बार लड़ाई छिड़ गई, लड़ने का निश्चय कर लिया, प्रतिद्वन्द्वी निश्चित हो गए तो फिर पछतावा कैसा ? जिसे पछतावा हो उसे लड़ना नहीं चाहिए और जो लड़ना चाहे उसे पछताना नहीं चाहिए।'

'परन्तु तुम्हारे पिता...'

'अरे महाराज, तुम भी कैसी बात करते हो ? इस मिथ्या जगत् में कौन किसका पिता और कौन किसका पुत्र है ? पिता को जब पुत्र की परवाह न हो तो पुत्र को पिता की परवाह क्यों करनी चाहिए ?'

सोमेश्वर सोलंकी के सम्बन्ध में पूरण कन्याली बराबर चिन्तित होता रहा, परन्तु बेटे बलदेव को अपने पिता के सम्बन्ध में रंचमात्र भी चिन्ता और पछतावा नहीं था।

दिन और रात, रात और दिन घोड़े को दौड़ाते हुए बलदेव और पूरण आगे और आगे ही बढ़ते चले गए। पूरण इस कठोर हृदय व्यक्ति के पंजे से छूटने के लिए छटपटाता था, परन्तु अपनी मुक्ति के लिए उसने कोई प्रयत्न नहीं किया। जो व्यक्ति अपने बाप का न हुआ वह किसी और का क्या होगा ? सोमेश्वर पर जो बीती थी उसकी याद-मात्र से पूरण का कलेजा दहल उठता था।

घाट छोड़ वे घाटी में आये, घाटी से निकल नदी की तराई में आये। तेलुगु प्रदेश पीछे छूट गया, मयलापुर भी पीछे रह गया। सेंजी और शिव-कांची को भी पीछे छोड़ वे आगे निकल आये !

अब वे तुंडिर देश में होकर जा रहे थे। यह पांड्य-संघ के नायकों का देश था। मदुरा की सीमा यहीं से आरम्भ होती थी। इसे मदुरा का प्रवेश-

द्वार भी कहा जाता था। कावेरी नदी के उस पार मदुरा के सुल्तान का इलाका शुरू होता था। इस पार वनवासी दुर्ग, टोंडाई, सेंजी और पेंनगोडा थे।

इस सीमा पर सतत पहरा रहता था। अहर्निश सैनिक अपने पहरे पर सन्नद्ध रहते थे। सूर्यास्त के बाद एक पहर रात बीतने के बाद कोई यहाँ से बाहर जा नहीं सकता था, कोई अन्दर आ नहीं सकता था—जो जहाँ होता उसे वहीं रुक जाना पड़ता था।

उन्होंने घोड़े को यहीं छोड़ दिया और कावेरी को तैरकर पार उतरने का निश्चय किया।

कावेरी की धारा यहाँ दो पहाड़ों के बीच सिकुड़ी हुई पूर्वी घाट की परिक्रमा करती, घाट की पूर्वी दीवाल से टकराती दक्षिणाभिमुख होकर वेग से बहती थी। यह तुंगभद्रा अथवा कृष्णा के समान शान्त बहनेवाली नदी नहीं थी। इसकी धारा का वेग बड़ा ही प्रबल था।

घोड़ा छोड़ दिया गया और दोनो नदी में उतरे। बलदेव हाथ थामे आगे था और पूरण महाराज कपड़ों की गठरी सिर पर बाँधे पीछे।

रात घुप अँधेरी थी।

घोड़ा जैसे ही छूटा दूसरे घोड़ों की हिनहिनाहट सुनकर समीप के गाँव में पहुँच गया।

बलदेव ने सच ही कहा था। बुरी खबरें विद्युत् वेग से फैलती हैं! कपाय नायक की हरिगोल चुराई गई, बलदेव निर्वासित हुआ, वह मदुरा के सुल्तान से मिलने के लिए पूरण कन्याली नामक दोमार के साथ भागा जा रहा है—यह खबर गाँव-गाँव, दुर्ग-दुर्ग, बस्ती-बस्ती सर्वत्र फैल चुकी थी। लोगों को यह भी पता चल गया था कि बलदेव ने अपने पिता को घायलकर उसका घोड़ा चुरा लिया है। बलदेव, पूरण और घोड़े का हुलिया भी सभी नायकों, रायसों और दुर्गपालों को बता दिया गया था। यह सब विवरण उनके आने से पहले ही लोगों तक पहुँच चुका था।

सोमेश्वर सोलंकी के लिए सब के मन में अपार श्रद्धा थी। कांपिलीराय के बाद विजयनगर की उत्तरी सीमा का वही सबसे निर्भीक और महान

प्रहरी था। देवगिरि के हाकिम सात साल तक सिर पटककर रह गए, परन्तु उस वीर सिपाही ने उन्हें तुंगभद्रा के इस पार पाँव न धरने दिया। पाँच सौ वर्षों से चली आती अपनी राजसी परम्परा का परित्यागकर उसने रायराया का एक सामान्य दुर्गपाल बनना स्वीकार किया था। वह विजयनगर, विजयधर्म और विजयधर्मराज्य का महारथी था। जिन सात विशाल दुर्गों पर विजयनगरराज्य की सुरक्षा और आक्रमण की रणनीति निर्भर करती थी उनमें से एक दुर्ग का वह दुर्गपाल था। विजयनगरराज्य के सात प्रकृतियों में से वह एक प्रकृति था। और उसी को आहत करके, उसका अश्व चुराकर उसका पुत्र गोभूरि बनकर मदुरा के सुल्तान से मिलने जा रहा था....यदि वह गोभूरी विजयनगर की सीमा से निकल गया और मदुरा के सुल्तान की सीमा में प्रविष्ट हो गया तो यह सभी विजयनगर-निवासियों के लिए डूब मरने की बात होगी !

और इसलिए सब छोटे-बड़े नायक और अमरनायक आँखें फाड़े टक लगाये सीमा को ताक रहे थे। कान सभी के चौकन्ने थे। बलदेव ने सपने में भी नहीं सोचा था कि समाचार इतनी शीघ्रता से पहुँचे हैं और सीमा पर लोग इतने सतर्क हैं; नहीं तो उसने घोड़े को छोड़ने की भूल कदापि न की होती।

और घोड़ा जैसा छूटा दौड़ता हुआ नायक की घुड़साल के सामने पहुँचा और वहाँ बँधे घोड़ों को देखकर हिनहिनाने लगा। उसके बाद तो एक घटिका भी नहीं बीतने पाई और नायक तथा उसके दोरंगी घोड़ों की टापों को देखते हुए कावेरी के किनारे तक आ पहुँचे।

टोहिये ने कहा—यहाँ से नदी में उतरे हैं।

'यहाँ तो कावेरी मोड़ लेती है, धारा बड़ी प्रबल है, जबर्दस्त भँवर पड़ते हैं, नाव या हरिगोल ठहर नहीं सकती।'

फिर भी नायक की आवाज़ पर दो सौ आदमी निकल आये। मशालें जल उठीं। किनारा आलोकित हो गया और तेल में बुझी मशालें नदी के पानी में फेंकी जाने लगीं।

'सब सावधान हो जायें ! कोई गाफिल न रहे ! उस आदमी पर खून सवार है ! उसे जीवित अथवा मृत पकड़ने की आज्ञा हुई है !'

'दो-दो आदमी साथ रहें ! दो-दो आदमी साथ जायें। पाँच-पाँच हाथ के फासले पर दो-दो आदमी खड़े रहें। सब अपने हाथ में गोफनें और पाव-पाव वजन के पत्थर लिये रहें। सबके पास भाले भी रहें। देखते ही उसे घायल कर दिया जाये। जीवित पकड़ा जा सके तो अच्छा, नहीं मारकर तो अवश्य पकड़ा जाये। वह मनुष्य नहीं मनुष्यमार बघर्रा है। विजयनगर में उसके लिए क्षमा नहीं, दया नहीं, रामभद्र हाथी का पाँव उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। सब सतर्क रहें, सावधान रहें....'

नदी का पूरा किनारा इस प्रकार के आदेशों से गूँज उठा। नदी के पानी में जहाँ भी कुछ दिखाई देता गोफनें सनसना उठती थीं।

ऐसा लगता था मानो किसी नरभक्षी चीते का शिकार करने के लिए शिकारी मैदान में उतर आये हों।

जहाँ घोड़ा मिला उस गाँव का नाम सोमनाथपुरम् था। वहाँ वीर-वणिगा का एक सार्थवाह नदी के पार उतरने की प्रतीक्षा में पड़ा हुआ था। सार्थवाह अपेक्षाकृत छोटा ही था—चार-पाँच घोड़े, पाँच-छः बैल और आठ-दस मनुष्य। काबेरी के पार जाकर मदुरा की सीमा में व्यापार करने, माल उतारने और लादने का अनुमति-पत्र सार्थवाह के मुखिया के पास था। वनवासी दुर्ग के दुर्गपाल गोपभट्टी के उस अनुमति-पत्र पर हस्ताक्षर थे। दो दिन से सार्थवाह वहाँ आकर पार उतरने की प्रतीक्षा कर रहा था। नायक ने स्वयं जाँच-पड़ताल कर ली थी। अब तो केवल पार उतरने की देर थी।

सार्थवाह के नायक ने भी ठीक इसी समय रात में, जब कि बलदेव की खोज हो रही थी, पार उतरने का निश्चय किया।

जब भी कोई सार्थवाह सीमा पर नदी पार उतरता तो उस स्थान का नायक अपने दोरंगियों के साथ वहाँ आ खड़ा होता और अपनी देख-रेख में उन्हें पार उतारता था। सबसे पहले एक हरिगोल में दोरंगी और सार्थवाह का नायक उस पार घुटने-घुटने पानी तक जाते और वहाँ खड़े हो जाते थे। फिर सार्थवाह के पशु और मनुष्यों को उस पार पहुँचाया जाता था।

लेकिन यहाँ नदी की धारा और उसके तेज बहाव को देखते हुए दोरंगियों को पहले भेजना सम्भव नहीं था, इसलिए सार्थवाह का नायक वणिग बनाजा अकेला ही हरिगोल में बैठा और सामनेवाले किनारे की ओर चला।

हरिगोल में बैठकर उसने लग्गी से नाव को ठेला और जैसे ही नाव गहरे पानी में आई उसने डाँड़ें सँभाली; लेकिन अभी वह डाँड़ें चलाने भी नहीं पाया था कि नाव धारा में पहुँच गई और बहाव के साथ खिचने लगी।

वणिग बनाजा के होश उड़ गए। उसने नाव को काबू करने के बहुतेरे प्रयत्न किये, लेकिन उसका कोई उपाय सफल नहीं हुआ। वह जितना ही हरिगोल को काबू करता वह उतनी ही अधिक डगमगाने लगती थी।

हरिगोल को इस प्रकार बेकाबू होकर बहे जाते देख किनारे खड़े दोरंगी और बनाजा शोर मचाने लगे। किनारे पर मशालें ऊँची की गईं। बलदेव की टोह में लगे सब दोरंगी किनारे पर आ जमा हुए और वणिग बनाजा को तरह-तरह की सूचनाएँ और सलाह देने लगे, जो व्यर्थ था।

वणिग बनाजा हरिगोल की दोनो बाजुओं को मजबूती से थामे पूरी ताकत लगाकर उसे काबू में रखने की कोशिश कर रहा था। हरिगोल डगमगाती, कभी दायें और कभी बायें झुकती, चक्कर खाती, उछलती-डोलती, धारा में खिंची जाती सामने की पहाड़ी दीवार की ओर तेजी से बढ़ी जा रही थी।

उस दीवार से टकराकर अनेक नावें और हरिगोलें चकनाचूर हो गई थीं और उनमें सवार नाविकों और यात्रियों ने सदा के लिए जल-समाधि ले ली थी। उस धारा के बहाव में पड़कर आज तक कोई नाव साबित नहीं रही थी और कोई नाविक जीता नहीं बचा था।

किनारे खड़े लोग साँस रोके देख रहे थे। नाव को अचलम् नामक उस पहाड़ी दीवार के समीप पहुँचते देख सब एक स्वर में चिल्ला पड़े—गई.... गई....गई....

और दूसरे ही क्षण हरिगोल अचलम् से जा टकराई। लोगों ने वणिग बनाजा को नाव के अन्दर से फेंके जाते और हरिगोल को उलटते देखा। सब-के-सब चीत्कार कर उठे।

उलटी हुई हरिगोल अचलम् के साथ-साथ मोड़ में आगे को खिंची। मोड़ जहाँ पूरा होता था वहाँ पानी बहुत तेजी से बहता हुआ कुछ दूर आगे जाकर लगभग सात-एक हाथ नीचे गिरता था।

सहसा किनारे पर खड़े शोर मचाते लोगों ने साश्चर्य देखा कि हरिगोल सीधी हो गई। और जिस वणिग बनाजा को उन्होंने मृत समझ लिया था वह उसके अन्दर बैठा हुआ था। लेकिन अब तो वह किसी भी तरह बच नहीं सकता था। मोड़ से निकलकर जैसे ही हरिगोल आगे बढ़ेगी या तो भँवर में फँसकर डूब जायेगी या सात हाथ नीचे नुकीली चट्टानों पर गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगी !

आशा थी तो केवल यही कि वणिग बनाजा कुशल नाविक भी होते थे और प्रायः असम्भव को सम्भव कर दिखाते थे। जल और थल के जितने भी वाहन उस युग में प्रचलित थे वणिग बनाजा सब के निष्णात चालक हुआ करते थे। साहस उनका अद्वितीय था। निडरता में कोई उनकी समता नहीं कर सकता था। कष्ट-सहिष्णुता भी उनकी अप्रतिम होती थी। यदि उनमें ये गुण और विशेषताएँ न होतीं तो भला दूर दक्षिण का पण्य उत्तराखंड के पार, हिमालय के मार्ग से, तिब्बत होकर चीन देश तक ले जा सकते थे ? घने जंगलों, निर्जन मरुस्थलों, दुर्गम पहाड़ी दर्रों और चोटियों, तेज बहनेवाली नदियों, कमर-डूब दलदलों और पनीले हिम-मार्गों के वे समान रूप से अभ्यस्त होते और उन्हें निरापद पार कर लेते थे। सम्भव है कि वणिग बनाजा इस संकट को भी पार कर जाये !

लोग दम साधे देख रहे थे। अब हरिगोल भँवर में फँसी....वहाँ से बच निकली तो नीचे के खड्ड में गिरकर समाप्त हो जायेगी !

उनकी धारणा के अनुसार ही हरिगोल तेजी से गोल-गोल घूमते भँवर में जा फँसी। लोगों ने मशालें और ऊँची कीं। हरिगोल के अन्दर वणिग बनाजा निर्विकार भाव से बैठा हुआ था। भय का लेश भी उसके चेहरे पर नहीं था। शाबाश वणिग बनाजा, शाबाश ! मौत के मुँह में निर्भीकता से खड़े रहना अकेले रायसों, नायकों, सैनिकों और आभटों की ही बपौती नहीं। वणिग बनाजा भी वीरतापूर्वक मरना जानते हैं। शाबाश वणिग बनाजा !

हरिगोल अधिक स्पष्टता से देखी जा सके इसके लिए किनारे पर से चार-छह जलती मशालें उसकी ओर फेंकी गईं।

भँवर में दो-चार चक्कर खाकर हरिगोल नीचे की ओर खिंची। अब उसकी गति बहुत बढ़ गई थी। वह इस तरह नीचे की ओर लपकी जा रही थी, मानो धनुष से छूटा तीर हो। नाव नहीं आसमान से टूटा तारा ही प्रतीत होती थी।

पानी हजार घोड़ों के उद्दाम वेग से हरहराता बहा जा रहा था। शोर के मारे कान के परदे फटे जाते थे!

किनारे पर खड़े लोगों ने धड़कते हृदय से हरिगोल को निम्नगामी धारा पर चढ़ते और वहाँ से नीचे फेंके जाते देखा।

'समाप्त! हाय-हाय! समाप्त!' लोगों का करुण क्रन्दन सुनाई दिया।

लेकिन कुछ भी समाप्त नहीं हुआ था! वणिग बनाजा पत्थर की मूर्ति की भाँति हरिगोल में बैठा था। हरिगोल में पानी भर आया था। धारा पर उछलती वह नीचे गिरी और नीचे के शान्त जल में स्थिर खड़ी हो गई!

बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि जहाँ पानी ऊँचाई से नीचे गिरता है वहाँ निचाई में एक तालाब-सा बन जाता है। इस तालाब का पानी शान्त और स्थिर होता है। जहाँ गिरता है वहीं पानी उद्वेलित होता रहता है और एक तेज़ धारा के रूप में प्रवाहित हुआ करता है, शेष जल का आगार एकदम शान्त और स्थिर होता है।

वणिग बनाजा की हरिगोल इसी शान्त और स्थिर जलागार में गिरी और चुपचाप खड़ी हो गई। ऊपर खड़े लोग इस बात को देख न पाये। उन्होंने यही समझा कि हरिगोल और वणिग बनाजा दोनो ही समाप्त हो गए।

जब हरिगोल चुपचाप खड़ी हो गई तो वणिग बनाजा ने अपने डाँड़े सँभाले और उसे किनारे की ओर ले चला।

किनारे के निकट, घुटने-घुटने पानी में, वणिग बनाजा को एक व्यक्ति बैठा दिखाई दिया। वह आदमी अपनी बाँहों में एक बेसुध व्यक्ति को थामे हुए था।

वणिग बनाजा पूरी सावधानी से हरिगोल को उस व्यक्ति की ओर खेता चला गया। नाव को समीप आया देख वह व्यक्ति उठकर खड़ा हो गया। अपने हाथों में लिये हुए बेसुध व्यक्ति को उसने पानी में फेंक दिया और किसी भी आक्रमण का सामना करने के लिए पैतरा बदलकर तैयार हो गया।

वणिग बनाजा ने पानी में फेंके हुए बेसुध व्यक्ति को उठाकर हरिगोल में रखा और खड़े हुए व्यक्ति की ओर ध्यान से देखकर उच्च स्वर में पुकार उठा—बलदेवकुमार !

'कौन ? कौन है तू ?'

'मुझे नहीं पहचाना ? मैं हूँ योगी सिंगी ?'

२१. मदुरा में

श्रीरंगम् के भागवत मन्दिर के सामने बलदेव खड़ा था !

यही है भागवतों का परम तीर्थ, मोक्षधाम, श्रीरंगम् का मन्दिर ! इसके दरवाजों पर तो नौबतें बजना और शहनाइयों के स्वर गूँजना चाहिए थे; यहाँ कीर्तन और भजन की ध्वनि सुनाई पड़नी चाहिए थी; श्रद्धालु यात्रियों और दर्शनार्थियों की भीड़ के ठठ लगे होने चाहिए थे। इसके विशाल प्रांगण में निर्मित सतमंजिले गोपुरम् में दीपों की ज्योति जगमगानी चाहिए थी। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर खड़े होकर देवता के चोबदार को प्रभात के मंगला-दर्शन और आरती-दर्शन, मध्याह्न के राजभोग-दर्शन, सायंकालीन आरती और रात्रिकालीन हिंडोला-शयन के दर्शन की उद्घोषणा करनी चाहिए थी। यहाँ से राजराजेश्वर भगवान् विष्णु के सहस्रनामों के गुणगान की ध्वनि सुनाई पड़नी चाहिए थी और कौथुमी शाखा के सामगान का स्वर निनादित होना चाहिए था।

—गोपुरम् के सम्मुख बने देवमन्दिर के गर्भगृह में भगवान् श्रीरंगनाथ पुरुषोत्तम विठ्ठलनाथ की हीरा-मणिक और मोतीजड़ी देदीप्यमान मूर्ति के दर्शन होने चाहिए थे। श्याम-सलोने गातवाली उस मूर्ति के हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म तथा कटि में पीताम्बर होना चाहिए था।

पुजारियों, अर्चकों, भाविकों, मर्यादियों, कीर्तनियों, छड़ीदारों, चोबदारों और छत्र-चँवरवालों की भीड़ के कारण संगमरमर का विशाल आँगन भी छोटा पड़ जाना चाहिए था।

परन्तु हा हन्त! श्रीरंगम् के उस मन्दिर में न शंखनाद हो रहा था न नौबतें बज रही थीं। शहनाइयाँ सोयी पड़ी थीं। भक्तों की भीड़ का पता न था। चतुर्भुजाधारी साँवली-सलोनी मूर्ति भी वहाँ नहीं थी। गर्भगृह एकदम शून्य और निर्जन था।

जहाँ देवता की मूर्ति होनी चाहिए थी वहाँ एक छोटा-सा घी का दीया टिमटिमा रहा था, मानो किसी पथभूली गोपी की गौर छिंगुली उठी हुई हो। लेकिन नहीं, वह एकाकी दीया तो ऐसा लग रहा था, मानो किसी मृतात्मा के शव के सम्मुख घी का दीपक जलाकर रख दिया गया हो....हे भगवान्, यह कैसी अमंगल तर्क और अशुभ उपमाएँ मेरे मन में उठ रही हैं!

बलदेव का हृदय करुण स्वर में चीत्कार कर उठा—ओ कालीनाग के नाथनेवाले, मूर दैत्य को मारनेवाले, बकासुर, पूतना और कंस का वध करनेवाले, ओ शिशुपाल-संहारक, असुर-मद-मर्दन, जगत के पालक, पोषक और रक्षक, तेरे ही मन्दिर की यह दुर्दशा? कहाँ चला गया तेरा वैभव, तेरा ऐश्वर्य, तेरे आयुध, तेरी शक्ति और तेरा चक्र और तेरी गदा?

हे भगवान, श्रीरंगम् के मन्दिर की यह कैसी दुर्दशा हो गई? जहाँ बैठकर परम भागवत आचार्य श्रीरामानुज आत्रेय ने दिग्दिगन्त में भागवत धर्म का सुयश प्रचारित किया, जहाँ बैठकर भगवान वेदान्तदेशिक महाराज ने सब पाखण्डों और वितण्डाओं का खण्डन किया और भागवत धर्म का मंडन करनेवाली 'शतदूषणी' लिखी आज उसी की यह दुर्दशा...

भगवान ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा है कि जब-जब धर्म की हानि होती है और भक्त पर भीड़ पड़ती है, मैं पाँव पयादे दौड़ा आता हूँ। तो जब भगवान पर भीड़ पड़े तो क्या भक्तों को भगवान के सहायतार्थ नहीं दौड़ पड़ना चाहिए? लेकिन किस भक्त के भाल में लिखा हुआ है यह सुयश, यह सौभाग्य?

हे भगवान, अपने इस भक्त को, मुझ बलदेव को वह सौभाग्य प्रदान

करना। मुझे वरदान दे कि मैं सोलंकी-कुल का उद्धार कर सकूँ। मेरे मूर्ख पिता ने धर्म और सम्प्रदाय के प्रति जो अनाचार किया है, जो द्रोह किया है उसे मिटाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो!

वह अभी प्रार्थना में रत ही था कि उसने अन्धकार में मानो हवा को रूप ग्रहण करते देखा। गर्भगृह के धुँधले दीये के प्रकाश में उसे एक मानव कलेवर रूपायित होता दिखाई दिया। क्षण-भर के लिए तो उसे यही प्रतीत हुआ कि भगवान ने उसकी प्रार्थना सुन ली है और वरदान देने के लिए सशरीर प्रकट हो रहे हैं....

लेकिन जैसे ही उसने आँखें मलकर देखा तो वह रूप किसी नारी का था। भगवान विष्णु नहीं थे; तो क्या वह लक्ष्मी थी या राधिका या अपने प्राणवल्लभ कृष्ण-कन्हैया को खोजती हुई विरह-व्यथातुरा कोई गोपी थी?

नख-शिख वह श्याम वस्त्र धारण किये हुए थी। उसका सुकोमल चन्दन-शीतल स्वरूप और पुराने हाथीदाँत-जैसी उसकी शुभ्र-धवल काया उन काले वस्त्रों में और भी दीप्त हो उठी थी! दीये की ज्योति रह-रहकर काँप उठती थी और उस कम्पित प्रकाश में उस नारी का कलेवर भी काँपता हुआ प्रतीत होता था।

वह बलदेव की ओर टक लगाये देख रही थी। उसकी दृष्टि में किसी प्रकार का भय, संकोच, विस्मय अथवा असमंजस नहीं था। उसे अपनी ओर इस प्रकार देखता हुआ पाकर बलदेव इतना विस्मित हो उठा कि उसे शिष्टाचार के सामान्य नियमों का भी ध्यान नहीं रह गया। जिस प्रकार कोई ग्रामीण नभचारिणी अप्सरा को देखता रह जाता है उसी प्रकार बलदेव उसे आँखें फाड़े देखता रहा।

तभी पीछे से पूरण महाराज ने उसकी पीठ में उँगली कोंचकर धीरे से उसके कान में कहा—तुम सुल्तान से भेंट करना चाहते हो न? यह देवी तुम्हारी भेंट उससे करा सकती है।

'क्या यह वही नारी है जिसके सम्बन्ध में तुमने मुझसे कहा था?'

'हाँ, यह वही देवी है?'

'क्या नाम है इसका?'

'नाम तो कोई जानता नहीं, कोई पूछता भी नहीं। जो एक बार इसे देख लेता है सदा के लिए इसी का हो रहता है; फिर कुछ पूछने-जाँचने की उसे इच्छा ही नहीं होती। तुम्हारी भी यही दशा होगी।' पूरण ने कहा।

बलदेव ने कठोर वास्तविकता के प्रदेश में प्रवेश करते हुए कहा—अरे भावजी, हमें नाम से क्या मतलब है, हमें तो काम से मतलब है। नाम मालूम हो भी जाये तो क्या और मालूम न भी हो तो क्या ?

'बस-बस, तुम इनके साथ काम की ही बातें करना। वैसे तो जो भी इनसे बातें करता है वह बातें ही करता रह जाता है और काम को सफा भूल जाता है। परन्तु तुम इतने कच्चे नहीं हो; फिर भी मैं सचेत किये देता हूँ।'

बलदेव उस नारी को निर्निमेष, टक लगाये देख रहा था। अब उस नारी की दृष्टि टिमटिमाते दीये की ज्योति पर थी। किसी महाकवि के खंड-काव्य में वर्णित कालातीत सौन्दर्य-जैसी उसकी सुन्दरता थी। साक्षात् यौवन की सजीव मूर्ति की भाँति वह खड़ी थी। अभी उस युग में वैष्णवों और भागवतों में राधा की पूजा प्रचलित नहीं हुई थी। जयदेव द्वारा 'गीत-गोविन्द' रचे जाने के बाद ही राधा भागवतों के सम्प्रदाय में प्रविष्ट हुई और पूजी जाने लगी। यदि राधा की पूजा उस युग में प्रचलित होती तो बलदेव को यही लगता कि राधा अपने कृष्ण को खोजती हुई उस निर्जन मन्दिर में आ गई है !

वह दीये की ओर देख रही थी और यह निश्चय कर पाना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव भी था कि दीये का प्रकाश उसकी कंचन काया को उद्भासित कर रहा है अथवा उसकी स्वर्ण चम्पक-सी काया दीये की ज्योति को उजाल रही है !

बलदेव ने उसके नेत्रों को देखा और उन नेत्रों के सौन्दर्य में डूब-सा गया। उस नारी का सारा सौन्दर्य, समस्त अपार्थिवता, समूची अद्वितीयता उसके उन सुन्दर नेत्रों में समाविष्ट थी।

धीरे-धीरे उस नारी ने दीये की ओर से अपनी दृष्टि उठाई और पूरण की ओर देखा। उसके चेहरे पर परिचय, आदर, स्नेह और प्रसन्नता के भाव

खिल उठे। बलदेव ने लक्ष्य किया कि उसका चेहरा अवश्य हँस रहा था, परन्तु उन आकर्ण नेत्रों में तो गहन विषाद ही घिरा हुआ था।

पूरण ने आगे बढ़कर प्रणाम किया और बोला—मैं लौट आया हूँ देवी! अब देव-दीपक की देख-भाल आपको नहीं करनी होगी।

पूरण का वक्तव्य सुनने के पश्चात् उसने बलदेव की ओर देखा और बलदेव को ऐसा प्रतीत हुआ मानो दो नुकीले तीर उसे आर-पार छेद रहे हों।

'मैं विजयनगर से आया हूँ।' बलदेव ने कहा।

'विजयनगर?' उसने इस तरह पूछा मानो यह नाम आज पहली ही बार सुन रही हो।

'जी हाँ! हमारे विजयधर्मी एक नया शहर बना रहे हैं। आनेगुण्डी अब इस नये नगर का केवल एक मुहल्ला होगा। इसी लिए आनेगुण्डी इन दिनों विजयनगर कहा जाने लगा है।'

'वहाँ तो सोमेश्वर सोलंकी दुर्गपाल हैं न?' उसका स्वर बड़ा ही मादक था।

'जी हाँ, वह अब भी वहाँ के दुर्गपाल हैं, और मेरे पिता होते हैं।'

'वह परम भागवत इन दिनों क्या कर रहे हैं? कुशलपूर्वक तो हैं न? उनकी वीरता की गई गाथाएँ हमने सुनी हैं।'

बलदेव के कुछ कहने से पहले ही पूरण ने कहा—देवी, सोमेश्वर वीर पुरुष हैं, परन्तु अब वह भागवत नहीं रहे। सोलंकियों के कुल-गौरव को तिलांजलि देकर और भागवत धर्म को नमस्कार कर अब वह विजयधर्म के कट्टर अनुयायी बन गए हैं। तुंगभद्रा के समस्त तटवर्ती प्रदेश के वह सार्वभौम राजा थे, परन्तु अब तो विजयनगर के रायराया बुक्काराय और उनके महामंत्री, भगवान कालमुख के परम शिष्य विद्यारण्य के अनुगत और अधीनस्थ केवल एक दुर्गपाल हैं। इसी प्रश्न को लेकर बलदेव का अपने वीर पिता से मत-भेद हो गया है। सोमेश्वर सोलंकी कुशलपूर्वक हैं या नहीं, इसे भी हम नहीं जानते। क्योंकि बलदेव को यहाँ आने से रोकने के लिए स्वयं सोमेश्वर

सोलंकी अपने आभटों को लेकर आये थे। पिता-पुत्र में द्वन्द्व-युद्ध हुआ और पुत्र ने पिता को पराजित किया !

'ओ हो, वीर पिता के वीर पुत्र ने अपने ही पिता को पराजित किया ! तब तो यही मानना चाहिए कि बलदेवराज तुम्हारे साथ आये हैं !'

'नहीं देवी।' बलदेव ने आत्मश्लाघा से भरी हँसी के साथ कहा, 'पूरण महाराज मुझे नहीं लाये, मैं ही उन्हें हाथीगुण्डी से छुड़ाकर लाया हूँ, जहाँ महामंत्री माधव विद्यारण्य ने उन्हें बन्दी किया था।'

'ओ हो, यह तो आपने बहुत अच्छा किया। पूरण महाराज तो हमारे यहाँ के बहुत बड़े भाविक और भागवत हैं।'

'भागवत तो बलदेवकुमार भी हैं देवी। भागवत धर्म की सेवा करने के उद्देश्य से ही वह सुल्तान से मिलने के लिए आये हैं और उनकी मुलाकात चाहते हैं। इन्होंने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। मैंने इन्हें वचन दिया था कि मैं सुल्तान से मुलाकात कराने का प्रबन्ध कर दूँगा, इसी लिए आपके पास ले आया हूँ।'

'ओ हो, तो यह कौन कठिन काम है ? सुल्तान सलामत से अवश्य भेंट हो सकती है। भागवत से तो स्वयं भगवान भी मिलने को लालायित रहते हैं, फिर सुल्तान क्यों नहीं मिलेंगे ? अवश्य मिलेंगे। आज सायंकाल के समय पूरण महाराज आपको मेरे निवास-स्थान पर लायेंगे और वहाँ आप सुल्तान से मिलकर वार्तालाप कर सकेंगे। अब आप जाकर विश्राम कीजिए। मैं भी पूजन कर लूँ।' फिर उसने पूरण की ओर देखकर कहा, 'महाराज, कुमार को आराम करने दीजिए। आज आप लौट आये हैं तो मुझे विधिपूर्वक पूजन करवा दीजिए।'

बलदेव को समझते देर न लगी कि यह पूरण को रुक जाने का स्पष्ट संकेत है। वह अनेक मनोरम कल्पनाएँ करता हुआ वहाँ से चल दिया। मार्ग में सोचता जा रहा था—कि इस सुन्दरी रमणी ने मेरे साथ कितने विनय, शिष्टाचार और मधुरता से बातें कीं। धर्म में अब भी उसकी कितनी श्रद्धा है ! सुल्तान की पर्यंकशायिनी बनकर शरीर अवश्य भ्रष्ट किया है, इस धर्म को अब भी बनाये हुए है। वह अवश्य मुझ पर अनुरक्त है। मदुरा

के परम भागवत राजा बलदेव सोलंकी की महारानी तो बन नहीं सकती, परन्तु उपवस्त्र के रूप में, राजकणिका के रूप में अवश्य शोभा पा सकेगी। फिर तो स्वर्ग ही पृथ्वी पर उतर आयेगा और वात्स्यायन मुनि को भी काम-शास्त्र सीखने के लिए मदुरा में अवतार लेना होगा। सच्चा सुख और आनन्द तो है भागवत और भागवतों का राजा बनने में। भाव्यों के राजा बनो तो अमारि (हिंसा के त्याग) को अपनाना पड़ता है, व्रत और उपवास करने पड़ते हैं। शैवों के राजा बनो तो रुद्राक्ष के बोझ और भभूत के ढेर से छुट्टी नहीं मिलती। वीरशैवों के राजा बनो तो गले में शिवलिंग लटकाने पड़ते हैं और धरती पर सोना पड़ता है। परन्तु भागवत धर्म में ऐसी कोई आधि-व्याधि नहीं। वैष्णवों की तो उपासना भी केशर-कस्तूरी के बिना नहीं होती; मानव-मन की समस्त निर्बलताएँ इस धर्म में भक्ति के रंग में रँग जाती हैं। धर्मात्मा और पापी, निर्बल और सबल—सभी समान रूप से भागवत धर्म का पालन कर सकते हैं!

....फिर मैं तो वंश-परम्परा से भागवत हूँ। साक्षात् शिव भी सामने आयें तो शस्त्रास्त्र लेकर उनसे जूझ पड़ूँ और भगवान् विष्णु माँगें तो बिना हिच-किचाहट के अपना सिर उतारकर उनके चरणों में समर्पित कर दूँ। मदुरा के मन्दिर की पुनःप्रतिष्ठा में इस नारी का सहयोग ईश्वरीय संकेत प्रतीत होता है।

इस प्रकार कई सुरम्य कल्पनाएँ करता हुआ बलदेव अपने विश्रामस्थल की ओर चला जा रहा था।

उधर बलदेव गया और इधर उस नारी के चेहरे से सारी प्रसन्नता तिरोहित हो गई! उसने लपककर पूरण का हाथ पकड़ लिया और व्यथित कंठ से बोली—यह क्या है पूरण महाराज, यह सब क्या है?

पूरण ने एक हाथ से उसका माथा थपथपाया और दूसरे हाथ से उसे नीचे बिठाते हुए सान्त्वना के स्वरों में बोला—मन्दा, ज्योतिषियों ने तुझे विषकन्या कहा है और मुझे लगता है कि आज तेरे और मेरे लिए विष खाने का समय आ गया है। हम दोनो ने मिलकर निश्चय किया था कि मदुरा के पतन का समय आ गया है और इसी लिए मैं भागा-भागा भगवान काल-

मुख के पास गया था। हम दोनो मदुरा में किस प्रकार रहते हैं, क्या करते हैं, सुल्तान की वासना का तुम किस प्रकार शिकार होती रहती हो, और सुल्तान के तेवर मैं किस प्रकार सहता हूँ, इसे अकेले भगवान कालमुख ही जानते थे। इसी लिए मैं भगवान कालमुख के पास गया, परन्तु हमारे दुर्भाग्य से उसी दिन भगवान ने समाधि ले ली, उनके शिष्य विद्यारण्य माधव महामंत्री बने और महामंडलेश्वर राय हरिहर ने हलाहल विष का पानकर प्राण विसर्जित किये। महामंडलेश्वर राय हरिहर के स्थान पर उनके भाई बुक्काराय विजयधर्मराज्य के, जिसे अब विजयनगरराज्य कहा जाता है, रायराया बने।

'हे भगवन्, यह तूने क्या किया? सन्तों और वीरों को तू हमारे बीच से उठा लेता है और कणिका तथा भिक्षुक की कड़ी परीक्षा लेता रहता है! क्या तुझे भी नमाज पढ़ने का शौक चर्राया है और तू भी मदुरा छोड़कर मक्का रहने चला गया है? आज तो हमारी सारी आशा, सारी श्रद्धा और समस्त धीरज का अन्त हो गया है!' यह कहकर मन्दा नाम की उस विषकन्या ने अपनी अँगुली में पहनी हुई अँगूठी उतारकर हाथ में ले ली। पूरण और वह थोड़ी देर उस अँगूठी की ओर देखते रहे और तब मन्दा ने पूछा, 'क्या भगवान कालमुख अपने किसी शिष्य से हमारे बारे में कुछ भी नहीं कह गए?'

'मन्दा, मैंने इसी आशा में भगवान कालमुख के पट्टाशिष्य माधव से घुमा-फिराकर तीन-चार बार कहा कि मैं मदुरा से आता हूँ और श्रीरंगम् के मन्दिर में, जहाँ मदुरा का सुल्तान रहता है, देवता के गर्भगृह में, घी की अखंड ज्योति जलाये रखने का कार्य करता हूँ। परन्तु कोई भी मेरे इस संकेत को समझ न सका। प्रतीत होता है कि भगवान कालमुख उन्हें हमारे बारे में बतलाना भूल ही गए। महामंत्री माधव ने मेरे संकेत को नहीं समझा, उलटे मुझे सुल्तान का दोमार घोषित कर हाथीगुण्डी में बन्द कर दिया।'

यह सुनते ही उस परमसुन्दरी नारी का मुख म्लान हो गया, नेत्रों में निराशान्धकार छा गया। उसने लगभग रुआँसे स्वर में कहा—और वहाँ

से इस बलदेव ने तुम्हें छुड़ाया। भगवान ने सहायतार्थ भेजा भी तो इस दैत्य को!

'मन्दा, बलदेव भयंकर है, उसकी महत्वाकांक्षाएँ भयंकर हैं, वह पितृ-द्रोही है, भगवान कालमुख का द्रोही है, विजयधर्म का द्रोही है, परन्तु कट्टर भागवत भी है....'

'पूरण, भागवत हमारे किस काम का? भगवान कालमुख का विरोधी हमारे किस काम आ सकता है?'

'मन्दा, उसकी सहायता से हम चाहें तो मदुरा को मुक्त कर सकते हैं और म्लेच्छ सुल्तान को निष्कासित कर श्रीरंगम् की मूर्ति को पुनःप्रतिष्ठित कर सकते हैं।'

'पागल हुए हो पूरण!' यह तो सुना था कि नारी की बुद्धि उसके तलुवे में रहती है, परन्तु तुम तो "पुरुष की बुद्धि तलुवे में"-जैसी बात कर रहे हो! क्या इतना भी नहीं जानते कि जो मदुरा को जीतेगा उसे दिल्ली के सुल्तान का सामना करना होगा। यह काम किसी अकेले भागवत के बस का नहीं। सारे विजयधर्मी मिलकर ही इस महत् अनुष्ठान को पूरा कर सकते हैं। विजयधर्मियों का विजयधर्मराज्य इसे पूरा कर दिखाता, परन्तु तुम्हारे पहुँचने से पहले ही भगवान कालमुख समाधिस्थ हो गए!....मेरे प्रेम ने तुम्हें पागल कर रखा है पूरण; लेकिन मेरे भाग्य में तो लिखा है कि जो विलास के लिए मेरा साथ करेगा उसका विनाश होगा और जो विनाश की आकांक्षा से मेरा स्पर्श करेगा उसके लिए मैं विलास का कारण बनूँगी। मेरी ही भाँति तुमने भी विनाश और सर्वनाश की ज्वाला का पान किया है! परन्तु प्रेम की आग तुम्हारी दृष्टि को धूमिल न करने पाये और न यह तथ्य तुम्हें कभी विस्मृत होने पाये कि मदुरा को जीतनेवाला यदि दिल्ली के सुल्तान को पराजित न कर सका तो इस प्रदेश का सर्वनाश हो जायेगा। मुहम्मद तुग़लक की सेना दूसरे भस्मासुर की भाँति दक्षिणापथ को तहस-नहस कर डालेगी। जब संहार की ऐसी तांडव-लीला आरम्भ होगी तो क्या तुम्हारा बलदेव उसमें टिका रह सकेगा? और क्या यहाँ के लोगों को एक सूत्र में आबद्ध रख सकेगा?'

पूरण को सिर खुजलाते देख मन्दा ने तिक्त हँसी हँसकर कहा—तो समझ लो कि तुम्हारा बलदेव खोटा सिक्का है, वह चल नहीं सकता। विष-कन्या का जन्म तो क्वचित् ही होता है। राज्य-परिवर्तन दाइयाँ और तेलिनें भी कर ले जाती हैं, पर युग-परिवर्तन तो विषकन्याएँ ही करती हैं! बलदेव सुल्तान से मिलना चाहता है तो उसे मिल लेने दो, पर वह हमारे काम का नहीं। उसे यहाँ से विदा ही करना होगा। कच्चे दिल और लोभी मन के आदमी का हमारे लिए कोई उपयोग नहीं है। विश्वासघाती, लोभी और पितृद्रोही लोगों की आवश्यकता हो तो वे यहाँ भी बहुत मिल जायेंगे।

दोनो थोड़ी देर तक चुप बैठे रहे और तब मन्दा ने कहा—पूरण, मैंने तुमसे बहुत प्रतीक्षा करवाई; तुम अवश्य थक गए होगे। मैंने तुम्हें सदैव दूर ठेला है, परन्तु आज मैं तुम्हें वासना और विलास के उस लोक में ले चलूँगी जिसके लिए कामशास्त्र के रचयिता वात्स्यायन भी लालायित रहते हैं। उठो पूरण, चलो।

यह कहकर मन्दा ने अपना हाथ पूरण की ओर बढ़ा दिया। उसके सारे शरीर पर एक अलस भाव छा गया और चेहरा वत्सनाग के फूल की भाँति विकसित हो गया।

ठीक उसी समय बाहर से किसी ने पुकारा—पूरण महाराज, ओ पूरण महाराज!

और दूसरे ही क्षण योगीराज सिंगी ने वहाँ प्रवेश किया। विषकन्या को देखकर उसे प्रणाम करते हुए जोगी सिंगी ने कहा—चलिए, अच्छा हुआ, आपसे भी यहीं भेंट हो गई।

'पर आप, इस समय, कहाँ से?'

जोगीराज ने मुस्कराकर कहा—देवी, आप मुझे पहिचानकर भी नहीं पहिचानतीं। मैं वीरवणिगा के अलाया के रूप में आपसे मिला था, तब कायर था। अब जोगीराज सिंगी हूँ और यद्यपि वीर नहीं हूँ, परन्तु कायर भी नहीं हूँ।

'साधुवाद करती हूँ आपका।'

'नहीं देवी, मेरा परिहास न करें। अपने सम्बन्ध में इतना कहना मेरे लिए

आवश्यक था। पूरण महाराज, बलदेव तो आपसे ऐसा चिपका कि मैं एक क्षण भी आपको अकेला न पा सका। अभी अवसर मिला और मैं भागा आया।'

'आज्ञा कीजिए।'

'आज्ञा नहीं सेवा कहिए। महाप्रधानी ने मुझे आदेश दिया है कि मैं देवी की सेवा में उपस्थित होकर उनकी आज्ञा का पालन करूँ।'

'महाप्रधानी ?'

'जी, उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है और कहलवाया है कि वह भगवान कालमुख के उत्तराधिकारी तो नहीं, परन्तु शिष्य अवश्य हैं। पूरण महाराज को उन्होंने सार्वजनिक रूप से बन्दी किया था, क्योंकि यदि वहाँ मदुरा के सुल्तान के चर होते तो उन्हें और सुल्तान को भी भ्रम में रखना आवश्यक था। और कभी लौटकर आना पड़ता तो मदुरा रहने में किसी प्रकार का व्यवधान न होता। वैसे महाप्रधानी पूरण महाराज से एकान्त में मिलना चाहते थे और इसी लिए अपने निवासस्थान से चले भी थे, परन्तु बलदेव बीच में आ कूदा और उन्हें छुड़ाकर ले भागा।'

'अच्छा ?' विषकन्या का मुखमण्डल कठोर ही बना रहा।

'जी हाँ! महाप्रधानी ने कहलवाया है कि पूरण महाराज क्या सन्देश लेकर आये थे यह तो हम नहीं जानते, परन्तु उनका सन्देश दो में से एक ही हो सकता है : या तो यह कि मदुरा के पतन का समय परिपक्व हो गया है या यह कि समय अभी परिपक्व नहीं हुआ है।

'अच्छा ?' और विषकन्या तथा पूरण ने सार्थक दृष्टि से एक-दूसरे की ओर देखा।

'जी हाँ, इसलिए महाप्रधानी ने कहलवाया है कि रायराया बुक्काराय को उन्होंने कावेरी के किनारे की ओर रवाना कर दिया है और सम्भवतः रायराया अपनी सेना-सहित पहुँच भी गए होंगे। अब आपका जो भी सन्देश हो उसे मेरे द्वारा रायराया तक पहुँचा दीजिए और रायराया उसी के अनुसार आचरण करेंगे।'

पूरण और विषकन्या अब भी एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। उनकी

सारी निराशा दूर हो गई थी और वातावरण आशा के सुनहरे रंगों से आलोकित हो उठा था। विषकन्या के चेहरे पर छाया हुआ कुहासा दूर हो गया और वहाँ सान्ध्य आभा में पहली चन्द्रकिरण प्रस्फुटित होती दिखाई दी। उसने कहा—रायराया कावेरी के तट पर पहुँच गए हैं तो आप उनके पास हमारी एक भेंट ले जा सकेंगे जोगी ?

जोगी सिंगी ने स्वीकृति में केवल सिर झुका दिया।

२२. आखरी सौगात

बड़े सवेरे सूरज ऊगा और विषकन्या के रंगमहल के द्वार भी उन्मुक्त हुए।

दास-दासियों और गुलामों तथा ख्वाजासरों के दल उन खुले द्वारों के सम्मुख आ खड़े हुए और कोरनिश बजाकर दोनो हाथ उठाये बोल उठे—अल्लाह ताला हमारे आका हुजूर सुल्तान सलामत की उम्रदराज़ करे, उन्हें सेहत और फतह बख्शे ! हुजूर का रुतबा और दौलत बढ़े। इंशा अल्लाह ! सुल्तान सलामत साहब जिन्दाबाद।

खुले द्वारों के बीच विषकन्या आ खड़ी हुई। उसके अंग-अंग से मादक सुगन्ध प्रसारित हो रही थी। उसका रूप ऐसा सुशोभित हो रहा था, मानो चम्पा के फूल की पुतली ने मोगरे के पानी से स्नान कर केसर का आलेपन किया हो। उसकी कजरारी आँखों की कोर में जैसे भगवान शंकर के शाप से दग्ध कामदेव के धूप का अंजन डाला गया हो। जो एक बार उन आँखों को देख लेता विलास के सोपान पर चढ़कर स्वर्गोपम सुख की अनुभूति में लीन हो जाता।

दास-दासियों ने पुनः कोरनिश बजाकर समवेत स्वर में कहा—गुलामों के लिए आका का कोई हुक्म ?

विषकन्या ने मुस्कराहट का इन्द्रधनुषी सौरभ बिखेरकर कहा—आज किसी के लिए सुल्तान सलामत का कोई हुक्म नहीं।

दास-दासियों की पाँतें बिखर गईं। इस अभूतपूर्व आदेश की मीमांसा करने के लिए कोई वहाँ रुका नहीं रहा। आवश्यकता भी नहीं थी। सामने

स्वर्ग की जो अप्सरा खड़ी थी उसके रहते सुल्तान सलामत किसी को कोई आदेश दे भी क्या सकते थे !

थोड़ी देर बाद जोगीराज सिंगी वहाँ आया।

उसने विषकन्या की ओर देखा और देखता रह गया। ऐसा रूप, ऐसी सुकोमलता, इतना सौन्दर्य, ऐसी चंचलता, मादकता और माधुर्य....

विषकन्या ने मुस्कराकर स्वागत किया—पधारिए जोगीराज !

जोगी प्रत्युत्तर में कुछ कह न सका, उसकी तो जैसे वाणी ही अवरुद्ध हो गई थी।

थोड़ी देर विषकन्या भी उसकी ओर देखती रही फिर मन्द स्वर में बोली—जोगीराज, अब हमारी दुबारा भेंट नहीं हो सकेगी। आप जोगी हैं। मैं एक बार की आपकी गुरु हूँ। आज आप जोगी हैं और मैं भिक्षुक ! क्या आप मुझे आशीर्वाद देंगे ?

जोगी ने कहा—मैं जोगी कहाँ का ? और तुम्हें आशीर्वाद दे सकूँ इतनी मेरी सामर्थ्य ही कहाँ है ? तुमने...तुमने....

विषकन्या हँस दी। उसकी उस हँसी में जैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का रहस्य छिपा हुआ था। उसने कहा—ऐसी बात तो नहीं है जोगीराज, कि आप आशीर्वाद दे ही न सकें। खैर, जाने दीजिए आशीर्वाद को। आप हमारे सन्देशवाहक भी हैं; बतलाइए, आपको क्या पुरस्कार चाहिए ?

'पुरस्कार ? कैसा पुरस्कार ? किस बात का पुरस्कार ?'

'क्या यह भी मुझे बताना होगा ? यह हमारी अन्तिम भेंट है। आप हमारा सन्देश और हमारी भेंट रायराया के पास ले जायेंगे। कोई ऐसा पुरस्कार बताइए जिससे आप अपना काम उमंग और उत्साह से कर सकें !'

'ओह, समझा ! लेकिन पुरस्कार तो मुझे रायराया देंगे। आपसे क्या पुरस्कार लूँ ? और वैसे पुरस्कार तो मुझे रायराया से भी नहीं चाहिए !'

'जोगीराज, आप तो सच्चे जोगी निकले—कोई कामना, कोई अभिलाषा ही नहीं। विषकन्या ने हँसकर कहा। उसकी हँसी क्या थी मानो कामदेव ने कानों तक डोर खींचकर तीर मारा हो ! 'महीनों पहले आप एक भिन्न वेश

में भिन्न नाम से, भिन्न उद्देश्य से मदुरा आये थे और तब आपने मुझसे कुछ माँगा था।'

'याद है देवी ! और आपने जो उत्तर दिया था वह भी याद है। मेरा आज का यह योग आपके उस उत्तर का ही प्रत्युत्तर है। आप ही कह रही हैं कि हमारी आज की यह भेंट अन्तिम है, तो फिर मुझे लज्जा की कालिख में क्यों डुबो रही हैं ?'

'अरे, कैसी बात करते हैं आप ? मैं आपको लज्जा की कालिख में डुबो रही हूँ ? मैं तो यही कह रही हूँ कि उस दिन आपने जो माँगा था वह आज पुनः माँग लीजिए, जिसमें आपके मन में मेरी स्मृति मधुर और सरस बन-कर सदा के लिए रह सके !'

'देवी, जिस दिन मैंने वह माँग की थी आप एक कणिका थीं। आज मैं आपको सर्वथा एक भिन्न ही रूप में देख रहा हूँ। यदि आपका आग्रह ही है तो एक माँग करता हूँ; अनुमति दीजिए।'

'सहर्ष माँगिए।'

'आज का आपका रूप आशीर्वाद माँगनेवाली का नहीं, आशीर्वाद देनेवाली का ही है, इसलिए आशीर्वाद माँगता हूँ कि आपके मन में मेरी याद इस रूप में बनी रहे कि जिसे आपने उपालम्भ दिया था उसने उसे सिर-आँखों पर चढ़ाकर जीवन को सुधारने के लिए प्राणों की बाजी लगा दी और जब तक जीवित रहेगा जीवन को सुधारने और बदलने का प्रयत्न करता रहेगा।'

'आशीर्वाद देती हूँ जोगी !'

जैसे ही यह वार्तालाप समाप्त हुआ पूरण समीप के प्रकोष्ठ से बाहर निकल आया, मानो अभी तक वह वार्तालाप की समाप्ति की ही प्रतीक्षा कर रहा था।

पूरण को देखकर भी जोगी उसे पहिचान न पाया। जिस पूरण को उसने पहले देखा था उससे यह पूरण सर्वथा भिन्न लग रहा था। दोनों में क्या भिन्नता थी इसे तो जोगी समझ नहीं पाया, केवल इतना ही समझ सका कि जो पूरण सामने खड़ा है वह पहले देखे हुए पूरण से सर्वथा भिन्न है।

'पूरण !' विषकन्या ने कहा, 'भेंट तैयार है ?'

'जी हाँ।'

'तो लाओ।'

पूरण ने ताली बजाई। दास-दासियों का एक दल वहाँ आ उपस्थित हुआ। पूरण उन सबको लेकर पुनः उस प्रकोष्ठ में चला गया जहाँ से अभी-अभी बाहर निकला था।

थोड़ी देर बाद दास-दासी प्रकोष्ठ में से एक सन्दूक उठाकर बाहर लाये।

'जोगीराज, यह है हमारी भेंट; अपने स्वामी को हमारी ओर से, मेरा नाम लेकर देना।'

'जी !'

दास-दासियों ने उस सन्दूक को नीचे उतारकर बाहर खड़ी एक बैल-गाड़ी पर रख दिया।

एक विशालकाय दास गाड़ी पर चढ़कर बैलों को हाँकने के स्थान पर बैठ गया और बोला—बैठ जाओ जोगी। नदी में इसके लिए मुकर्रर हरि-गोल तक इस सन्दूक को पहुँचा आने का मलिका मुअज़्ज़म का मुझे हुक्म हुआ है।

और पत्थर मढ़े रास्ते पर वह बैलगाड़ी खड़खड़ाती हुई नदी की दिशा में बढ़ चली।

जोगी ने देखा : ऊपर गवाक्ष में विषकन्या खड़ी देख रही थी। अग्नि-शलाका-जैसी वह खड़ी थी और उसके ओठों पर मुस्कराहट अंगारों की भाँति दमक रही थी।

मार्ग में वह गुलाम जोगी सिंगी को सुल्तान और मलिका के मुहब्बत के किस्से सुनाता जा रहा था।

'हमारे सुल्तान सलामत मजनूँ हैं और हमारी मल्का लैला। खुदा ने इस एक हूर को बनाकर हाथ धो डाले, फिर किसी परीजाद को उसने नहीं बनाया।'

इस तरह किस्से कहते-सुनते बैलगाड़ी नदी-किनारे तक आ पहुँची।

हरिगोल वहाँ तैयार खड़ी रास्ता देख रही थी। पहले जोगी उसमें सवार हुआ। फिर उस सन्दूक को उसमें रखा गया। हरिगोल पानी काटती हुई नदी के उस पार जा लगी। सन्दूक और जोगी वहाँ उतर गए। हरिगोल-वाले ने उतराई लेने से इनकार कर दिया। मलिका मुअज्ज़म उन्हें पहले ही मेहनताना अदा कर चुकी थीं।

मदुरा की सल्तनत की सीमा उसी पार समाप्त हो गई थी। इस पार किनारे पर कोई नहीं था। जोगी ने कुछ देर प्रतीक्षा की और तब उस भारी-भरकम पेटी को अपनी पीठ पर लादकर ले चला।

थोड़ी दूर चलने पर उसे वृक्षों का कुंज मिला। उसे पार करने के बाद वह हरी घास के एक मैदान में आया। यहाँ सैकड़ों दोरंगी छावनी डाले पड़े हुए थे। हाथी भी थे, घोड़े भी थे, तीरन्दाज़ भी थे। देखकर जोगी को आश्चर्य भी हुआ और नहीं भी हुआ। वह समझ गया कि यही रायराया की छावनी है। विद्यारण्य ने कहा ही था कि रायराया इस पार पहुँचे रहेंगे। इसलिए उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ; लेकिन दोरंगियों को इतनी अधिक संख्या में और लड़ाई की इतने विशाल पैमाने पर तैयारियाँ देखकर उसे अवश्य आश्चर्य हुआ।

परन्तु दूसरे ही क्षण वह निराश हो गया। ये सारी तैयारियाँ अब व्यर्थ हो गई थीं। विषकन्या अथवा पूरण कन्याली ने उसके हाथ कोई सन्देश नहीं भेजा था। यह संकेत तक नहीं किया कि मदुरा के पतन की परिस्थिति परिपक्व है अथवा नहीं। और वह स्वयं कितना मूर्ख और मतिमन्द निकला कि स्पष्टीकरण कराना ही भूल गया। परन्तु अब क्या हो सकता था....

दोरंगियों से पूछने पर रायराया का मुकाम मालूम हो गया। वह एक वृक्ष के तने से पीठ टिकाये बैठे थे। पीछे उनका घोड़ा बँधा था और सामने तीन-चार व्यक्ति बैठे हुए थे।

समीप आकर जोगीराज ने सामने बैठे हुए व्यक्तियों को पहिचाना और उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उनमें एक था सोमेश्वर सोलंकी, दूसरा था गोपभट्ट और तीसरा था आचार्य सायण।

बिलकुल सामने आकर जोगीराज ने पीठ पर से सन्दूक को उतारा और रायराया को नमस्कार किया।

'राजन्, मदुरा की मन्दा देवी ने, जो विषकन्या के नाम से पुकारी जाती हैं, मौखिक तो कोई सन्देश दिया नहीं, परन्तु रायराया के लिए यह भेंट भेजी है।'

रायराया के आदेशानुसार सन्दूक खोला गया।

अन्दर मदुरा का सुल्तान गयासुद्दीन दमग़नी कैद किया हुआ था। उसके हाथ-पाँव बँधे थे, मुँह में कपड़ा ठुँसा हुआ था। सारे शरीर पर पतले तार इस तरह लपेटे हुए थे कि हिलने-डुलने की जरा-सी भी कोशिश करने पर गले में फाँसी लग जाती!

वहाँ उपस्थित सबके मुँह से आश्चर्योद्गार निकल पड़े। फिर सब ने मिलकर सुल्तान गयासुद्दीन को बाहर निकाला। उसके मुँह से अब भी शराब की तेज बू आ रही थी। हाथ-पाँव और सारा शरीर जकड़ गया था। गोपभट्टी और सोमेश्वर ने सहारा दिया तभी वह खड़ा हो सका।

सुल्तान रायराया की ओर आँखें फाड़े देख रहा था और रायराया सुल्तान की ओर।

और जोगीराज सिंगी के तो आश्चर्य के मारे बुरे हाल हो रहे थे।

गोपभट्टी ने कहा—शरणागत हो जाने का झूठा आश्वासन देकर इस आदमी ने कर्नाटक के राजा बल्लालदेव और विजयधर्मराज्य के राज-संन्यासी का धोखे से वध किया और उनके मस्तक में मसाला भरकर उसे दुर्ग की दीवार पर टाँगे रखा। हमने इस आदमी को कोई आश्वासन या वचन देकर तो बुलाया नहीं है, इसलिए रायराया इसका वध करना ही उचित है।

'रायराया,' सुल्तान ने कहा, 'मेरी जबान अभी काबू में नहीं है, मगर आप इस पर गौर न करें। मेरा सिर भी घूम रहा है, मगर इसे भी आप दरगुजर कर दें। कोई भी बहादुर लड़ाका अपने दुश्मन से बोलना पसन्द नहीं करता। मैं भी एक जाँनिसार सिपाही हूँ और मुझे मौत का कोई खौफ़ नहीं, जान की कोई परवाह नहीं। मगर माफ कीजिए, आपका यह सरदार

सफ़ेद झूठ बोल रहा है, इसलिए मुझे मजबूरन सच्चाई का इजहार करना पड़ रहा है। मुझ पर दग़ा का इल्ज़ाम लगाया गया है, पर कौन इस बात से इनकार कर सकता है कि मेरे साथ भी दग़ा की गई है?'

'यदि विश्वासघात न किया जाता तो आप ही बताइए मदुरा के सुल्तान को सन्दूक में भरकर यह दोमार मदुरा शहर की गलियों में से दिन-दहाड़े ढोकर यहाँ कैसे ला सकता था?'

'जो राजा अपने पड़ौसी राजा से विद्वेष करता है उसे ऐसे प्रसंगों के लिए तैयार रहना ही होगा। रायराया, मदुरा के इस सुल्तान का सिर काटकर उसे विजय-ध्वज के रूप में भाले में पिरोकर, हमें मदुरा पर आक्रमण कर ही देना चाहिए और जिस स्थान पर इस आदमी ने राजसंन्यासी का छिन्न मस्तक लटकाया था वहीं इसके सिर को टाँगकर मदुरा-विजय के कार्य को सम्पन्न करना चाहिए।' गोपभट्टी ने प्रतिशोध के आवेश में भरकर कहा।

'अगर तुम लोग यह समझते हो कि तुम्हारी इन बातों से सुल्तान का दिल टूट जायेगा तो वह तुम्हारा मुग़ालता होगा। सुल्तान की यह बदहाली महज़ इसलिए है कि उसने अपने दीनवालों पर नहीं तुम्हारे दीनवालों पर यक़ीन किया। मैंने तो इसी वजह से यक़ीन किया था कि तुम्हारे मजहब में यकीन की कोई कीमत होगी। तुम्हारा मजहब मर्दों का मजहब है या तवायफ़ों का, यह तो तुम्हीं ज्यादा अच्छी तरह बता सकते हो। बेशक, मदुरा का सुल्तान आज खौफ़ज़दा है, परन्तु उसका खौफ़ तुम्हारी तलवारों और तुम्हारे दिये हुए जख्मों का खौफ़ नहीं है। वह खौफ़ज़दा है, क्योंकि उसने रहम किया, इन्सानियत दिखाई और बदले में यह बदहाली हासिल की। सुल्तान मर जायेगा और उसे मरने का जरा भी अफसोस न होगा, मगर वह मरते-मरते हिन्दुस्तान के तमाम मुसलमानों को आगाह कर जायेगा कि कभी किसी गैरमजहबवाले पर और गैरों के मजहब और दीन पर एतबार मत करना—भूलकर भी रहम मत करना—यह गुनाह होगा, ऐसा गुनाह जिसे खुदा भी कभी माफ़ नहीं करेगा।'

'सुल्तान, यह तो राज्यों के बीच का युद्ध है, इसमें धर्म और सम्प्रदाय को व्यर्थ बीच में क्यों लाते हो? दूसरों के धर्म पर विश्वास न करने की बात

आज तुम मुसलमानों को सिखाना चाहते हो, परन्तु विश्वासघात का पाठ तो तुम्हीं ने हमें पढ़ाया है। क्यों भूलते हो कि राजसंन्यासी को धोखा देकर तुम्हीं मदुरा में ले गए थे। वह नाटक क्या तुमने अपने सहधर्मियों के लिए किया था? राजनीतिक संघर्ष में धर्म को व्यर्थ घुसेड़ने का प्रयत्न मत करो सुल्तान!' सायन आचार्य ने कहा, 'धर्म को समझना तुम्हारा काम नहीं। अपने धर्म को मैं जानता हूँ। आज्ञा कीजिए रायराया, कि इस म्लेच्छ का सिर काटकर मदुरा के गढ़ की दिवार के कंगूरे पर टाँगा जाये। युद्ध में कोई दाव अधर्म नहीं होता, कोई हत्या अधर्म नहीं होती। युद्ध में विजय के अतिरिक्त और कोई धर्म होता ही नहीं। इस समय अपने धर्म और पराये धर्म की बात करना सर्वथा निरर्थक है!'

सुल्तान ने धीरे-धीरे अपने वस्त्र उतारने आरम्भ किये। उसकी अँगुलियाँ काँप रही थीं। मारे डर के उसके प्राण सूखे जा रहे थे। ओठ जोरों से भिंच गए थे। मगर ऊपर से वह साहस और वीरत्व का डौल अवश्य किये हुए था।

'मदुरा का सुल्तान किसी से इन्साफ़ और रहम की भीख नहीं माँगता। अपनी जान बचाने के लिए वह किसी से बहस नहीं करता। मदुरा का सुल्तान इन्सान है। इन्सान की तरह वह गलती करता है और इन्सान की ही शान से मौत को गले भी लगाता है!'

सब चुप सुनते और देखते रहे। सुल्तान एक-एक कर अपने कपड़े उतारता रहा।

'अगर तुम्हारा मन्शा मुझे तड़पाने का न हो तो एक ही वार में मेरा सिर कलम कर देना।' सुल्तान ने कहा। उसके कपाल पर पसीने की बूँदें छलक आई थीं।

रायराया ने अपनी तलवार म्यान से निकाली और मन्द गति से दृढ़ चरण धरते हुए सुल्तान के सामने आकर खड़े होते बोले—मदुरा के सुल्तान, रायराया बुक्काराय के जीवन की सबसे महान अभिलाषा यही है कि वह राजसंन्यासी का तर्पण करे। मदुरा के सुल्तान का वध करके ही वह तर्पण हो सकता है। परन्तु हमारी यह अभिलाषा पूरी होगी मदुरा के मैदान में जब सुल्तान गयासुद्दीन दमग़ानी अपनी सेना-सहित हमारे सामने होगा।

फिर उन्होंने तलवारवाले अपने हाथ को फैलाते हुए कहा—सुल्तान, आप स्वतंत्र हैं; आप लौट सकते हैं। यदि आपत्ति न हो तो आप मेरी यह तलवार हमारी इस भेंट की स्मृति के रूप में ले जा सकते हैं।

क्षण-भर के लिए तो सुल्तान भी स्तब्ध हो गया। हकलाकर बोला—मुझे....मुझे....आप....आप....जाने....दें....गे....

'श्रीमान्, विजयनगर के रायराया के समक्ष मदुरा का सुल्तान जब अकेला होता है तो वह सुल्तान ही होता है। लेकिन जब वह अपनी सेना के साथ युद्ध की भूमि में होता है तो रायराया का कट्टर शत्रु और वध्य रिपु होता है। नमस्कार सुल्तान साहब! हम फिर मिलेंगे मदुरा के मैदान में।'

*   *   *   *

रोष और क्रोध से आगबबूला और प्रतिहिंसा से काले नाग की भाँति फुफकारता हुआ मदुरा का सुल्तान जब अपने रंगमहल में पहुँचा तो उसे वहाँ विषकन्या और पूरण महाराज के शव ही मिले। पूरण के ओंठों से हलाहल विष की प्याली अभी भी लगी हुई थी और वह उसे हटाने का अवसर नहीं पा सका था। विषकन्या अपने दाँतों के बीच हीरकणी के प्राणान्तकारी विष को अब भी दाबे हुए थी।

और दोनो के मृत चेहरे प्रसन्न मुस्कराहट से जैसे सुल्तान गयासुद्दीन का उपहास कर रहे थे।

सुल्तान झुँझलाकर रह गया।

वे चेहरे अनन्त निद्रा में साथ-साथ सोये हुए अब भी मुस्करा रहे थे।